प्रेमचंद

गुप्त धन

1

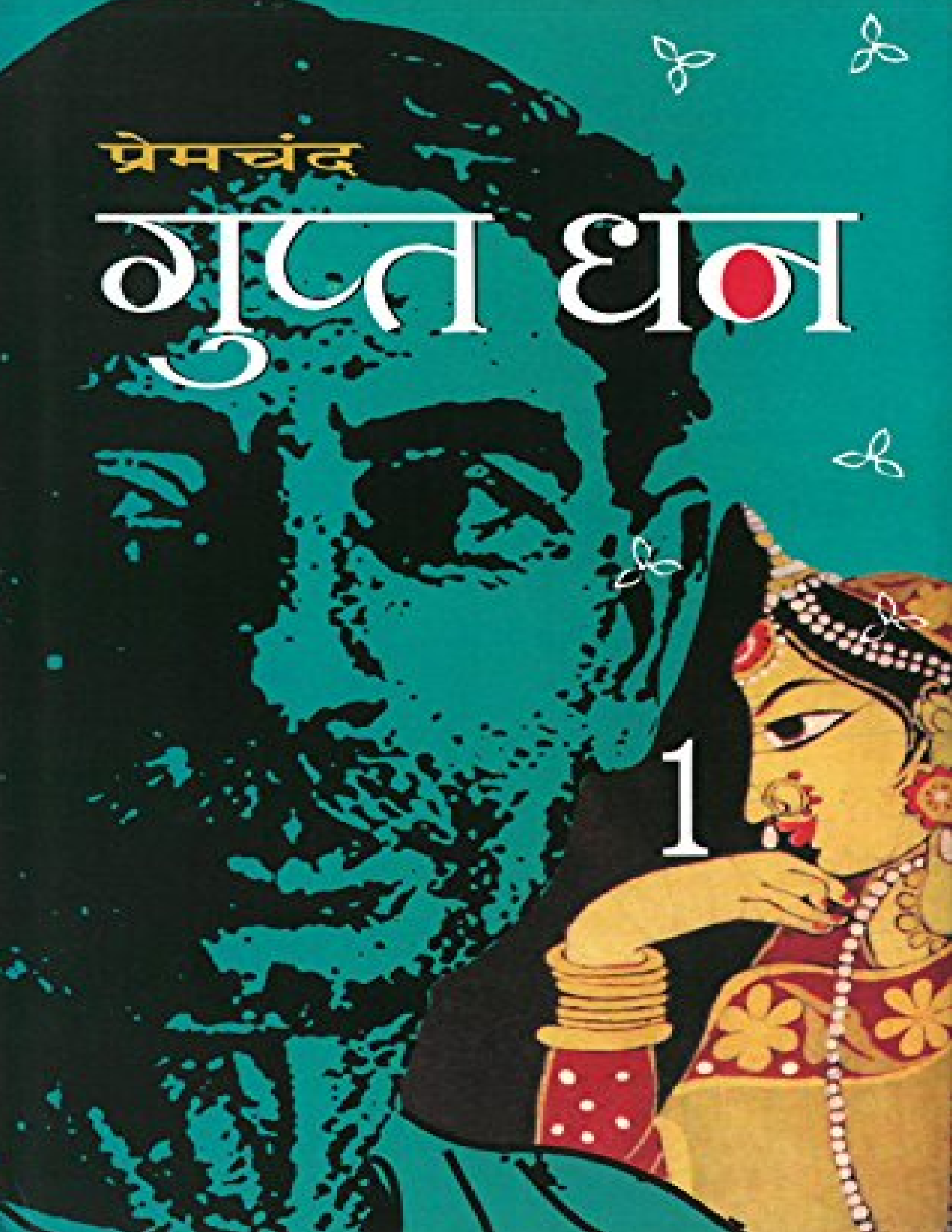

अनुक्रम

विक्रमादित्य का तेगा

आखिरी मंजिल

आल्हा

नसीहतों का दफ्तर

राजहठ

त्रिया-चरित्र

मिलाप

मनावन

अँधेर

सिर्फ एक आवाज

नेकी

बांका जमींदार

अनाथ लड़की

कर्मों का फल

अमृत

अपनी करनी

गैरत की कटार

घमंड का पुतला

विजय

वफा का खंजर

मुबारक बीमारी

वासना की कड़ियाँ

इज्जत का खून

विक्रमादित्य का तेगा

बहुत जमाना गुजरा एक रोज पेशावर के मौजे माहनगर में प्रकृति की एक आश्चर्यजनक लीला दिखाई पड़ी। अँधेरी रात थी, बस्ती से कुछ दूर बरगद के एक छाँहदार पेड़ के नीचे एक आग की लौ दिखाई पड़ी और एक झलमलाते हुए चिराग की तरह नजर आती रही। गाँव में बहुत जल्द यह खबर फैल गई। वहाँ के रहने वाले यह विचित्र दृश्य देखने के लिए यहाँ-वहाँ इकट्ठा हो गए। औरतें जो खाना पका रही थीं, हाथों में गूँथा हुआ आटा लपेटे बाहर निकल आईं। बूढ़ों ने बच्चों को कंधे पर बिठा लिया और खाँसते हुए आ खड़े हुए। नवेली बहुएँ लाज के मारे बाहर न आ सकीं मगर दरवाज़ों की दरारों से झाँक-झाँककर अपने बेकरार दिलों को तसकीन देने लगीं। उस गुम्बदनुमा पेड़ के नीचे अँधेरे के उस अथाह समुन्दर में रोशनी का यह धुँधला शोला पाप के बादलों से घिरी हुई आत्मा का सजीव उदाहरण पेश कर रहा था।

टेकसिंह ने ज्ञानियों की तरह सिर हिलाकर कहा—मैं समझ गया, भूतों की सभा हो रही है।

पंडित चेतराम ने विद्वानों के समान विश्वास के साथ कहा—तुम क्या जानो मैं तह पर पहुँच गया। साँप मणि छोड़कर चरने गया है। इसमें जिसे शक हो जाकर देख आए।

मुंशी गुलाबचन्द्र बोले—इस वक्त जो वहाँ जाकर मणि को उठा लाए, उसके राजा होने में शक नहीं। मगर जान जोखिम है।

प्रेमसिंह एक बूढ़ा जाट था। वह इन महात्माओं की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था।

:: 2 ::

प्रेमसिंह दुनिया में बिलकुल अकेला था। उसकी सारी उम्र लड़ाइयों में खर्च हुई थी। मगर जब जिन्दगी की शाम आई और वह सुबह की जिन्दगी के टूटे-फूटे झोंपड़े में फिर आया तो उसके दिल में एक अजीब ख्वाहिश पैदा हुई। अफसोस, दुनिया में मेरा कोई नहीं! काश, मेरे भी कोई बच्चा होता! जो ख्वाहिश शाम के वक्त चिड़ियों को घोंसले में खींच लाती है और जिस ख्वाहिश से बेकरार होकर जानवर शाम को अपने थानों की तरफ चलते हैं, वही ख्वाहिश प्रेमसिंह के दिल में मौजें मारने लगी। ऐसा कोई नहीं, जो सुबह के वक्त दादा कहकर उसके गले से लिपट जाए। ऐसा कोई नहीं, जिसे वह खाने के वक्त कौर बना-बनाकर खिलाए। ऐसा कोई नहीं, जिसे वह रात के वक्त लोरियाँ सुना-सुनाकर सुलाए। यह आकांक्षाएँ प्रेमसिंह के दिल में कभी न पैदा हुई थीं। मगर सारे दिन का अकेलापन इतना उदास करने वाला नहीं होता जितना शाम का।

एक दिन प्रेमसिंह बाजार गया हुआ था। रास्ते में उसने देखा कि एक घर में आग लगी हुई है। आग के ऊँचे-ऊँचे डरावने शोले हवा में अपने झंडे लहरा रहे हैं और एक औरत दरवाजे पर खड़ी सिर पीट-पीटकर रो रही है। यह बेचारी विधवा स्त्री थी, उसका बच्चा अंदर सो रहा था कि घर में आग लग गई। वह दौड़ी थी कि गाँव के आदमियों को आग

बुझाने के लिए बुलाए कि इतने में आग ने जोर पकड़ लिया और अब तमाम जलते हुए शोलों का उमड़ा हुआ दरिया उसे अपने प्यारे बच्चे से अलग किए हुए था। प्रेमसिंह के दिल में उस औरत की दर्दनाक आहें चुभ गईं। वह बेधड़क आग में घुस गया और सोते हुए बच्चे को गोद में लेकर बाहर निकल आया। विधवा स्त्री ने बच्चे को गोद में ले लिया और उसके कोमल गालों को बार-बार चूमकर आँखों में आँसू भर लाई और बोली—महाराज, तुम जो कोई हो, मैं आज अपना प्यारा बच्चा तुम्हें भेंट करती हूँ। तुम्हें ईश्वर ने और भी लड़के दिए होंगे, उन्हीं के साथ इस अनाथ की भी खबर लेते रहना। तुम्हारे दिल में दया है, मेरा सब कुछ अग्नि देवी ने ले लिया, अब इस तन के कपड़े के सिवा मेरे पास और कोई चीज नहीं। मैं मजदूरी करके अपना पेट पाल लूंगी। यह बच्चा अब तुम्हारा है।

प्रेमसिंह की आँखें डबडबा गईं, बोला—बेटी, ऐसा न कहो, तुम मेरे घर चलो और ईश्वर ने जो कुछ रूखा-सूखा दिया है, वह खाओ। मैं भी दुनिया में बिलकुल अकेला हूँ, कोई पानी देने वाला नहीं है। क्या जाने परमात्मा ने इसी बहाने से हम लोगों को मिलाया हो। शाम के वक्त जब प्रेमसिंह घर लौटा तो उसकी गोद में एक हँसता हुआ फूल जैसा बच्चा था और पीछे-पीछे एक पीली और मुरझाई हुई औरत। आज प्रेमसिंह का घर आबाद हुआ। आज से उसे किसी ने शाम के वक्त नदी के किनारे खामोश बैठे नहीं देखा।

इसी बच्चे के लिए साँप की मणि लाने का निश्चय करके प्रेमसिंह आधी रात के वक्त कमर से तलवार लगाए, चौंक-चौंककर कदम रखता, बरगद के पेड़ की तरफ चला।

जब पेड़ के नीचे पहुँचा तो मणि की दमक ज्यादा साफ नजर आने लगी। मगर साँप का कहीं पता न था। प्रेमसिंह बहुत खुश हुआ, समझा, शायद साँप कहीं चरने गया है। मगर जब मणि को लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो वहाँ साफ जमीन के सिवाय और कोई चीज न दिखाई दी। बूढ़े जाट का कलेजा सन-से हो गया और बदन के रोंगटे खड़े हो गए। यकायक उसे अपने सामने कोई चीज लटकती हुई दिखाई दी। प्रेमसिंह ने तेगा खींच लिया और उसकी तरफ लपका मगर देखा तो वह बरगद की जटा थी। अब प्रेमसिंह का डर बिलकुल दूर हो गया। उसने उस जगह को जहाँ से रोशनी की लौ निकल रही थी, अपनी तलवार से खोदना शुरू किया। जब एक बित्ता जमीन खुद गई तो तलवार किसी सख्त चीज से टकराई और लौ भडक उठी। यह एक छोटा-सा तेगा था मगर प्रेमसिंह के हाथ में आते ही उसकी लपट जैसी चमक गायब हो गई।

:: 3 ::

यह एक छोटा-सा तेगा था, मगर बहुत आबदार। उसकी मूठ में अनमोल जवाहरात जड़े हुए थे और मूठ के ऊपर ' विक्रमादित्य ' खुदा हुआ था। यह विक्रमादित्य का तेगा था, उस विक्रमादित्य का जो भारत का सूर्य बनकर चमका, जिसके गुण अब तक घर-घर गाए जाते हैं। इस तेगे ने भारत के अमर कालिदास की सोहबतें देखी हैं। जिस वक्त विक्रमादित्य रातों को वेश बदलकर दुःख-दर्द की कहानी अपने कानों से सुनने और अत्याचारों की लीला अपनी संवेदनशील आँखों से देखने के लिए निकलते थे, तो यही आबदार तेगा उनकी बगल की शोभा हुआ करता था। जिस दया और न्याय ने विक्रमादित्य का नाम अब तक जिन्दा

रखा है उसमें यह तेगा भी उनका हमदर्द और शरीक था। यह उनके साथ उस राजसिंहासन पर शोभायमान होता था जिस पर राजा भोज को भी बैठना नसीब न हुआ।

इस तेगे में गजब की चमक थी। बहुत जमाने तक जमीन के नीचे दफन रहने पर भी उस पर जंग का नाम न था। अँधेरे घरों में उससे उजाला हो जाता था। रात-भर चमकते हुए तारे की तरह जगमगाता रहता। जिस तरह चाँद बादलों के परदे में छिप जाता है मगर उसकी मद्धिम रोशनी छन-छनकर आती है उसी तरह गिलाफ के अन्दर से उस तेगे की किरनें नजरों के तीर मारा करती थीं।

मगर जब कोई व्यक्ति उसे हाथ में ले लेता तो उसकी चमक गायब हो जाती थी। उसका यह गुण देखकर लोग दंग रह जाते थे।

हिन्दोस्तान में इन दिनों शेरे पंजाब की ललकार गूँज रही थी। रणजीतसिंह दानशीलता और वीरता, दया और न्याय में अपने समय के विक्रमादित्य थे। उस घमंडी काबुल को, जिसने सदियों तक हिन्दोस्तान को सर नहीं उठाने दिया था, खाक में मिलाकर लाहौर जाते थे। महानगर का खुला हुआ दिलकश मैदान और पेड़ों का आकर्षक जमघट देखा तो वहीं पड़ाव डाल दिया। बाजार लग गए। खेमे और शामियाने गाड़ दिए गए। जब रात हुई तो पचीस हजार चूल्हों का काला धुआँ सारे मैदान और बगीचे पर छा गया। और इस धुएँ के आसमान में चूल्हों की आग, कंदीलें और मशालें ऐसी मालूम होती थीं गोया अँधेरी रात में आसमान पर तारे निकल आए हैं।

:: 4 ::

शाही आरामगाह से गाने—बजाने की पुरशोर और पुरजोश आवाजें आ रही थीं। सिक्ख सरदारों ने सरहदी जगहों पर सैकड़ों अफगानी औरतें गिरफ्तार कर ली थीं, जैसा उन दिनों लड़ाइयों में आमतौर पर हुआ करता था। वही औरतें इस वक्त साएदार दरख्तों के नीचे कुदरती फर्श से सजी हुई महफिल में अपनी बेसुरी तानें अलाप रही थीं और महफिल के लोग, जिन्हें गाने का आनन्द उठाने की इतनी लालसा थी जितनी हँसने और खुश होने की, खूब जोर-जोर से कहकहे लगा-लगाकर हँस रहे थे। कहीं-कहीं मनचले सिपाहियों ने स्वाँग भरे थे। वह कुछ मशालें और सैकड़ों तमाशाइयों की भीड़ साथ लिये हुए इधर-उधर धूम मचाते फिरते थे। सारी फौज के दिलों में बैठकर विजय की देवी अपनी लीला दिखा रही थी।

रात के नौ बजे होंगे कि एक आदमी काला कम्बल ओढ़े एक बाँस का सोंटा लिये शाही खेमे से बाहर निकला और बस्ती की तरफ आहिस्ता-आहिस्ता चला। आज माहनगर भी खुशी से ऐंड रहा है। दरवाजों पर कई-कई बत्तियों वाले चौमुखे दीवट जल रहे हैं। दरवाजों के सहन झाड़कर साफ कर दिए गए हैं। दो-एक जगह शहनाइयाँ बज रही हैं और कहीं-कहीं लोग भजन गा रहे हैं। काली कमली वाला मुसाफिर इधर-उधर देखता-भालता गाँव के चौपाल में जा पहुँचा। चौपाल खूब सजा हुआ था और गाँव के बड़े लोग बैठे हुए इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर बहस कर रहे थे कि महाराजा रणजीतसिंह की सेवा में कौन-सी भेंट पेश की जाए। आज महाराज ने इस गाँव को अपने कदमों से रोशन किया है, तो क्या इस गाँव

के बसने वाले महाराज के कदमों को न चूमेंगे! ऐसे शुभ अवसर कहाँ आते हैं। सब लोग सर झुकाए चिंतित बैठे थे। किसी की अकल कुछ काम न करती थी। वहाँ अनमोल जवाहरात की किश्तियाँ कहाँ? पूरे घंटे-भर तक किसी ने सर न उठाया, यकायक बूडा प्रेमसिंह खड़ा हो गया और बोला—अगर आप लोग पसन्द करें तो मैं विक्रमादित्य की तलवार नजराने के लिए दे सकता हूँ।

इतना सुनते ही सब के सब आदमी खुशी से उछल पड़े और एक हुल्लड़-सा मच गया। इतने में एक मुसाफिर काली कमली ओढ़े चौपाल के अंदर आया और हाथ उठाकर बोला—भाइयो, वाहे गुरु की जय!

चेतराम बोले—तुम कौन हो?

मुसाफिर—राहगीर हूँ, पेशावर जाना है रात ज्यादा आ गई है इसलिए यहीं लेट रहूँगा।

टेकसिंह—हाँ-हाँ, आराम से सोओ। चारपाई की जरूरत हो तो मँगा दूँ?

मुसाफिर—नहीं, आप तकलीफ न करें, मैं इसी टाट पर लेट रहूँगा। अभी आप लोक विक्रमादित्य की तलवार की कुछ बातचीत कर रहे थे। यही सुनकर चला आया वर्ना बाहर ही पड़ा रहता। क्या यहाँ किसी के पास विक्रमादित्य की तलवार है?

मुसाफिर की बातचीत से साफ जाहिर होता था कि वह कोई शरीफ आदमी है। उसकी आवाज में वह कशिश थी जो कानों को अपनी तरफ खींच लिया करती है। सब की आँखेउसकी तरफ उठ गई। पंडित चेतराम बोले—जी हाँ, कुछ अर्सा हुआ महाराज विक्रमादित्य का तेगा जमीन से निकला है।

मुसाफिर—यह क्योंकर मालूम हुआ कि यह तेगा उन्हीं का है?

चेतराम—उसकी मूठ पर उनका नाम खुदा हुआ है।

मुसाफिर—उनकी तलवार तो बहुत बड़ी होगी?

चेतराम—नहीं, वह तो एक छोटा-सा नीमचा है।

मुसाफिर—तो फिर उसमें कोई खास गुण होगा?

चेतराम-जी हाँ, उसके गुण अनमोल हैं। देखकर अक्ल दंग रह जाती है। जहाँ रख दो, उसमें जलते चिराग की-सी रोशनी पैदा हो जाती है।

मुसाफिर—ओफ्फोह!

चेतराम—मगर ज्योंही कोई आदमी उसे हाथ में ले लेता है उसकी सारी चमक-दमक गायब हो जाती है।

यह अजीब बात सुनकर उस मुसाफिर की वही कैफियत हो गई जो एक आश्चर्यजनक कहानी सुनने से बच्चों की हो जाया करती है। उसकी आँख और भंगिमा से अधीरता प्रकट होने लगी। जोश से बोला—विक्रमादित्य, तुम्हारे प्रताप को धन्य है!

जरा देर के बार फिर बोला—वह कौन बुजुर्ग है जिसके पास यह अनमोल चीज है?

प्रेमसिंह ने गर्व से कहा—मेरे पास है।

मुसाफिर—क्या मैं उसे देख सकता हूँ?

प्रेमसिंह—हीं, मैं आपको सवेरे दिखादूँगा। मगर नहीं, ठहरिए, सवेरे तो हम उसे महाराज रणजीतसिंह को भेंट करेंगे। आपका जी चाहे तो इसी वक्त देख लीजिए।

दोनों आदमी चौपाल से खड़े हुए। प्रेमसिंह ने मुसाफिर को अपने घर में ले जाकर तेगे के

पास खड़ा कर दिया। इस कमरे में चिराग न था मगर सारा कमरा रोशनी से जगमगा रहा था। मुसाफिर ने पुरजोश आवाज से कहा—विक्रमादित्य, तुम्हारे प्रताप को धन्य है, इतना जमाना गुजरने पर भी तुम्हारी तलवार का तेज कम नहीं हुआ।

यह कहकर उसने बड़े चाव से हाथ बढ़ाकर तेगे को पकड़ लिया मगर उसका हाथ लगते ही तेगे की चमक जाती रही और कमरे में अँधेरा छा गया।

मुसाफिर ने फौरन तेगे को तख्त पर रख दिया। उसका चेहरा अब बहुत उदास हो गया था। उसने प्रेमसिंह से कहा—क्या तुम यह तेगा रणजीतसिंह को भेंट दोगे? वह इसे हाथ में लेने योग्य नहीं है।

यह कहकर मुसाफिर तेजी से बाहर निकल आया। वृन्दा दरवाजे पर खड़ी थी, मुसाफिर ने उसके चेहरे की तरफ एक बार गौर से देखा, मगर कुछ बोला नहीं।

रात आधी से ज्यादा गुजर चुकी थी, मगर फौज में शोरगुल बदस्तूर जारी था। खुशी के हंगामे ने नींद को सिपाहियों की आँखों से दूर भगा दिया है। अगर कोई अँगड़ाई लेता या ऊँधता नजर आ जाता है तो उसके साथी उसे एक टाँग से खड़ा कर देते हैं। यकायक यह खबर मशहूर हुई कि महाराज इसी वक्त कूच करेंगे। लोग ताज्जुब में आ गए कि महाराज ने क्यों इस अँधेरी रात में सफर करने की ठानी है। इस डर से कि फौज को इसी वक्त कूच करना पड़ेगा, चारों तरफ खलबली-सी मच गई। वह खुद थोड़े से आजमाए हुए सरदारों के साथ रवाना हो गए। इसका कारण किसी की समझ में न आया।

जिस तरह बाँध टूट जाने से तालाब का पानी काबू से बाहर होकर जोर-शोर के साथ बह निकलता है, उसी तरह महाराज के जाते ही फौज के अफसर और सिपाही होश-हवास खोकर मस्तियाँ करने लगे।

:: 5 ::

वृन्दा को विधवा हुआ तीन साल गुजरे हैं। उसका पति एक बेफिक्र और रंगीन-मिजाज आदमी था। गाने-बजाने से उसे प्रेम था। घर की जो कुछ जमा-जथा थी, वह सरस्वती और उसके पुजारियों के भेंट कर दी। तीन लाख की जायदाद तीन साल के लिए भी काफी न हो सकी, मगर उसकी कामना पूरी हो गई। सरस्वती देवी ने उसे आशीर्वाद दिया और उसने संगीत-कला में ऐसा कमाल पैदा किया कि अच्छे-अच्छे गुनी उसके सामने जबान खोलते डरते थे। गाने का उसे जितना शौक था, उतनी ही मुहब्बत उसे वृन्दा से थी। उसकी जान अगर गाने में बसती थी तो दिल वृन्दा की मुहब्बत से भरा हुआ था। पहले छेड़छाड़ में और फिर दिलबहलाव के लिए उसने वृन्दा को कुछ गाना सिखाया। यहाँ तक कि उसको भी इस अमृत का स्वाद मिल गया और यद्यपि उसके पति को मरे तीन साल गुजर गए हैं और उसने सांसारिक सुखों को अंतिम नमस्कार कर लिया है, यहाँ तक कि किसी ने उसके गुलाब के-से होंठों पर मुस्कराहट की झलक नहीं देखी मगर गाने की तरफ अभी तक उसकी तबीयत झुकी हुई थी। उसका मन जब कभी बीते हुए दिनों की याद से उदास होता है तो वह कुछ गाकर जी बहला लेती है। लेकिन गाने में उसका उद्देश्य इन्द्रिय का आनन्द नहीं होता, बल्कि जब वह कोई सुन्दर राग अलापने लगती है तो खयाल में अपने पति को खुशी से

मुस्कराते हुए देखती है। वही काल्पनिक चित्र उसके गाने की प्रशंसा करता हुआ दिखाई देता है। गाने में उसका लक्ष्य अपने स्वर्गीय पति की स्मृति को ताजा करना है। गाना उसके नजदीक पतिव्रत धर्म का निबाह है।

तीन पहर रात जा चुकी है, आसमान पर चाँद की रोशनी मन्द हो चुकी है, चारों तरफ गहरा सन्नाटा छाया हुआ है और इन विचारों को जन्म देने वाले सन्नाटे में वृन्दा जमीन पर बैठी हुई मद्धिम स्वरों में गा रही है—

बता दे कोई प्रेमनगर की डगर?

वृन्दा की आवाज में लोच भी है और दर्द भी। उसमें बेचैन दिल को तसकीन देने वाली ताकत भी है और सोये हुए भावों को जगा देने की शक्ति भी। सुबह के वक्त पूरब की गुलाबी आभा में सर उठाए हुए फूलों से लदी हुई डाली पर बैठकर गाने वाली बुलबुल की चहक में भी यह घुलावट नहीं होती। यह वह गाना है जिसे सुनकर अकलुष आत्माएँ सिर धुनने लगती हैं। उसकी तान कानों को छेदती हुई जिगर में जा पहुँचती है—

बता दे कोई प्रेमनगर की डगर।
में बौरी पग-पग भटकूँ, काहू की कुछ नाहीं खबर।
बता दे कोई प्रेमनगर की डगर।

यकायक किसी ने दरवाजा खटखटाया और कई आदमी पुकारने लगे—किसका मकान है, दरवाजा खोलो।

वृन्दा चुप हो गई। प्रेमसिंह ने उठकर दरवाजा खोल दिया। दरवाजे के सहन में सिपाहियों की एक भीड़ थी। दरवाजा खुलते ही कई सिपाही दहलीज में घुस आए और बोले—तुम्हारे घर में कोई गाने वाली रहती है, हम उसका गाना सुनेंगे।

प्रेमसिंह ने कड़ी आवाज में कहा—हमारे यहाँ कोई गाने वाली नहीं है।

इस पर कई सिपाहियों ने प्रेमसिंह को पकड़ लिया और बोले—तेरे घर से गाने की आवाज आती थी।

एक सिपाही—बताता क्यों नहीं रे, कौन गा रहा है?

प्रेमसिंह—मेरी लड़की गा रही थी। मगर वह गाने वाली नहीं है।

सिपाही—कोई हो, हम तो आज गाना सुनेंगे।

गुस्से से प्रेमसिंह काँपने लगा, होंठ चबाकर बोला—यारो, हमने भी अपनी जिन्दगी फौज ही में काटी है मगर कभी' ...

इस हंगामे में प्रेमसिंह की बात किसी ने न सुनी। एक नौजवान जाट ने जिसकी आँखें नशे से लाल हो रही थीं, ललकारकर कहा—इस बुड्ढे की मूँछें उखाड़ लो।

वृन्दा आँगन में पत्थर की मूरत की तरह खड़ी यह कैफियत देख रही थी। जब उसने दो सिपाहियों को प्रेमसिंह की मूँछ पकड़कर खींचते देखा तो उससे न रहा गया, वह निर्भय सिपाहियों के बीच में घुस आई और ऊँची आवाज में बोली—कौन मेरा गाना सुनना चाहता है?

सिपाहियों ने उसे देखते ही प्रेमसिंह को छोड़ दिया और बोले—हम सब तेरा गाना

सुनेंगे।

वृन्दा—अच्छा बैठ जाओ, मैं गाती हूँ।

इस पर कई सिपाहियों ने जिद की कि इसे पड़ाव पर ले चलो, वहाँ खूब रंग जमेगा।

जब वृन्दा सिपाहियों के साथ पड़ाव की तरफ चली तो प्रेमसिंह ने कहा—वृन्दा, इनके साथ जाती हो तो फिर इस घर में पैर न रखना।

वृन्दा जब पड़ाव पर पहुँची तो वहाँ बदमस्तियों का एक तूफान मचा हुआ था। विजय की देवी दुश्मन को बर्बाद करके अब विजेताओं की मानवता और सज्जनता को पाँव से कुचल रही थी। हैवानियत का खूँखार शेर दुश्मन के खून से तृप्त न होकर अब मानवोचित भावों का खून चूस रहा था। वृन्दा को लोग एक सजे हुए खेमे में ले गए। यहाँ फर्शी चिराग रोशन थे और अता-जैसी शराब के दौर चल रहे थे। वृन्दा उस मेमने की तरह, जो खूँखार दरिन्दों के पंजे में फँस जाता है, फर्श के एक कोने पर सहमी हुई बैठी थी। वासना का भूत जो इस वक्त दिलों में अपनी शैतानी फौज सजाए बैठा था कभी आँखों की कमान से सतीत्व का नाश करने वाले तेज तीर चलाता और कभी मुँह की कमान से मर्मवेधी बाणों की बौछार करता। जहरीली शराब में बुझे हुए यह तीर वृन्दा के कोमल और पवित्र हृदय को छेदते हुए पार हो जाते थे। वह सोच रही थी—ऐ द्रौपदी की लाज रखने वाले कृष्ण भगवान, तुमने धर्म के बन्धन से बंधे हुए पाण्डवों के होते हुए द्रौपदी की लाज रखी थी, मैं तो दुनिया में बिलकुल अनाथ हूँ? क्या मेरी लाज न रखोगे? यह सोचते हुए उसने मीरा का यह मशहूर भजन गाया—

सिया रघुबीर भरोसो ऐसो।

वृन्दा ने यह गीत बड़े मोहक ढंग से गाया। उसके मीठे सुरों में मीरा का अंदाज पैदा हो गया था। प्रकट रूप से वह शराबी सिपाहियों के सामने बैठी गा रही थी मगर कल्पना की दुनिया में वह मुरली वाले श्याम के सामने हाथ बाँधे खड़ी उससे प्रार्थना कर रही थी।

जरा देर के लिए उस शोर से भरे हुए महल में निस्तब्धता छा गई। इन्सान के दिल में बैठे हुए हैवान पर भी प्रेम की यह तड़पा देने वाली पुकार अपना जादू चला गई। मीठा गाना मस्त हाथी को भी बस में कर लेता है। पूरे घंटे-भर तक वृन्दा ने सिपाहियों को मूर्तिवत रखा। सहसा घड़ियाल ने पाँच बजाए। सिपाही और सरदार सब चौंक पड़े। सबका नशा हिरन हो गया। चालीस कोस की मंजिल तय करनी है, फुर्ती के साथ रवानगी की तैयारियाँ होने लगीं। खेमे उखड़ने लगे, सवारों ने घोड़ों को दाना खिलाना शुरू किया। एक भगदड़-सी मच गई। उधर सूरज निकला, इधर फौज ने कूच का डंका बजा दिया। शाम को जिस मैदान का एक-एक कोना आबाद था, सुबह को वहाँ कुछ भी न था। सिर्फ टूटे-फूटे उखड़े चूल्हों की राख और खेमों की कीलों के निशान उस शान-शौकत की यादगार के रूप में रह गए थे।

वृन्दा ने जब महफिल के लोगों को रवानगी की तैयारियों में व्यस्त देखा तो वह खेमे से बाहर निकल आई। कोई बाधक न हुआ। मगर उसका दिल धड़क रहा था कि कहीं कोई आकर फिर न पकड़ ले। जब वह पेड़ों के झुरमुट से बाहर पहुँची तो उसकी जान में जान

आई। बड़ा सुहाना मौसम था। ठंडी-ठंडी मस्त हवा पेड़ों के पत्तों पर धीमे-धीमे चल रही थी और पूरब के क्षितिज में सूर्य भगवान की अगवानी के लिए लाल मखमल का फर्श बिछाया जा रहा था। वृन्दा ने आगे कदम बढ़ाना चाहा। मगर उसके पाँव न उठे। प्रेमसिंह की यह बात कि सिपाहियों के साथ जाती हो तो फिर इस घर में पैर न रखना, उसे याद आ गई। उसने एक लंबी साँस ली और जमीन पर बैठ गई। दुनिया में अब उसके लिए कोई ठिकाना न था।

उस अनाथ चिड़िया की हालत कैसी दर्दनाक है जो दिल में उड़ने की चाह लिये हुए बहेलिये की कैद से निकल आती है, मगर आजाद होने पर उसे मालूम होता है कि उस निष्ठुर बहेलिये ने उसके पैरों को काट दिया है। वह पेड़ों की सायेदार डालियों की तरफ बार-बार हसरत की निगाहों से देखती है मगर उड़ नहीं सकती और एक बेबसी के आलम में सोचने लगती है कि काश, बहेलिया मुझे फिर अपने पिंजरे में कैद कर लेता। वृन्दा की हालत इस वक्त ऐसी ही दर्दनाक थी।

वृन्दा कुछ देर तक इस खयाल में डूबी बैठी रही, फिर वह उठी और धीरे-धीरे प्रेमसिंह के दरवाजे पर आई। दरवाजा खुला हुआ था मगर वह अन्दर कदम न रख सकी। उसने दरीदीवार को हसरतभरी निगाहों से देखा और फिर जंगल की तरफ चली गई।

:: 6 ::

शहर लाहौर के एक शानदार हिस्से में ठीक सड़क के किनारे एक अच्छा-सा साफ-सुथरा तिमंजिला मकान है। हरी-भरी और सुन्दर फूलोंवाली माधवी लता ने उसकी दीवारों और मेहराबों को खूब सजा दिया है। इसी मकान में एक अमीराना ठाठ-बाट से सजे हुए कमरे के अन्दर वृन्दा एक मखमली कालीन पर बैठी हुई अपनी सुन्दर रंगों और मीठी आवाज वाली मैना को पढ़ा रही है। कमरे की दीवारों पर हलके हरे रंग की कलई है—खुशनुमा दीवारगीरियाँ, खूबसूरत तसवीरें उचित स्थानों पर शोभा दे रही हैं। सन्दल और खस की प्राणवर्द्धक सुगन्ध कमरे में फैली हुई है। एक बूढ़ी औरत बैठी हुई पंखा झल रही है। मगर इस ऐश्वर्य और विलास की सब सामग्रियों के होते हुए वृन्दा का चेहरा उदास है। उसका चेहरा अब और भी पीला नजर आता है। मौलश्री का फूल मुरझा गया है।

वृन्दा अब लाहौर की मशूहर गानेवालियों में से है। उसे इस शहर में आए तीन महीने से ज्यादा नहीं हुए, मगर इतने ही दिनों में उसने बहुत बड़ी शोहरत हासिल कर ली है। यहाँ उसका नाम श्यामा मशहूर है। इतने बड़े शहर में जिससे श्यामा बाई का पता पूछो वह यकीनन बता देगा। श्यामा की आवाज और अन्दाज में कोई मोहिनी है, जिसने शहर में हर एक को अपना प्रेमी बना रखा है। लाहौर में बाकमाल गानेवालियों की कमी नहीं है। लाहौर उस जमाने में हर कला का केन्द्र था मगर कोयलें और बुलबुलें बहुत थीं, श्यामा सिर्फ एक थी। वह ध्रुपद ज्यादा गाती थी इसलिए लोग उसे धुपदी श्यामा कहते थे।

लाहौर में मियाँ तानसेन के खानदान के कई ऊँचे कलाकार हैं जो राग और रागनियों में बातें करते हैं। वह श्यामा का गाना पसन्द नहीं करते। वह कहते हैं कि श्यामा का गाना अक्सर गलत होता है। उसे राग और रागनियों का ज्ञान नहीं। मगर उनकी इस आलोचना

का किसी पर कुछ असर नहीं होता। श्यामा गलत गाए या सही गाए वह जो कुछ गाती है उसे सुनकर लोग मस्त हो जाते हैं। उसका भेद यह है कि श्यामा हमेशा दिल से गाती है और जिन भावों को वह प्रकट करती है उन्हें खुद भी अनुभव करती है। वह कठपुतलियों की तरह तुली हुई अदाओं की नकल नहीं करती। अब उसके बगैर महफिलें सूनी रहती हैं। हर महफिल में उसका मौजूद होना लाजिमी हो गया है। वह चाहे श्लोक ही गाए मगर उसके बगैर संगीत-प्रेमियों का जी नहीं भरता। तलवार की बाढ़ की तरह वह महफिलों की जान है। उसने साधारणजनों के हृदय में यहाँ तक घर कर लिया है कि जब वह अपनी पालकी पर हवा खाने निकलती है तो उस पर चारों तरफ से फूलों की बौछार होने लगती है। महाराज रणजीतसिंह को काबुल से लौटे हुए तीन महीने गुजर गए, मगर अभी तक विजय की खुशी में कोई जलसा नहीं हुआ। वापसी के बाद कई दिन तक तो महाराज किसी कारण से उदास थे, उसके बाद उनके स्वभाव में यकायक एक बड़ा परिवर्तन आया, उन्हें काबुल की विजय की चर्चा से घृणा-सी हो गई। जो कोई उन्हें इस जीत की बधाई देने जाता वे उसकी तरफ से मुँह फेर लेते थे। वह आत्मिक उल्लास जो मौजा माहनगर तक उनके चेहरे से झलकता था, अब वहाँ न था। काबुल को जीतना उनकी जिन्दगी की सबसे बड़ी आरजू थी। वह मोर्चा जो एक हजार साल तक हिन्दू राजाओं की कल्पना से बाहर था, उनके हाथों सर हुआ। जिस मुल्क ने हिन्दोस्तान को एक हजार बरस तक अपने मातहत रखा वहाँ हिन्दू कौम का झण्डा रणजीतसिंह ने उड़ाया। गजनी और काबुल की पहाड़ियों इन्सानी खून से लाल हो गई, मगर रणजीतसिंह खुश नहीं हैं। उनके स्वभाव की कायापलट का भेद किसी की समझ में नहीं आता। अगर कुछ समझती है तो वृन्दा समझती है।

तीन महीने तक महाराज की यही कैफियत रही। इसके बाद उनका मिजाज अपने असली रंग पर आने लगा। दरबार की भलाई चाहनेवाले इस मौके के इन्तजार में थे। एक रोज उन्होंने महाराज से एक शानदार जलसा करने की प्रार्थना की। पहले तो वह बहुत कुद्ध हुए मगर आखिरकार मिजाज समझनेवालों की घातें अपना काम कर गईं।

जलसे की तैयारियां बड़े पैमाने पर की जाने लगीं। शाही नृत्यशाला की सजावट होने लगी। पटना, बनारस, लखनऊ, ग्वालियर, दिल्ली और पूना की नामी वेश्याओं को सन्देश भेजे गए। वृन्दा को भी निमन्त्रण मिला। आज एक मुद्दत के बाद उसके चेहरे पर मुस्कराहट की झलक दिखाई दी।

जलसे की तारीख निश्चित हो गई। लाहौर की सड़कों पर रंग-बिरंगी झंडियाँ लहराने लगीं। चारों तरफ से नवाब और राजे बड़ी शान के साथ सज-धजकर आने लगे। होशियार फर्राशों ने नृत्यशाला को इतने सुन्दर ढंग से सजाया था कि उसे देखकर लगता था कि विलास का विश्रामस्थल है।

शाम के वक्त शाही दरबार जमा। महाराजा साहब सुनहरे राजसिंहासन पर शोभायमान हुए। नवाब और राजे, अमीर और रईस, हाथी-घोड़ों पर सवार अपनी सज-धज दिखाते हुए जुलूस बनाकर महाराज की कदमबोसी को चले। सड़क पर दोनों तरफ तमाशाइयों का ठठ लगा था। खुशी का रंगों से भी कोई गहरा सम्बन्ध है। जिधर आँख उठती थी रंग ही रंग दिखाई देते थे। ऐसा मालूम होता था कि कोई उमड़ी हुई नदी रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियों से बहती चली आती है।

अपनी खुशी के जोश में कभी-कभी लोग अभद्रता भी कर बैठते थे। एक पंडित जी मिर्जई पहने, सर पर गोल टोपी रखे तमाशा देखने में लगे थे। किसी मनचले ने उनकी तोंद पर एक चमगादड़ चिपटा दी। पंडित जी बेतहाशा तोंद मटकाते हुए भागे। बड़ा कहकहा पड़ा। एक और मौलवी साहब नीची अचकन पहने एक दुकान पर खड़े थे। दुकानदार ने कहा—मौलवी साहब, आपको खड़े-खड़े तकलीफ होती है, यह कुर्सी रखी हुई है, बैठ जाइए। मौलवी साहब बहुत खुश हुए, सोचने लगे कि शायद मेरे रूप-रंग से रोब झलक रहा है वर्ना दुकानदार कुर्सी क्यों देता? दुकानदार आदमियों के बड़े पारखी होते हैं। हजारों आदमी खड़े हैं, मगर उसने किसी से बैठने की प्रार्थना न की। मौलवी साहब मुस्कराते हुए कुर्सी पर बैठे, मगर बैठते ही पीछे की तरफ लुढ़के और नीचे बहती हुई नाली में गिर पड़े। सारे कपड़े लथपथ हो गए। दुकानदार को हजारों खरी-खोटी सुनाई। बड़ा कहकहा पड़ा। कुर्सी तीन ही टाँग की थी।

एक जगह कोई अफीमची साहब तमाशा देखने आए हुए थे। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, छिदरे-छिदरे सर के बाल और दाढ़ी के बाल मेहंदी से रंगे हुए थे। आँखों में सुरमा भी था। आप बड़े गौर से सैर करने में लगे थे। इतने में एक हलवाई सर पर खोमचा रखे हुए आया और बोला—खां साहब, जुमेरात की गुलाबवाली रेवड़ियाँ हैं। आज पैसे की आध पाव लगा दीं, खा लीजिए वर्ना पछताइएगा। अफीमची साहब ने जेब में हाथ डाला मगर पैसे न थे। हाथ मलकर रह गए। मुँह में पानी भर आया। गुलाबवाली रेवड़ियाँ और पैसे में आध पाव! न हुए पैसे नहीं तो सेरों तुला लेते। हलवाई ताड़ गया, बोला—आप पैसों की कुछ फिक्र न करें पैसे फिर मिल जाएँगे। आप कोई ऐसे-वैसे आदमी थोड़े ही हैं। अफीमची साहब की बाँछें लिख गईं। रूह फड़क उठी। आपने पाव भर रेवड़ियाँ लीं और जी में कहा—अब पैसा देने वाले पर लानत है। घर से निकलूंगा ही नहीं, तो पैसे क्या लोगे? अपने रूमाल में रेवड़ियाँ लीं। आशिक के दिल में सब कहाँ? मगर ज्यों ही पहली रेवड़ी जबान पर रखी कि तिलमिला गए। पागल कुत्ते की तरह पानी की तलाश में इधर-उधर दौड़ने लगे। आँख और नाक से पानी बहने लगा। आधा मुँह खोलकर ठंडी हवा से जबान की जलन बुझाने लगे। जब होश ठीक हुए तो हलवाई को हजारों गालियाँ सुनाई, इस पर भी लोग खूब हँसे। खुशी के मौकों पर ऐसी शरारतें अक्सर हुआ करती हैं और इन्हें लोग मुआफी के काबिल समझते हैं क्योंकि वह खौलती हुई हाँडी के उबाल हैं।

रात के नौ बजे संगीतशाला में जमघट हुआ। सारा महल नीचे से ऊपर तक रंग-बिरंगी हांडियों और फानूसों से जगमगा रहा था। अंदर झाड़ों की बहार थी। एक बाकमाल कारीगर ने रंगशाला के बीचोबीच अधर में लटका हुआ एक फव्वारा लगाया था जिसके सूराखों से खस और केवड़ा, गुलाब और सन्दल का अरक हलकी फुहारों में बरस रहा था। महफिल में अम्बर की बौछार करनेवाली तरावट फैली हुई थी। खुशी अपनी सखियों-सहेलियों के साथ खुशियाँ मना रही थी।

दस बजे महाराजा रणजीतसिंह तशरीफ लाए। उनके बदन पर तंजेब की एक सफेद अचकन थी और सिर पर तिरछी पगड़ी बँधी हुई थी। जिस तरह सूरज क्षितिज की रंगीनियों से पाक रहकर अपनी पूरी रोशनी दिखा सकता है उसी तरह हीरे और जवाहरात, दीवा[1] और हरीर[1] की पुरतकल्लुफ सजावट से मुक्त रहकर महाराजा

रणजीतसिंह का प्रताप पूरी तेजी के साथ चमक रहा था।

चन्द नामी शायरों ने महाराज की शान में इसी मौके के लिए कसीदे कहे थे। मगर उपस्थित लोगों के चेहरों से उनके दिलों में जोश खाता हुआ संगीत-प्रेम देखकर महाराज ने गाना शुरू करने का हुक्म दिया। तबले पर थाप पड़ी साजिन्दों ने सुर मिलाया, नींद से झपकती हुई आँखें खुल गई और गाना शुरू हो गया।

:: 7 ::

उस शाही महफिल में रात-भर मीठे-मीठे गानों की बौछार होती रही। पीलू और पिरच, देस और बिहाग के मदभरे झोंके चलते रहे। सुन्दरी नर्तकियों ने बारी-बारी से अपना कमाल दिखाया। किसी की नाज-भरी अदाएँ दिलों में खुब गईं, किसी का थिरकना कल्लेआम कर गया, किसी की रसीली तानों पर वाह-वाह मच गई। ऐसी तबीयतें बहुत कम थीं जिन्होंने सच्चाई के साथ गाने का पवित्र आनन्द उठाया हो।

चार बजे होंगे जब श्यामा की बारी आई तो उपस्थित लोग सँभल बैठे। चाव के मारे लोग आगे खिसकने लगे। खुमारी से भरी हुई आँखें चौंक पड़ी। वृन्दा महफिल में आई और सर झुकाकर खड़ी हो गई। उसे देखकर लोग हैरत में आ गए। उसके शरीर पर न आबदार गहने थे न खुशरंग, भड़कीली पेशवाज। वह सिर्फ एक गेरुए रंग की साड़ी पहने हुए थी। जिस तरह गुलाब की पंखुरी पर डूबते हुए सूरज की सुनहरी किरन चमकती है, उसी तरह उसके गुलाबी होंठों पर मुस्कराहट झलकती थी। उसका आडम्बर से मुका सौन्दर्य अपने प्राकृतिक वैभव की शान दिखा रहा था। असली सौन्दर्य बनाव-सिंगार का मोहताज नहीं होता। प्रकृति के दर्शन से आत्मा को जो आनन्द प्राप्त होता है वह सजे हुए बगीचों की सैर से मुमकिन नहीं। वृन्दा ने गाया—

सब दिन नाहीं बराबर जात

यह गीत इससे पहले भी लोगों ने सुना था मगर इस वक्त का-सा असर कभी दिलों पर नहीं हुआ था। किसी के सब दिन बराबर नहीं जाते यह कहावत रोज सुनते थे। आज उसका मतलब समझ में आया। किसी रईस को वह दिन याद आया जब खुद उसके सिर पर ताज था, आज वह किसी का गुलाम है। किसी को अपने बचपन की लाड़-प्यार की गोद याद आई, किसी को वह जमाना याद आया, जब वह जीवन के मोहक सपने देख रहा था। मगर अफसोस, अब वह सपना तितर-बितर हो गया। वृन्दा भी बीते हुए दिनों को याद करने लगी। एक दिन वह था कि उसके दरवाजे पर अताइयों और गानेवालों की भीड़ रहती थी और दिल में खुशियों की। और आज, आह, आज! इसके आगे वृन्दा कुछ न सोच सकी। दोनों हालतों का मुकाबला बहुत दिल तोड़नेवाला था, निराशा से भर देने वाला। उसकी आवाज भारी हो गई और रोने से गला बैठ गया।

महाराजा रणजीतसिंह श्यामा के तर्ज व अन्दाज को गौर से देख रहे थे। उनकी तेज

निगाहें उसके दिल में पहुँचने की कोशिश कर रही थीं। लोग अचंभे में पड़े हुए थे कि क्यों उनकी जबान से तारीफ और कद्रदानी की एक बात भी न निकली। वह खुश न थे उदास भी न थे, वह खयाल में डूबे हुए थे। उन्हें हुलिए से माफ पता चल रहा था कि यह औरत हरगिज अपनी अदाओं को बेचने वाली औरत नहीं है। यकायक वह उठ खड़े हुए और बोले —श्यामा, वृहस्पति को मैं फिर तुम्हारा गाना सुनूँगा।

:: 8 ::

वृन्दा के चले जाने के बाद उसका फूल-सा बच्चा राजा उठा और औंखें मलता हुआ बोला—अम्माँ कहाँ है?

प्रेमसिंह ने उसे गोद में लेकर कहा—अम्माँ मिठाई लेने गई है।

राजा खुश हो गया, बाहर जाकर लड़कों के साथ खेलने लगा। मगर कुछ देर के बाद फिर बोला—अम्मा मिठाई।

प्रेमसिंह ने मिठाई लाकर दी। मगर राजा रो-रोकर कहता रहा, अम्माँ, मिठाई। वह शायद समझा था कि अम्माँ की मिठाई इस मिठाई से ज्यादा मीठी होगी।

आखिर प्रेमसिंह ने उसे कंधे पर चढ़ा लिया और दोपहर तक खेतों में घूमता रहा। राजा कुछ देर तक चुप रहता और फिर चौंककर पूछने लगता—अम्माँ कहाँ

बूढ़े सिपाही के पास इस सवाल का कोई जवाब न था। वह बच्चे के पास से एक पल को भी कहीं न जाता और उसे बातों में लगाए रहता कि कहीं वह फिर न पूछ बैठे, अम्माँ कहाँ है? बच्चों की स्मरणशक्ति कमजोर होती है। राजा कई दिनों तक बेकरार रहा, आखिर धीरे-धीरे माँ की याद उसके दिल से मिट गई।

इस तरह तीन महीने गुजर गए। एक रोज शाम के वक्त राजा अपने दरवाजे पर खेल रहा था कि वृन्दा आती हुई दिखाई दी। राजा ने उसकी तरफ गौर से देखा, जरा झिझका, फिर दौड़कर उसकी टाँगों से लिपट गया और बोला—अम्माँ आई, अम्माँ आई।

वृन्दा की आँखों से आँसू जारी हो गए। उसने राजा को गोद में उठा लिया और कलेजे से लगाकर बोली—बेटा, अ भी मैं नहीं आई, फिर कभी आऊँगी।

राजा इसका मतलब न समझा। वह उसका हाथ पकड़कर खींचता हुआ घर की तरफ चला। माँ की ममता वृन्दा को दरवाजे तक ले गई। मगर चौखट से आगे न ले जा सकी। राजा ने बहुत खींचा मगर वह आगे न बड़ी। तब राजा की बड़ी बड़ी आँखों में ओंसू भर आए। उसके होंठ फैल गए और वह रोने लगा।

प्रेमसिंह उसका रोना सुनकर बाहर निकल आया, देखा तो वृन्दा खड़ी है। चौंककर बोला —वृन्दा मगर वृन्दा कुछ जवाब न दे सकी।

प्रेमसिंह ने फिर कहा—बाहर क्यों खडी हो, अन्दर आओ। अब तक कहाँ थीं?

वृन्दा ने ओंसू पोंछते हुए जवाब दिया—मैं अन्दर न आऊँगी।

प्रेमसिंह—आओ-आओ, अपने बूढ़े बाप की बातों का बुरा न मानो।

वृन्दा—नहीं दादा, मैं अन्दर कदम नहीं रख सकती।

प्रेमसिंह—क्यों?

वृन्दा—फिर कभी बताऊँगी। मैं तुम्हारे पास वह तेगा लेने आई हूँ।

प्रेमसिंह ने अचरज में आकर पूछा—उसे लेकर क्या करोगी?

वृन्दा—अपनी बेइज्जती का बदला लूंगी।

प्रेमसिंह—किससे?

वृन्दा—रणजीतसिंह से।

प्रेमसिंह जमीन पर बैठ गया और वृन्दा की बातों पर गौर करने लगा, फिर बोला—वृन्दा, तुम्हें मौका क्योंकर मिलेगा?

वृन्दा—कभी-कभी धूल के साथ उड़कर चींटी भी आसमान तक जा पहुँचती

प्रेमसिंह—मगर बकरी शेर से क्योंकर लड़ेगी?

वृन्दा—इसी गौ की मदद से।

प्रेमसिंह—इस तेगे ने कभी छिपकर खून नहीं किया।

वृन्दा-दादा, यह विक्रमादित्य का तेगा है। इसने हमेशा दुखियारों की मदद की

प्रेमसिंह ने तेगा लाकर वृन्दा के हाथ में रख दिया। वृन्दा उसे पहलू में छिपाकर जिस तरफ से आई थी उसी तरफ चली गई। सूरज डूब गया था। पश्चिम के क्षितिज में रोशनी का कुछ-कुछ निशान बाकी था और भैंसें अपने बछड़ों को देखने के लिए चरागाहों से दौडती और चाव-भरी हुई आवाज से मिमियाती चली आती थीं और वृन्दा अपने बच्चे को रोता छोड्कर शाम के अँ धेरे डरावने जंगल की तरफ जा रही थी।

:: 9 ::

वृहस्पति का दिन है। रात के दस बज चुके हैं। महाराजा रणजीतसिंह अपने विलास-भवन में शोभायमान हो रहे हैं। एक सात बत्तियोंवाला झाड़ू रौशन है। मानो दीपक-सुन्दरी अपनी सहेलियों के साथ शबनम का घूँघट मुँह पर डाले हुए अपने रूप के गर्व में खोई हुई है। महाराजा साहब के सामने वृन्दा गेरुए रंग की साड़ी पहने बैठी है। उसके हाथ में एक बीन है उसी पर वह एक लुभावना गीत अलाप रही है।

महाराज बोले—श्यामा, मैं तुम्हारा गाना सुनकर बहुत खुश हुआ, तुम्हें क्या इनाम दूँ?

श्यामा ने एक विशेष भाव से सिर झुकाकर कहा—हुजूर के अख्तियार में सब कुछ है।

रणजीतसिंह—जागीर लोगी

श्यामा—ऐसी चीज दीजिए जिससे आपका नाम हो जाए।

महाराज ने वृन्दा की तरफ गौर से देखा। उसकी सादगी कह रही थी कि वह धन-दौलत को कुछ नहीं समझती। उसकी दृष्टि की पवित्रता और चेहरे की गंभीरता साफ बता रही थी कि वह वेश्या नहीं है जो अपनी अदाओं को बेचती है। फिर पूछा—कोहनूर लोगी

श्यामा—वह हुजूर के ताज में अधिक सुशोभित है।

महाराज ने आश्चर्य में पड़कर कहा-तुम खुद माँगो।

श्यामा—मिलेगा?

रणजीतसिंह—हाँ।

श्यामा—मुझे इंसाफ के खून का बदला दिया जाए।

महाराज रणजीतसिंह चौंक पड़े। वृन्दा की तरफ फिर गौर से देखा और सोचने लगे इसका क्या मतलब है? इंसाफ तो खून का प्यासा नहीं होता, यह औरत जरूर किसी जालिम रईस या राजा की सताई हुई है। क्या अजब है कि उसका पति कहीं का राजा हो। जरूर ऐसा ही है। उसे किसी ने कल्ल कर दिया है। इंसाफ को खून की प्यास इसी हालत में होती है; इसी वक्त इंसाफ खूँखार जानवर हो जाता है। मैंने वादा किया है कि वह जो कुछ माँगेगी वह दूँगा। उसने एक बेशकीमती चीज माँगी है, इंसान के खून का बदला। वह उसे मिलना चाहिए। मगर किसका खून? राजा ने फिर पहलू बदलकर सोचा—किसका खून? यह सवाल मेरे दिल में न पैदा होना चाहिए। इंसाफ जिसका खून मांगे उसका खून मुझे देना चाहिए। इंसाफ के सामने सबका खून बराबर है। मगर इंसाफ को खून पाने का हक है, इसका फैसला कौन करेगा? बैर के बुखार से भरे हुए आदमी के हाथ में इसका फैसला नहीं करना चाहिए। अक्सर एक कड़ी बात, एक दिल जला देनेवाला ताना इंसान के दिल में खून की प्यास पैदा कर देता है। इस दिल जलानेवाले ताने की आग उस वक्त तक नहीं बुझती जब तक उस पर खून के छींटे न दिए जाएँ। मैंने जबान दे दी है तो गलती हुई। पूरी बात सुने बगैर, मुझे इंसाफ के खून का बदला देने का वादा हरगिज न करना चाहिए था। इन विचारों ने राजा को कई मिनट तक अपने में खोया हुआ रखा। आखिर वह बोले—श्यामा, तुम कौन हो?

वृन्दा—एक अनाथ औरत।

राजा—तुम्हारा घर कहाँ है?

वृन्दा—माहनगर में।

रणजीतसिंह ने वृन्दा को फिर गौर से देखा। कई महीने पहले रात के समय माहनगर में एक भोली-भाली औरत की जो तसवीर दिल में खींची थी वह इस औरत से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। उस वक्त आँखें इतनी बे धड़क न थीं। उस वक्त अस्त्रों में शर्म का पानी था, अब शेखी की झलक है। तब सच्चा मोती था, अब आ हो गया है।

महाराज बोले—श्यामा, इंसाफ किसका खून चाहता है?

वृन्दा—जिसे आप दोषी ठहराएं। जिस दिन हुजूर ने रात को माहनगर में पड़ाव किया था उसी रात को आपके सिपाही मुझे जबर्दस्ती खींचकर पड़ाव पर लाए और मुझे इस काबिल नहीं रखा कि लौटकर अपने घर जा सकूँ। मुझे उनकी नापाक निगाहों का निशाना बनना पड़ा। उनकी बेबाक जबानों ने, उनके शर्मनाक इशारों ने मेरी इज्जत खाक में मिला दी। आप वहाँ मौजूद थे और आपकी बेकस रैयत पर यह जुल्म किया जा रहा था। कौन मुजरिम है? इंसाफ किसका खून चाहता है? इसका फैसला आप करें।

रणजीतसिंह जमीन पर आँखें गड़ाए सुनते रहे। वृन्दा ने जरा दम लेकर फिर कहना शुरू किया—मैं विधवा स्त्री हूँ। मेरी इज्जत और आबरू के रखवाले आप हैं। पति—वियोग के साढ़े तीन साल मैंने तपस्विनी बनकर काटे थे। मगर आपके आदमियों ने मेरी तपस्या धूल में मिला दी। मैं इस योग्य नहीं रही कि लौटकर अपने घर जा सकूँ। अपने बच्चे के लिए मेरी गोद अब नहीं खुलती। अपने बूढ़े बाप के सामने मेरी गर्दन नहीं उठती। मैं अब अपने गाँव की औरतों से आँखें चुराती हूँ। मेरी इज्जत लुट गई। औरत की इज्जत कितनी कीमती चीज है, इसे कौन नहीं जानता? एक औरत की इज्जत के पीछे लंका का शानदार राज्य मिट

गया। एक ही औरत की इज्जत के लिए कौरव वंश का नाश हो गया। औरतों की इज्जत के लिए हमेशा खून की नदियाँ बही हैं और राज्य उलट गए हैं। मेरी इज्जत आपके आदमियों ने ली है इसका जवाबदेह कौन है। इंसाफ किसका खून चाहता है, इसका फैसला आप करें।

वृन्दा का चेहरा लाल हो गया। महाराजा रणजीतसिंह एक गंवार देहाती औरत का यह हौसला, यह खयाल और जोशीली बात सुनकर सकते में आ गए। काँच का टुकड़ा टूटकर तेज धारवाला छुरा हो जाता है। वही कैफियत इंसान के टूटे हुए दिल की है।

आखिर महाराज ने ठंडी साँस ली और हसरतभरे लहजे में बोले—श्यामा, इंसाफ जिसका खून चाहता है, वह मैं हूँ।

इतना कहने के साथ महाराज रणजीतसिंह का चेहरा भभक उठा और दिल बेकाबू हो गया। तात्कालिक भावनाओं के नशे में आदमी का दिल आसमान की बुलन्दियों तक जा पहुँचता है। कटि के चुभने से कराहनेवाला इंसान इसी नशे से मस्त होकर खंजर की नोक कलेजे में चु भो लेता है। पानी की बौछार से डरने वाला इंसान गले-गले पानी में अकड़ता हुआ चला जाता है। इस हालत में इंसान का दिल एक असाधारण शक्ति और असीम उत्साह अनुभव करने लगता है। इसी हालत में इंसान छोटे-से-छोटे जलील—से-जलील काम करता है और इसी हालत में इंसान अपने वचन और कर्म की ऊँचाई से देवताओं को भी लज्जित कर देता है। महाराजा रणजीतसिंह उद्विग्न होकर उठ खड़े हुए और ऊँची आवाज में बोले—श्यामा, इंसाफ जिसका खून चाहता है, वह मैं हूँ। तुम्हारे साथ जो जुल्म हुआ है उसका जवाबदेह मैं हूँ। बुजुर्गों ने कहा है कि ईश्वर के सामने राजा अपने नौकरों की सख्ती और जबरदस्ती का जिम्मेदार होता है।

यह कहकर राजा ने तेजी के साथ अचकन के बंद खोल दिए और वृन्दा के सामने घुटनों के बल, सीना फैलाकर बैठते हुए बोले—श्यामा, तुम्हारे पहलू में तलवार छिपी हुई है। वह विक्रमादित्य की तलवार है। उसने कितनी ही बार न्याय की रक्षा की है। आज एक अभागे राजा के खून से उसकी प्यास बुझा दो। बेशक वह राजा अभागा है, जिसके राज्य में अनाथों पर अत्याचार होता है।

वृन्दा के दिल में अब एक जबर्दस्त तब्दीली पैदा हुई, बदले की भावना ने प्रेम और आदर को जगह दी। रणजीतसिंह ने अपनी जिम्मेदारी मान ली, वह उसके सामने एक मुजरिम की हैसियत में इंसाफ की तलवार का निशाना बनने के लिए खड़े हैं उनकी जान अब उसकी मुट्ठी में है। उन्हें मारना या जिलाना अब उसका अख्तियार है।

यह खयाल उसकी बदले की भावना को ठंडा कर देने के लिए काफी थे। प्रताप और ऐश्वर्य जब अपने स्वर्ण-सिंहासन से उतरकर दया की याचना करने लगता है तो कौन ऐसा हृदय है जो पसीज न जाएगा? वृन्दा ने दिल पर सब्र करके पहलू से खंजर निकाला, मगर वार न कर सकी। तलवार उसके साथ से छूटकर गिर पड़ी।

महाराज रणजीतसिंह समझ गए कि औरत की हिम्मत दगा दे गई। वह बड़ी तेजी से लपके और गौ को हाथ में उठा लिया। यकायक दाहिना हाथ पागलों जैसे जोश के साथ ऊपर को उठा। वह एक बार जोर से बोले, ' वाहे गुरु की जय ' और करीब था कि तलवार सीने में डूब जाए। बिजली कौंधकर बादल के सीने में घुसने ही वाली थी कि वृन्दा एक चीख मारकर उठी और राजा के ऊपर उठे हुए हाथ को अपने दोनों हाथों से मजबूत पकड़

लिया। रणजीतसिंह ने झटका देकर हाथ छुड़ाना चाहा मगर कमजोर औरत ने उनके हाथ को इस तरह जकड़ा था जैसे मुहब्बत दिल को जकड़ लेती है। बेबस होकर बोले—श्यामा, इंसाफ को अपनी प्यास बुझाने दो।

श्यामा ने कहा—महाराज, उसकी प्यास बुझ गई। यह तलवार इसकी गवाह

महाराज ने गौ को देखा। इस वक्त उसमें दूज के चाँद की चमक थी। सत्य और न्याय के चमकते हुए सूरज ने उस चाँद को आलोकित कर दिया।

–जमाना जनवरी *1911*

1. रेशमी कपडों के नाम

आखिरी मंजिल

आह! आज तीन साल गुजर गए यही मकान, यही बाग, यही गंगा का किनारा, यही संगमरमर का हौज। यही मैं हूँ और यही दरोदीवार। मगर अब इन चीजों से दिल पर कोई असर नहीं होता। वह नशा जो गंगा की सुहानी लहरों और हवा के दिलकश झोंकों से दिल पर छा जाता था उस नशे के लिए अब जी तरस-तरस के रह जाता है। अब वह दिल नहीं रहा। वह युवती जो मेरी जिन्दगी का सहारा थी अब इस दुनिया में नहीं है।

मोहिनी ने बड़ा आकर्षक रूप पाया था। उसके सौंदर्य में एक आश्चर्यजनक बात थी। उसे प्यार करना मुश्किल था, वह पूजने बड़ी लुभावनी आत्मिकता की दीप्ति रहती थी। उसकी आँखें जिनमें लाज की गंभीरता और पवित्रता का नशा था, प्रेम का स्रोत थीं। उसकी एक-एक चितवन, एक-एक क्रिया, एक-एक बात उसके हृदय की पवित्रता और सच्चाई का असर दिल पर पैदा करती थी। जब वह अपनी शर्मीली आँखों से मेरी ओर ताकती तो उसका आकर्षण और उसकी गर्मी मेरे दिल में एक ज्वार-भाटा-सा पैदा कर देती थी। उसकी आँखों से आत्मिक भावों की किरनें निकलती थीं मगर उसके होंठ प्रेम की बानी से अपरिचित थे। उसने कभी इशारे से भी उस अथाह प्रेम को व्यक्त नहीं किया जिसकी लहरों में वह खुद तिनके की तरह बही जाती थी। उसके प्रेम की कोई सीमा न थी। वह प्रेम जिसका लक्ष्य मिलन है प्रेम नहीं वासना है। मोहिनी का प्रेम वह प्रेम था जो मिलन में भी वियोग के मजे लेता है। मुझे खूब याद है एक बार जब उसी हौज के किनारे चाँदनी रात में मेरी प्रेम-भरी बातों से वि भोर होकर उसने कहा था-आह! वह आवाज अभी मेरे हृदय पर अंकित है ' मिलन प्रेम का आदि है अन्त नहीं। ' प्रेम की समस्या पर इससे ज्यादा शानदार, इससे ज्यादा ऊँचा खयाल कभी मेरी नजर से नहीं गुजरा। वह प्रेम जो चितवनों से पैदा होता है और वियोग में भी हरा-भरा रहता है, वह वासना के एक झोंके को भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। सम्भव है कि यह मेरी आत्मस्तुति हो मगर वह प्रेम, जो मेरी कमजोरियों के बावजूद मोहिनी को मुझसे था उसका एक कतरा भी मुझे बेसुध करने के लिए काफी था। मेरा हृदय इतना विशाल ही न था, मुझे आश्चर्य होता था कि मुझमें वह कौन-सा गुण था जिसने मोहिनी को मेरे प्रति प्रेम से विह्वल कर दिया था। सौन्दर्य आचरण की पवित्रता, मर्दानगी का जौहर यही वह गुण हैं जिन पर मोहब्बत निछावर होती है मगर मैं इनमें से एक पर भी गर्व नहीं कर सकता था। शायद मेरी कमजोरियाँ ही उस प्रेम की तड़प का कारण थीं।

मोहिनी में वह अदाएँ न थीं जिन पर रंगीली तबीयतें फिदा हो जाया करती हैं। तिरछी चितवन, रूप-गर्व की मस्ती से भरी हुई आँखें दिल को मोह लेने वाली मुस्कराहट, चंचल वाणी, इनमें से कोई चीज यहाँ न थी। मगर जिस तरह चाँद की मद्धिम सुहानी रोशनी में कभी-कभी फुहारें पड़ने लगती हैं उसी तरह निश्छल प्रेम में उसके चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट कौंध जाती और आँखें नम हो जातीं। यह अदा न थी, सच्चे भावों की तस्वीर थी जो मेरे हृदय में पवित्र प्रेम की खलबली पैदा कर देती थी।

:: 2 ::

शाम का वक्त था, दिन और रात गले मिल रहे थे। आसमान पर मतवाली घटाएँ छाई हुई थीं और मैं मोहिनी के साथ उसी हौज के किनारे बैठा हुआ था। ठंडी-ठंडी बयार और मस्त घटाएँ हृदय के किसी कोने में सोये हुए प्रेम के भाव को जगा दिया करती हैं। वह मतवालापन जो उस वक्त हमारे दिलों पर छाया हुआ था, उस पर मैं हजारों होशमंदियों को कुर्बान कर सकता हूँ। ऐसा मालूम होता था कि उस मस्ती के आलम में हमारे दिल बेताब होकर आँखों से टपक पड़ेंगे। आज मोहिनी की जबान भी संयम की बेड़ियों से मुका हो गई थी और उसकी प्रेम में डूबी हुई बातों से मेरी आत्मा को जीवन मिल रहा था।

यकायक मोहिनी ने चौंककर गंगा की तरफ देखा। हमारे दिलों की तरह उस वक्त गंगा भी उमड़ी हुई थी।

पानी की उस उद्विग्न उठती-गिरती सतह पर एक दीया बहता हुआ चला जाता था और उसका चमकता हुआ अक्स थिरकता और नाचता एक पुच्छल तारे की तरह पानी को आलोकित कर रहा था। आह! उस नन्हीं-सी जान की क्या बिसात थी। कागज के चन्द पुर्जे बाँस की चन्द तीलियाँ, मिट्टी का एक दीया कि जैसे किसी की अतृप्त लालसाओं की समाधि थी जिस पर किसी दुःख बँटाने वाले ने तरस खाकर एक दीया जला दिया था मगर वह नन्हीं-सी जान जिसके अस्तित्व का कोई ठिकाना न था, उस अथाह सागर में उछलती हुई लहरों से टकराती, भंवरों से हिलकोरे खाती, शोर करती हुई लहरों को रौंदती चली जाती थी। शायद जलदेवियों ने उसकी निर्बलता पर तरस खाकर उसे अपने आचलों में छुपा लिया था।

जब तक वह दीया झिलमिलाता और टिमटिमाता, हमदर्द लहरों से झकोरे लेता दिखाई दिया, मोहिनी टकटकी लगाए खोई-सी उसकी तरफ ताकती रही। जब वह खि से ओझल हो गया तो वह बेचैनी से उठ खड़ी हुई और बोली—मैं किनारे पर जाकर उस दीये को देखूँगी।

जिस तरह हलवाई की मनभावन पुकार सुनकर बच्चा घर से निकल पड़ता है और चाव-भरी आँखों से देखता और अधीर आवाजों से पुकारता उस नेमत के थाल की तरफ दौड़ता है, उसी जोश और चाव के साथ मोहिनी नदी के किनारे चली।

बाग से नदी तक सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। हम दोनों तेजी के साथ नीचे उतरे और किनारे पहुँचते ही मोहिनी ने खुशी के मारे उछलकर जोर से कहा-अभी है! अभी है! देखो वह निकल गया!

वह बच्चों का-सा उत्साह और उद्विग्न अधीरता, जो मोहिनी के चेहरे पर उस समय थी, मुझे कभी न भूलेगी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ, उस दीये से ऐसा हार्दिक सम्बन्ध, ऐसी विह्वलता क्यों? मुझ जैसा कवित्वशून्य व्यक्ति उस पहेली को जरा भी न बूझ सका।

मेरे हृदय में आशंकाएँ पैदा हुईं। अँधेरी रात है, घटाएँ उमड़ी हुई, नदी बाढ़ पर, हवा तेज, वहाँ इस वक्त ठहरना ठीक नहीं। मगर मोहिनी! वह चाव-भरे भोलेपन की तस्वीर, उसी दीये की तरफ आँखें लगाए चुपचाप खड़ी थी और वह उदास दीया ज्यों-का-त्यों हिलता-मचलता चला जाता था, न जाने कहाँ, किस देश को!

मगर थोड़ी देर के बाद वह दीया आँखों से ओझल हो गया। मोहिनी ने निराश स्वर में पूछा—गया! बुझ गया होगा?

और इसके पहले कि मैं कुछ जवाब दूँ वह उस डोंगी के पास चली गई, जिस पर बैठकर हम कभी-कभी नदी की सैरें किया करते थे, और प्यार से मेरे गले लिपटकर बोली—मैं उस दीये को देखने जाऊँगी, मैं देखूँगी कि वह कहाँ जा रहा है? किस देश को?

यह कहते-कहते मोहिनी ने नाव की रस्सी खोल ली। जिस तरह पेड़ों की डालियाँ तूफान के झोंकों से झकोले खाती हैं उसी तरह यह डोंगी डाँवाडोल हो रही थी। नदी का वह डरावना विस्तार, लहरों की वह भयानक छलांगें पानी की वह गरजती हुई आवाज, इस खौफनाक अँधेरे में इस डोंगी का बेड़ा क्योंकर पार होगा! मेरा दिल डूब गया। क्या उस अभागे की तलाश में यह किश्ती भी डूबेगी? मगर मोहिनी का दिल उस वक्त उसके बस में न था। उसी दीये की तरह उसका हृदय भी भावनाओं की विराद लहरों भरी, गरजती हुई नदी में बहा जा रहा था। मतवाली घटाएँ झुकती चली आती थीं कि जैसे नदी से गले मिलेंगी और वह काली नदी यों उठती थी कि जैसे बादलों को छू लेगी। डर के मारे औखें मुंदी जाती थीं। हम तेजी के साथ उछलते कगारों के गिरने की आवाजें सुनते काल-काले पेड़ों का झूमना देखते चले जाते थे। आबादी पीछे छूट गई। देवताओं की बस्ती से भी आगे निकल गए। यकायक मोहिनी चौंककर उठ खड़ी हुई और बोली—अभी है! अभी है! देखो वह जा रहा है।

मैंने आँख उठाकर देखा, वह दीया ज्यों का-त्यों हिलता-मचलता चला जाता था।

:: 3 ::

उस दीये को देखते हम बहुत दूर निकल गए। शेहिनी ने यह राग अलापना शुरू किया—

मैं साजन से मिलन चली

कैसा तड़पा देने वाला गीत था और कैसी दर्दभरी रसीली आवाज! प्रेम और आँसुओं में डूबी हुई। मोहक गीत में कल्पनाओं को जगाने की बड़ी शक्ति होती है। वह मनुष्य को भौतिक संसार से उठाकर कल्पनालोक में पहुँचा देता है। मेरे मन की आँखों में उस वक्त नदी की पुरजोर लहरें नदी किनारे की झूमती हुई डालियाँ सनसनाती हुई हवा सबने जैसे रूप धर लिया था और सब की सब तेजी से कदम उठाए चली जाती थीं, अपने साजन से मिलने के लिए। उत्कंठा और प्रेम से झूमती हुई एक युवती की धुँधली सपने जैसी तस्वीर हवा में, लहरों में और पेड़ों के झुरमुट में चली जाती दिखाई देती और कहती थी—साजन से मिलने के लिए! इस गीत ने सारे दृश्य पर उत्कण्ठा का जादू फूँक दिया—

मैं साजन से मिलन चली
साजन बसत कौन सी नगरी मैं बौरी ना जाएं
ना मोहे आस मिलन की उससे ऐसी प्रीत भली
मैं साजन से मिलन चली

मोहिनी खामोश हुई तो चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था और उस सन्नाटे में एक बहुत मद्धिम, रसीला स्वप्निल स्वर क्षितिज के उस पार से या नदी के नीचे से या हवा के झोंकों के साथ आता हुआ मन के कानों को सुनाई देता था—

मैं साजन से मिलन चली

मैं इस गीत से इतना प्रभावित हुआ कि जरा देर के लिए मुझे खयाल न रहा कि कहाँ हूँ और कहाँ जा रहा हूँ। दिल और दिमाग में वही राग गूँज रहा था। अचानक मोहिनी ने कहा —उस दीये को देखो। मैंने दीये की तरफ देखा। उसकी रोशनी मन्द हो गई थी और आयु की पूँजी खत्म हो चली थी। आखिर वह एक बार जरा भभका और बुझ गया। जिस तरह पानी की बूँद नदी में गिरकर गायब हो जाती है उसी तरह अँधेरे के फैलाव में उस दीये की हस्ती गायब हो गई। मोहिनी ने धीमे से कहा, अब नहीं दिखाई देता! बुझ गया! यह कहकर उसने ठण्डी साँस ली। दर्द उमड़ आया। आँसुओं से गला फँस गया, जबान से सिर्फ इतना निकला, क्या यही उसकी आखिरी मंजिल थी? और आँखों से तू! गिरने लगे।

मेरी आँखों के सामने से पर्दा-सा हट गया। मोहिनी की बेचैनी और उत्कण्ठा, अधीरता और उदासी का रहस्य समझ में आ गया और बरबस मेरी आँखों से भी आँसू की चन्द चूदें टपक पड़ी। क्या उस शोर-भरे, खतरनाक, तूफानी सफर की यही आखिरी मंजिल थी?

दूसरे दिन मोहिनी उठी तो उसका चेहरा पीला था। उसे रातभर नींद नहीं आई थी। वह कवि स्वभाव की स्त्री थी। रात की इस घटना ने उसके दर्दभरे भावुक हृदय पर बहुत असर पैदा किया था। हँसी उसके होंठों पर यूँ ही बहुत कम आती थी, हाँ, चेहरा खिला रहता था। आज से वह हँसमुखपन भी विदा हो गया, हरदम चेहरे पर एक उदासी-सी छाई रहती और बातें ऐसी जिनसे हृदय छलनी होता था और रोना आता था। मैं उसके दिल को इन खयालों से दूर रखने के लिए कई बार हँसानेवाले किस्से लाया मगर उसने उन्हें खोलकर भी न देखा। हाँ जब मैं घर पर न होता तो वह कवि की रचनाएँ देखा करती मगर इसलिए नहीं कि उसके पढ़ने से कोई आनन्द मिलता था बल्कि इसलिए कि उसे रोने के लिए खयाल मिल जाता था और वह कविताएँ जो उस जमाने में उसने लिखीं दिल को पिघला देने वाले दर्द-भरे गीत हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो इन्हें पढ़कर अपने आँसू रोक लेगा। वह कभी-कभी अपनी कविताएँ मुझे सुनाती और जब मैं दर्द में डूबकर उनकी प्रशंसा करता तो मुझे उसकी आँखों में आत्मा के उल्लास का नशा दिखाई पड़ता। हँसी-दिल्लगी और रंगीनी मुमकिन है कुछ लोगों के दिलों पर असर पैदा कर सके मगर वह कौन-सा दिल है जो दर्द के भावों से पिघल न जाएगा।

एक रोज हम दोनों इसी बाग की सैर कर रहे थे। शाम का वक्त था और चैत का महीना। मोहिनी की तबीयत आज खुश थी। बहुत दिनों के बाद आज उसके होंठों पर मुस्कराहट की झलक दिखाई दी थी। जब शाम हो गई और पूरनमासी का चाँद गंगा की गोद से निकलकर ऊपर उठा तो हम इसी हौज के किनारे बैठ गए। यह मौलसिरियों की कतार और यह हौज मोहिनी की यादगार है। चाँदनी में बिसात आई और चौपड़ होने लगी। आज तबीयत की ताजगी ने उसके रूप को चमका दिया था और उसकी मोहक चपलताएँ मुझे मतवाला किए देती थीं। कई बाजियाँ खेला और हर बार हारा। हारने में जो मजा था वह जीतने में कहाँ।

हल्की-सी मस्ती में जो मजा है वह छकने और मतवाला होने में नहीं।

चाँदनी खूब छिटकी हुई थी। यकायक मोहिनी ने गंगा की तरफ देखा और मुझसे बोली —वह उस पार कैसी रोशनी नजर आ रही है? मैंने भी निगाह दौड़ाई, चिता की आग जल रही थी लेकिन मैंने टालकर कहा—माँझी खाना पका रहे हैं। मोहिनी को विश्वास न हुआ। उसके चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट दिखाई दी और आँखें नम हो गई। ऐसे दुःख देनेवाले दृश्य उसके भावुक और दर्दमन्द दिल पर वही असर करते थे जो लू की लपट फूलों के साथ करती है।

थोड़ी देर तक वह मौन, निश्चल बैठी रही, फिर शोकभरे स्वर में बोली-' अपनी आखिरी मंजिल पर पहुँच गया!'

–जमाना, अगस्त-सितम्बर, *1911*

आल्हा

आल्हा का नाम किसने नहीं सुना। पुराने जमाने के चन्देल राजपूतों में वीरता और जान पर खेल कर स्वामी की सेवा करने के लिए किसी राजा-महाराजा को भी यह अमर कीर्ति नहीं मिली। राजपूतों के नैतिक नियमों में केवल वीरता ही नहीं थी बल्कि अपने स्वामी और अपने राजा के लिए जान देना भी उसका एक अंग था। आल्हा और ऊदल की जिन्दगी इसकी सबसे अच्छी मिसाल है। सच्चा राजपूत क्या होता था और उसे क्या होना चाहिए इसे जिस खूबसूरती से इन दोनों भाइयों ने दिखा दिया है, उसकी मिसाल हिन्दोस्तान उगल्हा क किसी दूसरे हिस्से में मुश्किल से मिल सकेगी। आल्हा और ऊदल के मार्क और उनके कारनामे एक चन्देली कवि ने शायद उन्हीं के जमाने में गाए और उसको इस सूबे में जो लोकप्रियता प्राप्त है, वह शायद रामायण को भी न हो। यह कविता आल्हा ही के नाम से प्रसिद्ध है और आठ-नौ शताब्दियाँ गुजर जाने के बावजूद उसकी दिलचस्पी और सर्वप्रियता में अन्तर नहीं आया। आल्हा गाने का इस प्रदेश में बड़ा रिवाज है। देहात में लोग हजारों की संख्या में आल्हा सुनने के लिए जमा होते हैं। शहरों में भी कभी-कभी यह मण्डलियों दिखाई दे जातो हैं। बड़े लोगों की अपेक्षा सर्वसाधारण में यह किस्सा अधिक लोकप्रिय है। किसी मजलिस में जाइए हजारों आदमी जमीन के फर्श पर बैठे हुए हैं सारी महफिल जैसे बेसुध हो रही है और आल्हा गानेवाला किसी मोड़ पर बैठा हुआ अपना अलाप सुना रहा है। उसकी आवाज आवश्यकतानुसार कभी ऊँची हो जाती है और कभी मद्धिम, मगर जब वह किसी लड़ाई और उसकी तैयारियों का जिक्र करने लगता है तो शब्दों का प्रवाह, उसके हाथों और भवों के इशारे, ढोल की मर्दाना लय और उन पर वीरतापूर्ण शब्दों का चुस्ती से बैठना, जो लड़ाई की कविताओं ही की अपनी एक विशेषता है, यह सब चीजें मिलकर सुनने वालों के दिलों में मर्दाना जोश की एक उमंग-सी पैदा कर देते हैं। बयान करने का तर्ज ऐसा सादा और दिलचस्प और जबान ऐसी आमफहम है कि उसके समझने में जरा भी दिक्कत नहीं होती। वर्णन और भावों की सादगी, कला के सौंदर्य का प्राण है।

राजा परमालदेव चन्देल खानदान का आखिरी राजा था। तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में वह खानदान समाप्त हो गया। महोबा जो एक मामूली कस्बा है उस जमाने में चंदेलों की राजधानी था। महोबा की सलनत दिल्ली और कन्नौज में आँखें मिलाती थी। आल्हा और ऊदल इसी राजा परमालदेव के दरबार के सम्मानित सदस्य थे। यह दोनों भाई अभी बच्चे ही थे कि उनका बाप जसराज एक लड़ाई में मारा गया। राजा को अनाथों पर तरस आया, उन्हें राजमहल में ले आए और मुहब्बत के साथ अपनी रानी मलिनहा के सुपुर्द कर दिया। रानी ने उन दोनों भाइयों की परवरिश और लालन-पालन अपने लड़के की तरह किया। जवान होकर यही दोनों भाई बहादुरी में सारी दुनिया में मशहूर हुए। इन्हीं दिलावरों के कारनामों ने महोबे का नाम रोशन कर दिया है।

बड़े लड़इया महोबे वाले

जिनके बल को वार न पार ।

आल्हा और ऊदल राजा परमालदेव पर जान कुर्बान करने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। रानी मलिनहा ने उन्हें पाला, उनकी शादियाँ कीं उन्हें गोद में खिलाया। नमक के हक के साथ-साथ इन एहसानों और संबंधों ने दोनों भाइयों को चंदेल राज का जांनिसार रखवाला और राजा परमालदेव का वफादार सेवक बना दिया था। उनकी वीरता के कारण आस-पास के सैकड़ों घमंडी राजा चंदेलों के अधीन हो गए। महोबा राज्य की सीमाएँ नदी की बाढ़ की तरह फैलने लगीं और चंदेलों की शक्ति दूज के चाँद से बढ़कर पूरनमासी का चाँद हो गई। यह दोनों वीर कभी चैन से न बैठते थे। रणक्षेत्र में अपने हाथ का जौहर दिखाने की उन्हें धुन थी। सुख-सेज पर उन्हें नींद न आती थी। और वह जमाना भी ऐसा ही बेचैनियों से भरा हुआ था। उस जमाने में चैन से बैठना दुनिया के परदे से मिट जाना था। बात-बात पर तलवारें चलतीं और खून की नदियाँ बहती थीं। यहाँ तक कि शादियाँ भी खूनी लड़ाइयों जैसी हो गई थीं। लड़की पैदा हुई और शामत आ गई। हजारों सिपाहियों सरदारों और सम्बन्धियों की जानें दहेज में देनी पड़ती थीं। आल्हा और ऊदल उसी पुरशोर जमाने की सच्ची तस्वीरें हैं और गो कि ऐसी हालतों और जमाने के साथ जो नैतिक दुर्बलताएँ और विषमताएँ पाई जाती हैं उनके असर से वह भी बचे हुए नहीं हैं मगर उनकी दुर्बलताएँ उनका कसूर नहीं बल्कि उनके जमाने का कसूर हैं। आल्हा का मामा माहिल एक काले दिल का, मन में द्वेष पालने वाला आदमी था। इन दोनों भाइयों का प्रताप और ऐश्वर्य उसके हृदय में काटे की तरह खटका करता था। उसकी जिंदगी की सबसे बड़ी आरजू यह थी कि उनके बड़प्पन को किसी तरह खाक में मिला दे। इसी नेक काम के लिए उसने अपनी जिन्दगी न्योछावर कर दी थी। सैकड़ों वार किए सैकड़ों बार आग लगाई, यहाँ तक कि आखिरकार उसकी नशा पैदा करने वाली मंत्रणाओं ने राजा परमाल को मतवाला कर दिया। लोहा भी पानी से कट जाता है।

एक रोज राजा परमाल दरबार में अकेले बैठे हुए थे कि माहिल आया। राजा ने उसे उदास देखकर पूछा, भइया, तुम्हारा चेहरा कुछ उतरा हुआ है। माहिल की आँखों में आँसू आ गए। मक्कार आदमी को अपनी भावनाओं पर जो अधिकार होता है वह किसी बड़े योगी के लिए भी कठिन है। उसका दिल रोता है मगर होंठ हँसते हैं दिल खुशियों के मजे लेता है मगर आँखें रोती हैं दिल डाह की आग से जलता है मगर जबान से शहद और शक्कर की नदियाँ बहती हैं।

माहिल बोला—महाराज, आपकी छाया में रहकर मुझे दुनिया में अब किसी चीज की इच्छा बाकी नहीं। मगर जिन लोगों को आपने धूल से उठाकर आसमान पर पहुँचा दिया और जो आपकी कृपा से आज बड़े प्रताप और ऐश्वर्य वाले बन गए उनकी कृतष्मता और उपद्रव का बखान करना मेरे लिए बड़े दुःख का कारण हो रहा है।

परमाल ने आश्चर्य से पूछा-क्या मेरा नमक खानेवालों में ऐसे भी लोग हैं? माहिल-महाराज, मैं कुछ नहीं कह सकता। आपका हृदय कृपा का सागर है मगर उसमें एक खूँखार घड़ियाल आ घुसा है।

—वह कौन है?

—मैं।

राजा ने आश्चर्यान्वित होकर कहा—तुम?

माहिल—हाँ महाराज, वह आभागा व्यक्ति मैं ही हूँ। मैं आज खुद अपनी फरियाद लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। अपने सम्बन्धियों के प्रति मेरा जो कर्तव्य है वह उस भक्ति की तुलना में कुछ भी नहीं जो मुझे आपके प्रति है। आल्हा मेरे जिगर का टुकड़ा है, उसका मांस मेरा मांस और उसका रक्त मेरा रक्त है। मगर अपने शरीर में जो रोग पैदा हो जाता है उसे विवश होकर हकीम से कहना पड़ता है। आल्हा अपनी दौलत के नशे में चूर हो रहा है। उसके दिल में यह झूठा खयाल पैदा हो गया है कि मेरे ही बाहुबल से यह राज्य कायम है।

राजा परमाल की आँखें लाल हो गई, बोला-आल्हा को मैंने हमेशा अपना लड़का समझा है।

माहिल—लड़के से ज्यादा।

परमाल-वह अनाथ था, कोई उसका संरक्षक न था। मैंने उसका पालन-पोषण किया, उसे गोद में खिलाया। मैंने उसे जागीरें दीं उसे अपनी फौज का सिपहसालार बनाया। उसकी शादी में मैंने बीस हजार चंदेल सूरमाओं का खून बहा दिया, उसकी माँ और मेरी मलिनहा वर्षों गले मिलकर सोयी हैं और आल्हा क्या मेरे एहसानों को भूल सकता है? माहिल, मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता। माहिल का चेहरा पीला पड़ गया। मगर सँभलकर बोला-महाराज, मेरी जबान से कभी झूठ बात नहीं निकली।

परमाल—मुझे कैसे विश्वास हो?

माहिल ने धीरे से राजा के कान में कुछ कह दिया।

:: 3 ::

आल्हा और ऊदल दोनों चौगान के खेल का अभ्यास कर रहे थे। लम्बे-चौड़े मैदान में हजारों आदमी इस तमाशे को देख रहे थे। गेंद किसी अभागे की तरह इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती थी। चोबदार ने आकर कहा—महाराज ने याद फरमाया है।

आल्हा को सन्देह हुआ। महाराज ने आज बेवक्त क्यों याद किया? खेल बंद हो गया। गेंद को ठोकरों से छुट्टी मिली। फौरन दरबार में चोबदार के साथ हाजिर हुआ और झुककर आदाब बजा लाया।

परमाल ने कहा—मैं तुमसे कुछ माँगूँ दोगे?

आल्हा ने सादगी से जवाब दिया-फरमाइए।

परमाल—इनकार तो न करोगे?

आल्हा ने कनखियों से माहिल की तरफ देखा और समझ गया कि इस वक्त कुछ न कुछ दाल में काला है। इसके चेहरे पर यह मुस्कराहट क्यों? गूलर में यह फूल क्यों लगे? क्या मेरी वफादारी का इजहान लिया जा रहा है? जोश से बोला—महाराज मैं आपकी जबान से ऐसे सवाल सुनने का आदी नहीं हूँ। आप मेरे संरक्षक, मेरे पालनहार, मेरे राजा हैं। आपकी भवों के इशारे पर मैं आम में कूद सकता हूँ और मौत से लड़ सकता हूँ। आपकी

आज्ञा पाकर मैं असम्भव को सम्भव बना सकता हूँ।आप मुझसे ऐसे सवाल न करें।

परमाल—शाबाश, मुझे तुमसे ऐसी ही उम्मीद है।

आल्हा—मुझे क्या हुक्म मिलता है?

परमाल—तुम्हारे पास नाहर घोड़ा है?

आल्हा ने ' जी हाँ ' कहकर माहिल की तरफ भयानक गुस्से भरी हुई आँखों से देखा।

परमाल—अगर तुम्हें बुरा न लगे तो मेरी सवारी के लिए दे दो।

आल्हा कुछ जवाब न दे सका, सोचने लगा, मैंने अभी वादा किया है कि इनकार न करूँगा। मैंने बात हारी है। मुझे इनकार न करना चाहिए। निश्चय ही इस वक्त मेरी स्वामिभक्ति की परीक्षा ली जा रही है। मेरा इनकार इस समय बहुत बेमौका और खतरनाक है। इसका तो कुछ गम नहीं। मगर मैं इनकार किस मुँह से करूँ, बेवफा न कहलाऊंगा। मेरा और राजा का सम्बन्ध केवल स्वामी और सेवक का नहीं है मैं उनकी गोद में खेला हूँ। जब मेरे हाथ कमजोर और पाँव में खड़े होने का बूता न था तब उन्होंने मेरे जुल्म सहे हैं क्या मैं इनकार कर सकता हूँ?

विचारों की धारा मुड़ी—माना कि राजा के एहसान मुझ पर अनगिनत हैं। मेरे शरीर का एक-एक रोआँ उनके एहसानों के बोझ से दबा हुआ है मगर क्षत्रिय कभी अपनी सवारी का घोड़ा दूसरे को नहीं देता। यह क्षत्रियों का धर्म नहीं। मैं राजा का पाला हुआ एहसानमन्द हूँ। मुझे अपने शरीर पर अधिकार है। उसे मैं राजा पर न्योछावर कर सकता हूँ। मगर राजपूती धर्म पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, उसे मैं नहीं तोड़ सकता। जिन लोगों ने धर्म के कच्चे धागे को लोहे की दीवार समझा है, उन्हीं से राजपूतों का नाम चमक रहा है। क्या मैं हमेशा के लिए अपने ऊपर दाग लगाऊँ? आह! माहिल ने इस वक्त मुझे खूब जकड़ रखा है। सामने खूँखार शेर है, पीछे गहरी खाई। या तो अपमान उठाऊँ या कृतघ्न कहलाऊँ। या तो राजपूतों के नाम को डुबोऊँ या बर्बाद हो जाऊँ। खैर, जो ईश्वर की मर्जी, मुझे कृतघ्न कहलाना स्वीकार है मगर अपमानित होना स्वीकार नहीं। बर्बाद हो जाना मंजूर है, मगर राजपूतों के धर्म में बट्टा लगाना मंजूर नहीं।

आल्हा सर नीचा किए इन्हीं खयालों में गोते खा रहा था। यह उसके लिए परीक्षा की घड़ी थी जिसमें सफल हो जाने पर उसका भविष्य निर्भर था।

मगर माहिल के लिए यह मौका उसके धीरज की कम परीक्षा लेनेवाला न था।

वह दिन आ गया जिसके इन्तजार में कभी आँखें न थकीं। खुशियों की यह बाढ़ अब संयम की लोहे की दीवार को काटती जाती थी। सिद्ध योगी पर दुर्बल मनुष्य की विजय होती जाती थी। यकायक परमाल ने आल्हा से बुलन्द आवाज में पूछा—किस दुविधा में हो? क्या नहीं देना चाहते?

आल्हा ने राजा से आँखें मिलाकर कहा—जी नहीं।

परमाल को तैश आ गया, कड़ककर बोला—क्यों?

आल्हा ने अविचल मन से उत्तर दिया—यह राजपूतों का धर्म नहीं है।

परमाल—क्या मेरे एहसानों का यही बदला है? तुम जानते हो, पहले तुम क्या थे और अब क्या हो?

आल्हा—जी हाँ जानता हूँ।

परमाल—तुम्हें मैंने बनाया है और मैं ही बिगाड़ सकता हूँ।

आल्हा से अब सब्र न हो सका, उसकी आँखें लाल हो गईं और त्योरियों पर बल पड़ गए। तेज लहजे में बोला—महाराज, आपने मेरे ऊपर जो एहसान किए उनका मैं हमेशा कृतज्ञ रहूँगा। क्षत्रिय कभी एहसान नहीं भूलता। मगर आपने मेरे ऊपर एहसान किए हैं तो मैंने भी जो तोड़कर आपकी सेवा की है। सिर्फ नौकरी और नमक का हक अदा करने का भाव मुझमें वह निष्ठा और गर्मी नहीं पैदा कर सकता जिसका मैं बार-बार परिचय दे चुका हूँ। मगर खैर, अब मुझे विश्वास हो गया कि इस दरबार में मेरा गुजर न होगा। मेरा आखिरी सलाम कबूल हो और अपनी नादानी से मैंने जो कुछ भूल की है वह माफ की जाय।

माहिल की ओर देखकर उसने कहा—मामाजी, आज से मेरे और आपके बीच खून का रिश्ता टूटता है। आप मेरे खून के प्यासे हैं तो मैं भी आपकी जान का दुश्मन हूँ।

:: 4 ::

आल्हा की माँ का नाम देवल देवी था। उसकी गिनती उन हौसले वाली उच्चविचार स्त्रियों में है जिन्होंने हिन्दोस्तान के पिछले कारनामों को इतना स्पृहणीय बना दिया है। उस अँधेरे युग में भी जब कि आपसी फूट और वैर की एक भयानक बाढ़ मुल्क में आ पहुँची थी हिन्दोस्तान में ऐसी-ऐसी देवियाँ पैदा हुईं जो इतिहास के अँ धेरे से अँधेरे पन्नों को भी ज्योतित कर सकती हैं। देवल देवी ने सुना कि आल्हा ने अपनी आन को रखने के लिए क्या किया तो उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने दोनों भाइयों को गले लगाकर कहा—बेटा, तुमने वही किया जो राजपूतों का धर्म था। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ कि तुम जैसे दो बात की लाज रखने वाले बेटे पाए हैं।

उसी रोज दोनों भाइयों ने महोबा से कूच कर दिया। अपने साथ अपनी तलवार और घोड़ों के सिवा और कुछ न लिया। माल-असबाब सब वहीं छोड़ दिए। सिपाही की दौलत और इज्जत सब कुछ उसकी तलवार है। जिसके पास वीरता की सम्पत्ति है उसे दूसरी किसी सम्पत्ति की जरूरत नहीं।

बरसात के दिन थे नदी-नाले उमड़े हुए थे। इन्द्र को उदारताओं से मालामाल होकर जमीन फूली नहीं समाती थी। पेड़ों पर मोरों की रसीली झनकारें सुनाई देती थीं और खेतों में निश्चिन्तता की शराब से मतवाज्ने कररान मल्हार की तानें अलाप रहे थे। पहाड़ियों की घनी हरियावल, पानी की दर्पन-जैसी सतह और जंगली बेल-बूटों के बनाव-संवार से प्रकृति पर एक यौवन बरस रहा था। मैदानों की ठंडी-ठंडी मस्त हवा, जंगली फूलों की मीठी-मीठी, सुहानी, आत्मा को उल्लास देने वाली महक और खेतों की लहराती हुई रंग-बिरंग उपज ने दिलों में आरजुओं का एक तूफान उठा दिया था। ऐसे मुबारक मौसम में आल्हा ने महोबा को आखिरी सलाम किया। दोनों भाइयों की औखें रोते-रोते लाल हो गई थीं क्योंकि आज उनसे उनका देश छूट रहा था। इन्हीं गलियों में उन्होंने घुटनों के बल चलना सीखा था, इन्हीं तालाबों में कागज की नावें चलाई थीं, यहीं जवानी की बेफिक्रियों के मजे लूटे थे, इनसे अब हमेशा के लिए नाता टूटता था। दोनों भाई आगे बढ़ते जाते थे, मगर बहुत धीरे-धीरे। यह खयाल था कि शायद परमाल ने रूठने वालों को मनाने के लिए अपना कोई

भरोसे का आदमी भेजा होगा। घोड़ों को सम्हाले हुए थे, मगर जब महोबे की पहाड़ियों का आखिरी निशान आँखों से ओझल हो गया तो उम्मीद की आखिरी झलक भी गायब हो गई। उन्होंने जिनका कोई देश न था, एक ठंडी साँस ली और घोड़े बढ़ा दिए। उनके निर्वासन का समाचार बहुत जल्द चारों तरफ फैल गया। उनके लिए हर दरबार में जगह थी, चारों तरफ से राजाओं के संदेश आने लगे। कन्नौज के राजा जयचन्द ने अपने राजकुमार को उनसे मिलने के लिए भेजा। संदेशों से जो काम न निकला वह इस मुलाकात ने पूरा कर दिया। राजकुमार की खातिरदारियाँ और आवभगत दोनों भाइयों को कन्नौज खींच ले गई। जयचन्द औखें बिछाए बैठा था। उसने आल्हा को अपना सेनापति बना दिया।

:: 5 ::

आल्हा और ऊदल के चले जाने के बाद महोबे में तरह-तरह के अँधेरे शुरू हुए। परमाल कमजोर शासक था। मातहत राजाओं ने बगावत का झण्डा बुलन्द किया। ऐसी कोई ताकत न रही जो उन झगड़ालू लोगों को वश में रख सके। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज की कुछ सेना सिमता से एक सफल लड़ाई लड़कर वापस आ रही थी। महोबे में पड़ाव किया। अक्खड़ सिपाहियों में तलवार चलते कितनी देर लगती है। चाहे राजा परमाल के मुलाजिमों की ज्यादाती हो, चाहे चौहान सिपाहियों की, नतीजा यह हुआ कि चन्देलों और चौहानों में अनबन हो गई। लड़ाई छिड़ गई। चौहान संख्या में कम थे। चन्देलों ने आतिथ्य-सत्कार के नियमों को एक किनारे रखकर चौहानों के खून से अपना कलेजा ठंडा किया और यह न समझे कि मुट्ठी-भर सिपाहियों के पीछे सारे देश पर विपत्ति आ जाएगी। बेगुनाहों का खून रंग लाएगा। पृथ्वीराज को यह दिल तोडनेवाली खबर मिली तो उसके गुस्से की कोई हद न रही। औंधी की तरह वह महोबे पर चढ़ दौड़ा और सिरको, जो इलाका महोबे का एक मशहूर कस्बा था, तबाह करके महोबे की तरफ बढ़ा। चन्देलों ने भी फौज खड़ी की। मगर पहले ही मुकाबले में उनके हौसले पस्त हो गए। आल्हा-ऊदल के बगैर फौज बिन दूल्हे की बरात थी। सारी फौज तितर-बितर हो गई। देश में तहलका मच गया। अब किसी क्षण पृथ्वीराज महोबे में आ पहुँचेगा, इस डर से लोगों के हाथ-पाँव फूल गए। परमाल अपने किए पर बहुत पछताया। मगर अब पछताना व्यर्थ था। कोई चारा न देखकर उसने पृथ्वीराज से एक महीने की सन्धि की प्रार्थना की। चौहान राजा युद्ध के नियमों को कभी हाथ से न जाने देता था। उसकी वीरता उसे कमजोर, बेखबर और नामुस्तैद दुश्मन पर वार करने की इजाजत न देती थी। इस मामले में अगर वह इन नियमों का इतनी सख्ती से पाबन्द न होता तो शहाबुद्दीन के हाथों उसे वह बुरा दिन न देखना पड़ता। उसकी बहादुरी ही उसकी जान की गाहक हुई। उसने परमाल का पैगाम मंजूर कर लिया। चन्देलों की जान में जान आई।

अब सलाह-मशवरा होने लगा कि पू थ्वीराज से क्योंकर मुकाबला किया जाय। रानी मलिनहा भी इस मशवरे में शरीक थी। किसी ने कहा, महोबे के चारों तरफ एक ऊँची दीवार बनाई जाय। कोई बोला, हम लोग महोबे को वीरान करके दक्खिन की ओर चलें। परमाल जबान से तो कुछ न कहता था, मगर समर्पण के सिवा उसे और कोई चारा न

दिखाई पड़ता था। तब रानी मलिनहा खड़ी होकर बोली—' ' चन्देल वंश के राजपूतो, तुम कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो? क्या दीवार खड़ी करके तुम दुश्मन को रोक लोगे? झाड़ू से कहीं आँधी रुकती है? तुम महोबे को वीरान करके भागने की सलाह देते हो। रेल. कायरों जैसी सलाह औरतें दिया करती हैं। तुम्हारी सारी बहादुरी और जान पर खेलना अब कहाँ गया? अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि चन्देलों के नाम से राजे थर्राते थे। चन्देलों की धाक बँधी हुई थी। तुमने कुछ ही सालों में सैकड़ों मैदान जीते, तुम्हें कभी हार नहीं हुई। तुम्हारी तलवार की दमक कभी मन्द नहीं हुई। तुम अब भी वही हो, मगर तुममें अब वह पुरुषार्थ नहीं है। वह पुरुषार्थ बनाफर वंश के साथ महोबे से उठ गया। देवल देवी के रूठने से चण्डिका देवी भी हमसे रूठ गईं। अब अगर कोई यह हारी हुई बाजी सँभाल सकता है तो वह आल्हा है। वही दोनों भाई इस नाजुक वक्त में हमें बचा सकते हैं। उन्हीं को मनाओ, उन पर महोबे के बहुत हक हैं। महोबे की मिट्टी और पानी से उनकी परवरिश हुई है। वह महोबे के हक कभी भूल नहीं सकते उन्हें ईश्वर ने बल और विद्या दी है, वही इस समय विजय का बीड़ा उठा सकते हैं।

रानी मलिनहा की बातें लोगों के दिलों में बैठ गई।

:: 6 ::

जगना भाट आल्हा और ऊदल को कन्नौज से लाने के लिए रवाना हुआ। यह दोनों भाई राजकुँवर लाखन के साथ शिकार खेलने जा रहे थे कि जगना ने पहुँचकर प्रणाम किया। उसके चेहरे से परेशानी और झिझक बरस रही थी। आल्हा ने घबराकर पूछा—कवीश्वर यहाँ कैसे भूल पड़े महोबे में तो सब खैरियत है? हम गरीबों को क्योंकर याद किया?

जगना की अस्त्रों में ओंसू भर आए बोला—अगर खैरियत होती तो तुम्हारी शरण में क्यों आता? मुसीबत पड़ने पर ही देवताओं की याद आती है। महोबे पर इस समय इन्द्र का कोप छाया हुआ है। पृथ्वीराज चौहान महोबे को घेरे पड़ा है। नरसिंह और वीरसिंह तलवारों की भेंट हो चुके हैं। सिरको सारा राख का ढेर हो गया। चन्देलों का राज वीरान हुआ जाता है। सारे देश में कुहराम मचा हुआ है। बड़ी मुश्किलों से एक महीने की मोहलत ली गई है और मुझे राजा परमाल ने तुम्हारे पास भेजा है। इस मुसीबत के वक्त हमारा कोई मददगार नहीं है कोई ऐसा नहीं है जो हमारी हिम्मत बंधाए। जब से तुमने महोबे से नाता तोड़ा है तब से राजा परमाल के होंठों पर हँसी नहीं आई। जिस परमाल को उदास देखकर तुम बेचैन हो जाते थे उसी परमाल की आँखें महीनों से नींद को तरसती हैं। रानी मलिनहा, जिसकी गोद में तुम खेले हो, रात-दिन तुम्हारी याद में रोती रहती है। वह अपने झरोखे से कन्नौज की तरफ आँखें लगाए तुम्हारी राह देखा करती है। ऐ बनाफर वंश के सपूतो! चन्देलों की नाव अब डूब रही है। चन्देलों का नाम अब मिटा जाता है। अब मौका है कि तुम तलवारें हाथ में लो। अगर इस मौके पर तुमने डूबती हुई नाव को न सँभाला तो तुम्हें हमेशा के लिए पछताना पड़ेगा, क्योंकि इस नाम के साथ तुम्हारा और तुम्हारे नामी बाप का नाम भी डूब जाएगा।

आल्हा ने रूखेपन से जवाब दिया—हमें इसकी अब कुछ परवाह नहीं है। हमारा और

हमारे बाप का नाम तो उसी दिन डूब गया, जब हम बेकसूर महोबे से निकाल दिए गए। महोबा मिट्टी में मिल जाय, चन्देलों का चिराग गुल हो जाय, अब हमें जरा भी परवाह नहीं है। क्या हमारी सेवाओं का यही पुरस्कार था जो हमको दिया गया? हमारे बाप ने महोबे पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिए हमने गोंडों को हराया, और चन्देलों को देवगढ़ का मालिक बना दिया। हमने यादवों से लोहा लिया और कठियार के मैदान में चन्देलों का झंडा गाड़ दिया। मैंने इन्हीं हाथों से कछवाहों की बढ़ती हुई लहर को रोका, गया का मैदान हमीं ने जीता, रीवां का घमण्ड हमीं ने तोड़ा। मैंने ही मेवात से खिराज लिया। हमने यह-सब कुछ किया और इसका हमको यह पुरस्कार दिया गया है? मेरे बाप ने दस राजाओं को गुलामी का तौक पहनाया। मैंने परमाल की सेवा में सात बार प्राणलेवा जख्म खाए तीन बार मौत के मुँह से निकल आया। मैंने चालीस लड़ाइयाँ लड़ी और कभी हार कर न आया। ऊदल ने सात खूनी मार्क जीते। हमने चन्देलों की बहादुरी का डंका बजा दिया। चन्देलों का नाम हमने आसमान तक पहुँचा दिया और इसका यह पुरस्कार हमको मिला है? परमाल अब क्यों उसी दगाबाज माहिल को अपनी मदद के लिए नहीं बुलाते जिसको खुश करने के लिए मेरा देशनिकाला हुआ था!

जगना ने जवाब दिया—आल्हा! यह राजपूतों की बातें नहीं हैं। तुम्हारे बाप ने जिस राज पर प्राण न्यौछावर कर दिए वही राज अब दुश्मन के पाँव तले रौंदा जा रहा है। उसी बाप के बेटे होकर भी क्या तुम्हारे खून में जोश नहीं आता? वह राजपूत जो अपने मुसीबत में पड़े हुए राजा को छोड़ता है उसके लिए नरक की आग के सिवा और कोई जगह नहीं है। तुम्हारी मातृभूमि पर बर्बादी की घटा छाई हुई है। तुम्हारी माँएँ और बहनें दुश्मनों की आबरू लूटनेवाली निगाहों का निशाना बन रही हैं, क्या अब भी तुम्हारे खून में जोश नहीं आता? अपने देश की यह दुर्गत देखकर भी तुम कन्नौज में चैन की नींद सो सकते हो?

देवल देवी को जगना के आने की खबर हुई। उसने फौरन आल्हा को बुलाकर कहा—बेटा, पिछली बातें भूल जाओ और आज ही महोबे चलने की तैयारी करो।

आल्हा कुछ जवाब न दे सका, मगर ऊदल झुंझलाकर बोला—हम अब महोबे नहीं जा सकते। क्या तुम्हें वह दिन भूल गए जब हम कुत्तों की तरह महोबे से निकाल दिए गए? महोबा डूबे या रहे, हमारा जी उससे भर गया, अब उसकी देखने की इच्छा नहीं है। अब कन्नौज ही हमारी मातृ भूमि है।

राजपूतनी बेटे की जबान से यह पाप की बात न सुन सकी तैश में आकर बोली—ऊदल, तुझे ऐसी बातें मुँह से निकालते हुए शर्म नहीं आती? काश, ईश्वर मुझे बांझ ही रखता कि ऐसे बेटों की माँ न बनती। क्या इन्हीं बनाफर वंश के नाम पर कलंक लगाने वालों के लिए मैंने गर्भ की पीड़ा सही थी? नालायको, मेरे सामने से दूर हो जाओ। मुझे अपना मुँह न दिखाओ। तुम जसराज के बेटे नहीं हो, तुम जिसकी रान से पैदा हुए हो वह जसराज नहीं हो सकता।

यह मर्मान्तक चोट थी। शर्म से दोनों भाइयों के माथे पर पसीना आ गया। दोनों उठ खड़े हुए और बोले—माता, अब बस करो, हम ज्यादा नहीं सुन सकते, हम आज ही महोबे जाएँगे और राजा परमाल की खिदमत में अपना खून बहाएंगे। हम रणक्षेत्र में अपनी तलवारों की चमक से अपने बाप का नाम रोशन करेंगे। हम चौहान के मुकाबले में अपनी

बहादुरी के जौहर दिखाएँगे और देवल देवी के बेटों का नाम अमर कर देंगे।

:: 7 ::

दोनों भाई कन्नौज से चले, देवल भी साथ थी। जब यह स्वनेवाले अपनी मातृभूमि में पहुँचे तो सूखे धानों में पानी पड़ गया, टूटी हुई हिम्मतें बँध गई। एक लाख चन्देल इन वीरों की अगवानी करने के लिए खड़े थे 1 बहुत दिनों के बाद वह अपनी मातृभूमि से बिछुड़े हुए इन दोनों भाइयों से मिले। अस्त्रों ने खुशी के तू! बहाए। राजा परमाल उनके आने की खबर पाते ही कीरत सागर तक पैदल आया। आल्हा और ऊदल दौड़कर उसके पाँव से लिपट गए। तीनों की आँखों से पानी बरसा और सारा मनमुटाव धुल गया।

दुश्मन सर पर खड़ा था, ज्यादा आतिथ्य-सत्कार का मौका न था। वहीं कीरत सागर के किनारे देश के नेताओं और दरबार के कर्मचारियों की राय से आल्हा फौज का सेनापति बनाया गया। वहीं मरने-मारने के लिए सौगंधें खाई गईं। वहीं बहादुरों ने कसमें खाई कि मैदान से हटेंगे तो मरकर हटेंगे। वहीं लोग एक-दूसरे के गले मिले और अपनी किस्मतों का फैसला करने चले। आज किसी की औंखों में और चेहरे पर उदासी के चिरू न थे, औरतें हँस-हँसकर अपने प्यारों को विदा करती थीं, मर्द हँस-हँसकर स्त्रियों से अलग होते थे क्योंकि यह आखिरी बाजी है, इसे जीतना जिन्दगी और हारना मौत है।

उस जगह के पास जहाँ अब और कोई कस्बा आबाद है दोनों फौजों का मुकाबला हुआ और अठारह दिन तक मारकाट का बाजार गर्म रहा। खूब घमासान लड़ाई हुई। पृथ्वीराज खुद लड़ाई में शरीक था। दोनों दल दिल खोलकर लड़े। वीरों ने खूब अरमान निकाले और दोनों तरफ की फौजें वहीं कट मरीं। तीन लाख आदमियों में सिर्फ तीन आदमी जिन्दा बचे —एक पृथ्वीराज, दूसरा चन्दा भाट, तीसरा आल्हा। ऐसी भयानक, अटल और निर्णायक लड़ाई शायद ही किसी देश और किसी युग में हुई हो। दोनों ही हारे और दोनों ही जीते। चन्देल और चौहान हमेशा के लिए खाक में मिल गए क्योंकि थानेसर की लड़ाई का फैसला भी इसी मैदान में हो गया। चौहानों में जितने अनुभवी सिपाही थे, वह सब औरई में काम आए। शहाबुद्दीन से मुकाबला पड़ा तो नौसिखिये, अनुभवहीन सिपाही मैदान में लाए गए और नतीजा वही हुआ जो हो सकता था। आल्हा का कुछ पता न चला कि कहाँ गया। कहीं शर्म से डूब मरा या साधू हो गया।

जनता में अब तक यही विश्वास है कि वह जिंदा है। लोग कहते हैं कि वह अमर हो गया। यह बिलकुल ठीक है क्योंकि आल्हा सचमुच अमर है और वह कभी मिट नहीं सकता, उसका नाम हमेशा कायम रहेगा।

जमाना, जनवरी *1912*

नसीहतों का दफ्तर

बाबू अक्षयकुमार पटना के एक वकील थे और बड़े वकीलों में समझे जाते थे। यानी रायबहादुरी के करीब पहुँच चुके थे। जैसा कि अक्सर बड़े आदमियों के बारे में मशहूर है, इन बाबू साहब का लड़कपन भी बहुत गरीबी में बीता था। माँ-बाप जब अपने शैतान लड़कों को डाँटते-डपटते तो बाबू अक्षयकुमार का नाम मिसाल के तौर पर पेश किया जाता था—अक्षय बाबू को देखो, आज दरवाजे पर हाथी झूमता है, कल पढ़ने को तेल नहीं मयस्सर होता था, पुआल जलाकर उसकी आँच में पढ़ते, सड़क की लालटेनों की रोशनी में सबक याद करते। विद्या इस तरह आती है। कोई-कल्पनाशील व्यक्ति इस बात के भी साक्षी थे कि उन्होंने अक्षय बाबू को जूगने की रोशिनी में पढते देखा है। जुगुन की दमन या पुआल की आँच में स्थायी प्रकाश हो सकता है, इसका फैसला सुननेवालों की अक्ल पर था। कहने का आशय यह कि अक्षयकुमार का बचपन का जमाना बहुत ईर्ष्या करने योग्य न था और न वकालत का जमाना खुशनसीथियों की वह बाढ़ अपने साथ लाया जिसकी उम्मीद थी। बाढ़ का जिक्र ही क्या, बरसों तक अकाल की सूरत थी। यह आशा कि सियाह गाउन कामधेनु साबित होगा और दुनिया की सारी नेमतें उसके सामने हाथ बाँधे खड़ी रहेंगी, झूठ निकलीं। काला गाउन काले नसीब को रोशन न कर सका। अच्छे दिनों के इंतजार में बहुत दिन गुजर गए और आखिरकार जब अच्छे दिन आए जब गार्डन पार्टियों में शरीक होने की दावतें आने लगीं, जब वह आम जलसों में सभापति की कुर्सी पर शोभायमान होने लगे तो जवानी विदा हो चुकी थी और बालों को खिजाब की जरूरत महसूस होने लगी थी। खासकर इस कारण से कि सुन्दर और हंसमुख हेमवती की खातिरदारी जरूरी थी जिसके शुभ आगमन ने बाबू अक्षयकुमार के जीवन की अन्तिम आकांक्षा को पूरा कर दिया था।

:: 2 ::

जिस तरह दानशीलता मनुष्य के दुर्गुणों को छिपा लेती है उसी तरह कृपणता उसके सद्गुणों पर पर्दा डाल देती है। कंजूस आदमी के दुश्मन सब होते हैं, दोस्त कोई नहीं होता। हर व्यक्ति को उससे नफरत होती है। वह गरीब किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता, आमतौर पर वह बहुत ही शान्तिप्रिय, गम्भीर, सबसे मिलजुलकर रहनेवाला और स्वाभिमानी व्यक्ति होता है, मगर कंजूसी काला रंग है जिस पर दूसरा कोई रंग, चाहे कितना ही चटख क्यों न हो, नहीं चढ़ सकता। बाबू अक्षयकुमार भी कंजूस मशहूर थे, हालांकि जैसा कायदा है, यह उपाधि उन्हें ईर्ष्या के दरबार से प्राप्त हुई थी। जो व्यक्ति कंजूस कहा जाता हो, समझ लो कि वह बहुत भाग्यशाली है और उससे डाह करनेवाले बहुत हैं। अगर बाबू अक्षयकुमार कौड़ियों को दाँत से पकड़ते थे तो किसी का क्या नुकसान था। अगर उनका मकान बहुत ठाठ-बाट से नहीं सजा हुआ था, अगर उनके यहाँ मुफ्तखोर ऊँघनेवाले नौकरों की फौज नहीं थी, अगर वह दो घोड़ों की फिटन पर कचहरी नहीं जाते थे तो किसी का क्या नुकसान था। उनकी जिन्दगी का उसूल था कि कौड़ियों की तुम फिक्र रखो, रुपये अपनी फिक्र आप

कर लेंगे। और इस सुनहरे उसूल का कठोरता से पालन करने का उन्हें पूरा अधिकार था। इन्हीं कौड़ियों पर जवानी की बहारें और दिल की उमंगें न्यौछावर की थीं। आँखों की रोशनी और सेहत जैसी बड़ी नेमत इन्हीं कौड़ियों पर चढ़ाई थी। उन्हें दाँतों से पकड़ते थे तो बहुत अच्छा करते थे, पलकों से उठाना चाहिए था।

लेकिन सुन्दर, हँसमुख हेमवती का स्वभाव इसके बिलकुल उलटा था। अपनी दूसरी बहनों की तरह वह भी सुख-सुविधा पर जान देती थी और गो बाबू अक्षयकुमार ऐसे नादान और ऐसे रूखे-सूखे नहीं थे कि उसकी कद्र करने के काबिल कमजोरियों की कद्र न करते (नहीं, वह सिंगार और सजावट की चीजों को देखकर कभी-कभी खुश होने की कोशिश भी करते थे) मगर कभी-कभी जब हेमवती उनकी नेक सलाहों की परवाह न करके सीमा से आगे बढ़ जाती थी तो उस दिन बाबू साहब को उसकी खातिर अपनी वकालत की योग्यता का कुछ-न-कुछ हिस्सा जरूर खर्च करना पड़ता था।

एक रोज जब अक्षयकुमार कचहरी से आए तो सुन्दर और हँसमुख हेमवती ने एक रंगीन लिफाफा उनके हाथ में रख दिया। उन्होंने देखा तो अन्दर एक बहुत नफीस गुलाबी रंग का निमन्त्रण था। हेमवती से बोले—इन लोगों को एक-न-एकखष्ठ सूझता ही रहता है। मेरे खयाल में इस ड़ामैटिक परफारमेंस की कोई जरूरत न थी।

हेमवती इन बातों को सुनने की आदी थी, मुस्कराकर बोली—क्यों, इससे बेहतर और कौन खुशी का मौका हो सकता है?

अक्षयकुमार समझ गए कि अब बहस-मुबाहिसे की जरूरत आ गई, संभल बैठे और बोले —मेरी जान, बीए के इस्तहान में पास होना कोई गैर-मामूली बात नहीं है, हजारों नौजवान हर साल पास होते रहते हैं। अगर मेरा भाई होता तो मैं सिर्फ उसकी पीठ ठोककर कहता कि शाबाश, खूब मेहनत की। मुझे ड़ामा खेलने का खयाल भी न पैदा होता। डाक्टर साहब तो समझदार आदमी हैं उन्हें क्या सूझी

हेमवती—मुझे तो जाना ही पड़ेगा।

अक्षयकुमार—क्यों, क्या वादा कर लिया है?

हेमवती—डाक्टर साहब की बीवी खुद आई थीं।

अक्षयकुमार—तो मेरी जान, तुम भी कभी उनके घर चली जाना, परसों जाने की क्या जरूरत है?

हेमवती—अब बता ही दूँ मुझे नायिका का पार्ट दिया गया है और मैंने उसे मंजूर कर लिया है।

यह कहकर हेमवती ने गर्व से अपने पति की तरफ देखा, मगर अक्षयकुमार को इस खबर से बहुत खुशी नहीं हुई। इससे पहले दो बार हेमवती शकुन्तला बन चुकी थी। इन दोनों मौकों पर बाबू साहब को काफी खर्च करना पड़ा था। उन्हें डर हुआ कि अब की हफ्ते में फिर घोष कम्पनी दो सौ का बिल पेश करेगी। और इस बात की सख्त जरूरत थी कि अभी से रोक-थाम की जाय। उन्होंने बहुत मुलायमियत से हेमवती का हाथ पकड़ लिया और बहुत मीठे और मुहब्बत में लिपटे हुए लहजे में बोले—प्यारी, यह बला फिर तुमने अपने सर ले ली। अपनी तकलीफ और परेशानी का बिलकुल खयाल नहीं किया। यह भी नहीं सोचा कि तुम्हारी परेशानी तुम्हारे इस प्रेमी को कितना परेशान करती है। मेरी जान, यह

जलसे नैतिक दृष्टि से बहुत आपत्तिजनक होते हैं। इन्हीं मौकों पर दिलों में ईर्ष्या के बीज बोये जाते हैं यहीं पीठ पीछे बुराई करने की आदत पड़ती है और यहीं तानेबाजी और नोकझोंक की मश्क होती है। फलां लेडी हसीन है, इसलिए उसकी दूसरी बहनों का फर्ज है कि उससे जले। मेरी जान, ईश्वर न करे कि कोई डाही बने, मगर डाह करने के योग्य बनना तो अपने अख्तियार की बात नहीं। मुझे भय है कि तुम्हारा दाहक सौंदर्य कितने ही दिलों को जलाकर राख कर देगा। प्यारी हेमू मुझे दुःख है कि तुमने मुझसे पूछे बगैर यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मुझे विश्वास है अगर तुम्हें मालूम होता कि मैं इसे पसन्द न करूँगा तो तुम हरगिज स्वीकार न करतीं।

सुन्दर और हँसमुख हेमवती इस मुहब्बत में लिपटी हुई तकरीर को बजाहिर बहुत गौर से सुनती रही। इसके बाद जानबूझकर अनजान बनते हुए बोली—मैंने तो यह सोचकर मंजूर कर लिया था कि कपड़े सब पहले ही के रखे हुार हैं ज्यादा सामान की जरूरत न होगी, सिर्फ चन्द घंटों की तकलीफ है और एहसान मुफ्त। डॉक्टरों को नाराज करना भी तो अच्छी बात नहीं है। मगर अब न जाऊँगी। मैं अभी उनको अपनी मजबूरी लिखे देती हूँ। सचमुच क्या फायदा, बेकार की उलझन! यह सुनकर कि कपड़े सब पहले के रखे हुए हैं, कुछ ज्यादा खर्च न होगा, अक्षयकुमार के दिल पर से एक बड़ा बोझ उठ गया। डाक्टरों को नाराज करना भी तो अच्छी बात नहीं। यह जुमला भी मानों से खाली न था। बाबू साहब पछताये कि अगर पहले से यह हाल मालूम होता तो काहे को इस तरह रूखा-सूखा उपदेशक बनना पड़ता। गर्दन हिलाकर बोले—नहीं-नहीं मेरी जान, मेरी मंशा यह हरगिज नहीं कि तुम जाओ ही मत। जब तुम निमन्त्रण स्वीकार कर चुकी हो तो अब उससे मुकरना इन्सानियत से हटी हुई बात मालूम होती है। मेरी सिर्फ यह मंशा थी कि जहां तक मुमकिन हो, ऐसे जलसों से दूर रहना चाहिए।

मगर हेमवती ने अपना फैसला बहाल रखा—अब मैं न जाऊँगी। तुम्हारी बातें गिरह में बाँध लीं।

:: 3 ::

दूसरे दिन शाम को अक्षयकुमार हवाखोरी को निकले। आनन्दबाग उस वक्त जोबन पर था। ऊँचे-ऊँचे सरों और अशोक की कतारों के बीच में लाल बजरी से सजी हुई सड़क ऐसी खूबसूरत मालूम होती थी कि जैसे कमल के पत्तों में फूल खिला हुआ है या नोकदार पलकों के बीच में लाल मतवाली औंखें जेब दे रही हैं। बाबू अक्षयकुमार इस क्यारी पर हवा के हल्के-हल्के ताजगी देनेवाले झोंकों का मजा उठाते हुए एक सायेदार कुंज में जा बैठे। यह उनकी खास जगह थी। इस इनायतों की बस्ती में आकर थोड़ी देर के लिए उनके दिल पर फूलों के खिलेपन और पत्तों की हरियाली का बहुत ही नशीला असर होता था। थोड़ी देर के लिए उनका दिल भी फूल की तरह खिल जाता था 1 यहाँ बैठे उन्हें थोड़ी ही देर हुई थी कि उन्हें एक हा आदमी अपनी तरफ आता हुआ दिखाई दिया। उसने आकर सलाम किया और एक मोहरदार बन्द लिफाफा देकर गायब हो गया। अक्षय बाबू ने लिफाफा खोला और उसकी अम्बरी महक से रूह फड़क उठी। खत का मजमून यह था—

'मेरे प्यारे अक्षय बाबू आप इस नाचीज के खत को पढ़कर बहुत हैरत में आएंगे, मगर मुझे आशा है कि आप मेरी इस ढिठाई को माफ करेंगे। आपके आचार-विचार, आपकी सुरुचि और आपके रहन-सहन की तारीफें सुन-सुनकर मेरे दिल में आपके लिए एक प्रेम और आदर का भाव पैदा हो गया है। आपके सादे रहन-सहन ने मुझे मोहित कर लिया है। अगर हया-शर्म मेरा दामन न पकड़े होती तो मैं अपनी भावनाओं को और भी स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित करती। साल-भर हुआ कि मैंने सामान्य पुरुषों की दुर्बलताओं से निराश होकर यह इरादा कर लिया था कि शेष जीवन खुशियों का सपना देखने में काटूँगी। मैंने ढूँढ़ा मगर जिस दिल की तलाश थी, न मिला। लेकिन जब से मैंने आपको देखा है, मुद्दतों की सोई हुई उमंगें जाग उठी हैं। आपके चेहरे पर सुन्दरता और जवानी की रोशनी न सही मगर कल्पना की झलक मौजूद है, जिसकी मेरी निगाह में ज्यादा इज्जत है, हालांकि मेरा खयाल है कि अगर आपको अपने बहिरंग की चिन्ता होती तो शायद मेरे अस्तित्व का दुर्बल अंश ज्यादा प्रसन्न होता। मगर मैं रूप की भूखी नहीं हूँ। मुझे एक सच्चे, प्रदर्शन से मुक्त, सीने में दिल रखने वाले इन्सान की चाह है और मैंने उसे पा लिया। मैंने एक चतुर पनडुब्बे की तरह समुन्दर की तह में बैठकर उस रतन को ढूँढ निकाला है मेरी आपसे केवल यह प्रार्थना है कि आप कल रात को डॉक्टर किचलू के मकान पर तशरीफ लाएं। मैं आपका बहुत एहसान मानूँगी। वहाँ एक हरे कपड़े पहने स्त्री अशोकों के कुंज में आपके लिए आँखें बिछाए बैठी नजर आएगी।'

इस खत को अक्षयकुमार ने दोबारा पढ़ा। इसका उनके दिल पर क्या असर हुआ, यह बयान करने की जरूरत नहीं। वह ऋषि नहीं थे, हालांकि ऐसे नाजुक मौके पर ऋषियों का फिसल जाना भी असम्भव नहीं। उन्हें एक नशा-सा महसूस होने लगा। जरूर इस परी ने मुझे यहां बैठे देखा होगा। मैंने आज कई दिनों से आईना भी नहीं देखा, जाने चेहरे की क्या कैफियत हो रही है। इस खयाल से बेचैन होकर वह दौड़े हुए एक हौज पर गए और उसके साफ पानी में अपनी सूरत देखी, मगर संतोष न हुआ। बहुत तेजी से कदम बढ़ाते हुए मकान की तरफ चले और जाते ही आईने पर निगाह दौड़ाई। हजामत साफ नहीं है और साफा कम्बख्त खूबसूरती से नहीं बाँधा। मगर तब भी मुझे कोई बदसूरत नहीं कह सकता। यह जरूर कोई आला दरजे की पढ़ी-लिखी, ऊँचे विचारों वाली स्त्री है। वर्ना मामूली औरतों की निगाह में तो दौलत और रूप के सिवा और कोई चीज जंचती ही नहीं। तो भी मेरा यह फूहड़पर किसी सुरुचि-सम्पन्न स्त्री को अच्छा नहीं मालूम हो सकता। मुझे अब इसका ज्यादा खयाल रखना होगा। आज मेरे भाग्य जागे हैं। बहुत मुद्दत के बाद मेरी कद्र करनेवाला एक सच्चा जौहरी नजर आया है। भारतीय स्त्रियाँ शर्म और हया की पुतली होती हैं। जब तक कि अपने दिल की हलचलों से मजबूर न हो जाएँ वह ऐसा खत लिखने का साहस नहीं कर सकतीं।

इन्हीं खयालों में बाबू अक्षयकुमार ने रात काटी। पलक तक नहीं झपकी।

दूसरे दिन सुबह दस बजे तक बाबू अक्षयकुमार ने शहर की सारी फैशनेबुल दुकानों की सैर की। दुकानदार हैरत में थे कि आज बाबू साहब यहाँ कैसे भूल पड़े। कभी भूलकर भी न झाँकते थे, यह कायापलट क्योंकर हुई? गरज आज उन्होंने बड़ी बेदर्दी से रुपया खर्च किया और जब घर चले तो फिटन पर बैठने की जगह न थी।

हेमवती ने उनके माथे पर से पसीना साफ करके पूछा—आज सवेरे से कहाँ गायब हो गए? अक्षयकुमार ने चेहरे को जरा गम्भीर बनाकर जवाब दिया—आज जिगर में कुछ दर्द था, डॉक्टर चड्ढा के पास चला गया था।

हेमवती के सुन्दर हँसते हुए चेहरे पर मुस्कराहट-सी आ गई, बोली—तुमने मुझसे बिलकुल जिक्र नहीं किया? जिगर का दर्द भयानक मर्ज है।

अक्षयकुमार—डॉक्टर साहब ने कहा है, कोई डरने की बात नहीं है।

हेमवती—इसकी दवा डॉ. किचलू के यहाँ बहुत अच्छी मिलती है। मालूम नहीं डॉक्टर चट्टा मर्ज की तह तक पहुँचे भी या नहीं।

अक्षयकुमार ने हेमवती की तरफ एक बार चुभती हुई निगाहों से देखा और खाना खाने लगे। इसके बाद अपने कमरे में जाकर लेटे। शाम को जब वह पार्क, घंटाघर, आनन्दबाग की सैर करते हुए फिटन पर जा रहे थे तो उनके होंठों पर लाली और गालों पर जवानी की गुलाबी झलक मौजूद थी। तो भी प्रकृति के अन्याय पर, जिसने उन्हें रूप की सम्पदा से वंचित रखा था, उन्हें आज जितना गुस्सा आया, शायद और कभी न आया हो। आज वह पतली नाक के बदले अपना खूबसूरत गाउन और डिप्लोमा सब कुछ देने के लिए तैयार थे।

:: 4 ::

डॉक्टर किचलू का खूबसूरत लताओं से सजा हुआ बंगला रात के वक्त दिन का समाँ दिखा रहा था। फाटक के खम्भे बरामदे की मेहराबें सरों के पेड़ों की कतारें सब बिजली के बल्बों से जगमगा रही थीं। इन्सान की बिजली की कारीगरी अपना रंगारंग जादू दिखा रही थी। दरवाजे पर शुभागमन का बन्दनवार, पेड़ों पर रंग-बिरंगे पक्षी, लताओं में खिले हुए फूल, यह सब इसी बिजली की रोशनी के जलवे हैं। इसी सुहानी रोशनी में शहर के रईस इठलाते फिर रहे हैं। अभी नाटक शुरू होने में कुछ देर है। मगर उत्कण्ठा लोगों को अधीर करने लगी है। डॉक्टर किचलू दरवाजे पर खड़े मेहमानों का स्वागत कर रहे हैं। आठ बजे होंगे कि बाबू अक्षयकुमार बड़ी आन-बान के साथ अपनी फिटन से उतरे। डॉक्टर साहब चौंक पड़े, यह आज गूलर में कैसे फूल लग गए। उन्होंने बड़े उत्साह से आगे बढ़कर बाबू साहब का स्वागत किया और सर से पाँव तक उन्हें गौर से देखा। उन्हें कभी खयाल भी न हुआ था कि बाबू अक्षयकुमार ऐसे सुन्दर सजीले कपड़े पहने हुए गबरू नौजवान बन सकते हैं। कायाकल्प का स्पष्ट उदाहरण आँखों के सामने खड़ा था।

अक्षय बाबू को देखते ही इधर-उधर से लोग आकर चारों ओर जमा हो गए। हर शख्स हैरत से एक-दूसरे का मुँह ताकता था। होंठ रूमाल की आड़ ढूँढने लगे, आँखें सरगोशियों करने लगीं। हर शख्स ने गैरमामूली तपाक से उनका मिजाज पूछा। शराबियों की मजलिस और पीने की मनाही करनेवाले हजरते वाइज की तशरीफआवरी का नजारा पेश हो गया।

अक्षय बाबू बहुत झेंप रहे थे। उनकी आँखें ऊपर को न उठती थीं। इसलिए जब मिजाजपुर्सियों का तूफान दूर हुआ तो उन्होंने अपनी हरे कपड़ोंवाली स्त्री की तलाश में चारों तरफ एक निगाह दौड़ाई और दिल में कहा—यह शोहदे हैं मसखरे मगर अभी-अभी उनकी आँखें खुली जाती हैं। मैं दिखा दूँगा कि मुझ पर भी सुन्दरियों की दृष्टि पड़ती है। देसी

सुन्दरियों भी हैं जो सच्चे दिल से मेरे मिजाज की कैफियत पूछती हैं और जिनसे अपना दर्देदिल कहने में मैं भी रंगीन-बयान हो सकता हूँ। मगर उस हरे कपड़ेवाली प्रेमिका का कहीं पता न था। निगाहें चारों तरफ से घूम-घामकर नाकाम वापस आईं।

आध घंटे के बाद नाटक शुरू हुआ। बाबू साहब निराश भाव से पैर उठाते हुए थियेटर हॉल में आ गए और कुर्सी पर बैठ गए। बैठ क्या गए गिर पड़े। पर्दा उठा। शकुन्तला अपनी दोनों सखियों के साथ सिर पर घड़ा रखे पौधों को सींचती हुई दिखाई दी। दर्शक बाग-बाग हो गए। तारीफों के नारे बुलन्द हुए। शकुन्तला का जो काल्पनिक चित्र खिंच सकता है वह ओखों के सामने खड़ा था—वही प्रेमिका का खुलापन, वही आकर्षक गम्भीरता, वही मतवाली चाल वही शर्मीली औखें। अक्षय बाबू पहचान गए, यह सुन्दर हँसमुख हेमवती थी।

बाबू अक्षयकुमार का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। इसने मुझसे वादा किया था कि मैं नाटक में न जाऊँगी। मैंने घंटों उसे समझाया। अपनी असमर्थता लिखने पर तैयार थी। मगर सिर्फ दूसरों को रिझाने और लुभाने के लिए सिर्फ दूसरों के दिलों में अपने रूप और अपनी अदाओं का जादू फूँकने के लिए सिर्फ दूसरी औरतों को जलाने के लिए उसने मेरी नसीहतों का और अपने वादे का, यहाँ तक कि मेरी अप्रसन्नता का जरा भी खयाल न किया!

हेमवती ने भी उड़ती हुई निगाहों से उनकी तरफ देखा। उनके बाँकपन पर उसे जरा भी ताज्जुब न हुआ। कम-से-कम वह मुस्कराई नहीं।

सारी महफिल बेसुध हो रही थी मगर अक्षय बाबू का जी वहाँ न लगता था। वह बार-बार उठके बाहर जाते इधर-उधर बेचैनी से आँखें फाड़-फाड़ देखते और हर बार झुँझलाकर वापस आते। यहाँ तक कि बारह बज गए और अब मायूस होकर उन्होंने अपने आपको कोसना शुरू किया—मैं भी कैसा अहमक हूँ। एक शोख औरत के चकमे में आ गया। जरूर इन्हीं बदमाशों में से किसी की शरारत होगी। यह लोग मुझे देख-देखकर कैसा हँसते थे! इन्हीं में से किसी मसखरे ने यह शिगूफा छोड़ा है। अफसोस! सैकड़ों रुपयों पर पानी फिर गया, लज्जित हुआ सो अलग। कई मुकदमे हाथ से गए। हेमवती की निगाहों में जलील हो गया और यह सब सिर्फ इन डाहियों की खातिर! मुझसे बड़ा अहमक और कौन होगा!

इस तरह अपने ऊपर लानत भेजते गुस्से में भरे हुए वे फिर महफिल की तरफ चले कि यकायक एक सरों के पेड़ के नीचे वह हरित-वसना सुन्दरी उन्हें इशारे से अपनी तरफ बुलाती हुई नजर आई। खुशी के मारे उनकी बाँछें खिल गई, दिलोदिमाग पर एक नशा-सा छा गया। मस्ती से कदम उठाते, झूमते और ऐंडते उस स्त्री के पास आए और आशिकाना जोश के साथ बोले—ऐ रूप की रानी, मैं तुम्हारी इस कृपा के लिए हृदय से तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। तुम्हें देखने के शौक में इस अधमरे प्रेमी की आँखें पथरा गई और अगर तुम्हें कुछ देर तक और यह आँखें देख न पातीं तो तुम्हें अपने रूप के मारे हुए की लाश पर हसरत के औंसू बहाने पड़ते। कल शाम ही से मेरे दिल की जो हालत हो रही है, उसका जिक्र बयान की ताकत से बाहर है। मेरी जान, मैं कल कचहरी न गया, और कई मुकदमे हाथ से खोये। मगर तुम्हारे दर्शन से आत्मा को जो आनन्द मिल रहा है, उस पर मैं अपनी जान भी न्यौछावर कर सकता हूँ। मुझे अब धैर्य नहीं है। प्रेम की आग ने संयम और धैर्य को जलाकर खाक कर दिया है। तुम्हें अपने हुस्न के दीवाने से यह पर्दा करना शोभा नहीं देता। शमा और परवाना

में पर्दा कैसा। ऐ रूप की खान और ऐ सौन्दर्य की आत्मा! तेरी मुहब्बत-भरी बातों ने मेरे दिल में आरजुओं का तूफान पैदा कर दिया है। अब यह दिल तुम्हारे ऊपर न्यौछावर है और यह जान तुम्हारे चरणों पर अर्पित है।

यह कहते हुए बाबू अक्षयकुमार ने आशिकों जैसी ढिठाई से आगे बढ़कर उस हरित-वसना सुन्दरी का घूँघट उठा दिया और हेमवती को मुस्कराते देखकर बेअख्तियार मुँह से निकला, अरे! और फिर कुछ मुँह से न निकला। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे अस्त्रों के सामने से पर्दा हट गया। बोले—यह सब तुम्हारी शरारत थी

सुन्दर, हँसमुख हेमवती मुस्कराई और कुछ जवाब देना चाहती थी, मगर बाबू अक्षयकुमार ने उस वक्त ज्यादा सवाल-जवाब का मौका न देखा। बहुत लज्जित होते हुए बोले—हेमवती, अब मुँह से कुछ मत कहो, तुम जीतीं और मैं हार गया। यह हार कभी न भूलेगी।

–जमाना मई-हर *1912*

राजहठ

दशहरे के दिन थे, अचलगढ में उत्सव की तैयारियाँ हो रही थीं। दरबारे आम में राज्य के मंत्रियों के स्थान पर अप्सराएँ शोभायमान थीं। धर्मशालाओं और सरायों में घोड़े हिनहिना रहे थे। रियासत के नौकर, क्या छोटे क्या बड़े, रसद पहुँचाने के बहाने से दरबारे आम में जमे रहते थे। किसी तरह हटाए न हटते थे। दरबारे खास में पंडित और पुजारी और महन्त लोग आसन जमाए पाठ करते हुए नजर आते थे। वहाँ किसी राज्य के कर्मचारी की शक्ल न दिखाई देती थी। घी और पूजा की सामग्री न होने के कारण सुबह की पूजा शाम को होती थी। रसद न मिलने की वजह से पंडित लोग हवन के घी और मँवौ को भोग के अग्निकुण्ड में डालते थे। राजहठ दरबारे आम में अंग्रेजी प्रबन्ध था और दरबारे खास में राज्य का।

राजा देवमल बड़े हौसलेमंद रईस थे। इस वार्षिक आनन्दोत्सव में वह जी खोलकर रुपया खर्च करते। जिन दिनों अकाल पड़ा, राज्य के आधे आदमी भूखों तड़पकर मर गए। बुखार, हैजा और प्लेग में हजारों आदमी हर साल मृत्यु का ग्रास बन जाते थे। राज्य निर्धन था इसलिए न वहाँ पाठशालाएँ थीं न चिकित्सालय, न सड़कें। बरसात में रनिवास दलदल हो जाता और अँ धेरी रातों में सरेशाम से घरों के दरवाजे बंद हो जाते। अँधेरी सड़कों पर चलना जान जोखिम था। यह सब और इनसे भी ज्यादा कष्टप्रद बातें स्वीकार थीं मगर यह कठिन था, असम्भव था कि दुर्गा देवी का वार्षिक आनन्दोत्सव न हो। इससे राज्य की शान में बट्टा लगने का भय था। राज्य मिट जाय, महलों की ईंटें बिक जाएँ मगर यह उत्सव जरूर हो। आसपास के राजे-रईस आमन्त्रित होते उनके शामियानों से मीलों तक संगमरमर का एक शहर बस जाता, हफ्तों तक खूब चहल-पहल, धूम-धाम रहती। इसी की बदौलत अचलगढ़ का नाम अटल हो गया था।

:: 2 ::

मगर कुँवर इन्दरमल को राजा साहब की इन मस्ताना कार्रवाइयों में बिलकुल आस्था न थी। वह प्रकृति से एक बहुत गंभीर और सीधा-सादा नवयुवक था। यों गजब का दिलेर, मौत के सामने भी ताल ठोककर उतर पड़े, मगर उसकी बहादुरी खून की प्यास से पाक थी। उसके वार बिना पर की चिड़ियों या बेजबान जानवरों पर नहीं होते थे। उसकी तलवार कमजोरों पर नहीं उठती थी। गरीबों की हिमायत, अनाथों की सिफारिशें निर्धनों की सहायता और भाग्य के मारे हुओं के घाव की मरहमपट्टी इन कामों से उसकी आत्मा को सुख मिलता था। दो साल हुए वह इन्दौर कॉलेज से ऊँची शिक्षा पाकर लौटा था और तब से उसका यह जोश असाधारण रूप से बढ़ा हुआ था, इतना कि वह साधारण समझदारी की सीमाओं को लाँघ गया था। चौबीस साल का लंबा-तड़ंगा, हैकल जवान, धन-ऐश्वर्य के बीच पला हुआ, जिसे चिन्ताओं की कभी हवा तक न लगी, अगर रुलाया तो हँसी ने, वह ऐसा नेक हो, उसके मर्दाना चेहरे पर चिंतन का पीलापन और झुर्रियाँ नजर आएँ यह एक असाधारण बात थी। उत्सव का शुभ दिन पास आ पहुँचा था, सिर्फ चार दिन बाकी थे।

उत्सव का प्रबन्ध पूरा हो चुका था, सिर्फ अगर कसर थी तो कहीं-कहीं दोबारा नजर डाल लेने की। तीसरे पहर का वक्त था, राजा साहब रनिवास में बैठे हुए कुछ चुनी हुई अप्सराओं का गाना सुन रहे थे। उनकी सुरीली तानों से जो खुशी हो रही थी, उससे कहीं ज्यादा खुशी यह सोचकर हो रही थी कि यह तराने पोलिटिकल एजेंट को भड़का देंगे। वह आँखें बन्द करके सुनेगा और मारे खुशी के उछल-उछल पड़ेगा।

इस विचार से जो प्रसन्नता होती थी वह तानसेन की तानों में भी नहीं हो सकती थी। आह, उसकी जबान से अनजाने ही वाह-वाह निकल पड़ेगी। अजब नहीं कि उठकर मुझसे हाथ मिलाए और मेरे चुनाव की तारीफ करे। इतने में कुँवर इन्दरमल बहुत सादा कपड़े पहने सेवा में उपस्थित हुए और सर झुकाकर अभिवादन किया। राजा साहब की आँखें शर्म से झुक गईं, मगर कुँवर साहब का इस समय आना अच्छा नहीं लगा। गानेवालियों को वहाँ से उठ जाने का इशारा किया।

कुँवर इन्दरमल बोले—महाराज, क्या मेरी विनती पर बिलकुल ध्यान न दिया जाएगा?

राजा साहब गद्दी के उत्तराधिकारी राजकुमार की इज्जत करते थे और मुहब्बत तो कुदरती बात थी, तो भी उन्हें यह बेमौका हठ पसन्द न आता था। वह इतने संकीर्ण बुद्धि न थे कि कुँवर साहब की सलाहों की कद्र न करें। इससे निश्चय ही राज्य पर बोझ बढ़ता जाता था और रिआया पर बहुत जुल्म करना पड़ता था। मैं अंधा नहीं हूँ कि ऐसी मोटी-मोटी बातें न समझ सकूँ। मगर अच्छी बातें भी मौका-महल देखकर की जाती हैं। आखिरकार नाम और यश, इज्जत और आबरू भी तो कोई चीज है? रियासत में संगमरमर की सड़कें बनवा दूँ गली-गली मदरसे खोल दूँ घर-घर कुएँ खुदवा दूँ दवाओं की नहरें जारी कर दूँ मगर दशहरे की धूम-धाम से रियासत की जो इज्जत और नाम है वह इन बातों से कभी हासिल नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि धीरे-धीरे यह खर्च घटा दूँ मगर एकबारगी ऐसा करना न तो उचित है और न सं भव। जवाब दिया—आखिर तुम क्या चाहते हो? क्या दशहरा बिलकुल बन्द कर दूँ?

इन्दरमल ने राजा साहब के तेवर बदले हुए देखे तो बड़े आदरपूर्वक बोते—मैंने कभी दशहरे के उत्सव के खिलाफ मुँह से एक शब्द नहीं निकाला, यह हमारा जातीय पर्व है, यह विजय का शुभ दिन है आज के दिन खुशियाँ मनाना हमारा जातीय कर्तव्य है। मुझे सिर्फ इन अप्सराओं से आपत्ति है, नाच-गाने से इस दिन की गम्भीरता और महत्ता डूब जाती है।

राजा साहब ने व्यँग्य के स्वर में कहा—तुम्हारा मतलब है कि रो-रोकर जश्न मनाएं, मातम करें!

इन्दरमल ने तीखे होकर कहा—यह न्याय के सिद्धान्तों के खिलाफ बात है कि हम तो उत्सव मनाएं और हजारों आदमी उसकी बदौलत मातम करें। बीस हजार मजदूर एक महीने से मुफा में काम कर रहे हैं। क्या उनके घरों में खुशियाँ मनाई जा रही हैं? जो पसीना बहाएं, वह रोटियों को तरसे और जिन्होंने हरामकारी को अपना पेशा बना लिया है वह हमारी महफिलों की शोभा बनें। मैं अपनी आँखों से यह अन्याय और अत्याचार नहीं देख सकता। मैं इस पाप-कर्म में योग नहीं दे सकता। इससे तो यही अच्छा है कि मुँह छिपाकर कहीं निकल जाऊँ। ऐसे राज में रहना मैं अपने उसूलों के खिलाफ और शर्मनाक समझता हूँ।

इन्दरमल ने तैश में यह धृष्टतापूर्ण बातें कीं। मगर पिता के प्रेम को जगाने की कोशिश ने

राजहठ के सोये हुए काले देव को जगा दिया। राजा साहब गुस्से से भरी हुई आँखों से देखकर बोले—हाँ मैं भी यही समझता हूँ। तुम अपने उसूलों के पक्के हो तो मैं भी अपनी धुन का पूरा हूँ।

इन्दरमल ने मुस्कराकर राजा साहब को सलाम किया। उसका मुस्कराना घाव पर नमक हो गया। राजकुमार की आँखों में कुछ बूँदें शायद मरहम का काम देतीं।

:: 3 ::

राजकुमार ने इधर पीठ फेरी, उधर राजा साहब ने फिर अप्सराओं को बुलाया और फिर चित्त प्रफुल्लित करने वाले गानों की आवाजें गूँजने लगीं। उनके संगीत-प्रेम की नदी कभी इतने जोर-शोर से न उमड़ी थी, वाह-वाह की बाढ़ आई हुई थी, तालियों का शोर मचा हुआ था और सुर की किश्ती उस पुरशोर दरिया में हिंडोले की तरह झूल रही थी।

यहाँ तो नाच-गाने का हंगामा गरम था और रनिवास में रोने-पीटने का। रानी भानकुँवर दुर्गा की पूजा करके लौट रही थीं कि एक लौंडी ने आकर यह मर्मान्तक समाचार दिया। रानी ने आरती का थाल जमीन पर पटक दिया। वह एक हफ्ते से दुर्गा का व्रत रखती थीं। मृगछाला पर सोती और दूध का आहार करती थीं। पाँव थर्राये जमीन पर गिर पड़ी। मुरझाया हुआ फूल हवा के झोंके को न सह सका। चेरियाँ सँभल गईं और रानी के चारों तरफ गोल बाँधकर छाती और सिर पीटने लगीं। कोहराम मच गया। आँखों में तू, न सही, आचलों से उनका पर्दा छिपा हुआ था, मगर गले में आवाज तो थी। इस वक्त उसी की जरूरत थी। उसी की बुलंदी और गरज में इस समय भाग्य की झलक छिपी हुई थी।

लौंडिया तो इस प्रकार स्वामिभक्ति का परिचय देने में व्यस्त थीं और भानकुँवर अपने खयालों में डूबी हुई थीं। कुँवर से ऐसी बेअदबी क्योंकर हुई, यह खयाल में नहीं आता। उसने कभी मेरी बातों का जवाब नहीं दिया, जरूर राजा की ज्यादती है।

उसने इस नाच-रंग का विरोध किया होगा, किया ही चाहिए। उन्हें क्या, जो कुछ बनेगी-बिगड़ेगी उसके जिम्मे लगेगी। यह गुस्सेवर हैं ही। झल्ला गए होंगे। उसे सख्त-सुस्त कहा होगा। बात की उसे कहाँ बर्दाश्त, यही तो उसमें बड़ा देब है रूठकर कहीं चला गया होगा। मगर गया कहाँ? दुर्गा! तुम मेरे लाल की रक्षा करना, मैं उसे तुम्हारे सुपुर्द करती हूँ। अफसोस, यह गजब हो गया। मेरा राज्य सूना हो गया और इन्हें अपने राग-रंग की सूझी हुई है। यह सोचते-सोचते रानी के शरीर में कंपकंपी आ गई, उठकर गुस्से से काँपती हुई वह बेधड़क नाच-गाने की महफिल की तरफ चली। करीब पहुँची तो सुरीली तानें सुनाई दीं। एक बरछी-सी जिगर में चुभ गई। आग पर तेल पड़ गया।

रानी को देखते ही गानेवालियों में एक हलचल-सी मच गई। कोई किसी कोने जा छिपी कोई गिरती पड़ती दरवाजे की तरफ भागी। राजा साहब ने रानी की तरफ घूरकर देखा। भयानक गुस्से का शोला सामने दहक रहा था। उनकी त्योरियों पर भी बल पड़ गए। खून बरसाती हुई आँखें आपस में मिलीं। मोम ने लोहे का सामना किया।

रानी थर्रायी हुई आवाज में बोली—मेरा इन्दरमल कहाँ गया? यह कहते-कहते उसकी आवाज राक गई और होंठ काँपकर रह गए।

राजा ने बेरुखी से जवाब दिया—मैं नहीं जानता।

रानी सिसकियाँ भरकर बोली—आप नहीं जानते कि वह कल तीसरे पहर से गायब है और उसका कहीं पता नहीं? आपकी इन जहरीली नागिनों ने यह विष बोया है। अगर उसका बाल भी बांका हुआ तो उसके जिम्मेदार आप होंगे।

राजा ने तुर्शी से कहा—वह बड़ा घमण्डी और बिनकहा हो गया है मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता।

रानी कुचले हुए साँप की तरह ऐंठकर बोली—राजा, तुम्हारी जबान से यह बातें निकल रही हैं! हाय मेरा लाल, मेरी आँखों की पुतली, मेरे जिगर का टुकड़ा, मेरा सब कुछ यों अलोप हो जाय और इस बेरहम का दिल जरा भी न पसीजे! मेरे घर में अस लग जाए और यहाँ इन्द्र का अखाड़ा सजा रहे! मैं खून के आँसू रोऊँ और यहाँ खुशी के राग अलापे जाएँ!

राजा के नथुने फड़कने लगे कड़ककर बोले—रानी भानकुँवर, अब जबान बन्द करो। मैं इससे ज्यादा नहीं सुन सकता। बेहतर होगा कि तुम महल में चली जाओ।

रानी ने बिफरी हुई शेरनी की तरह गर्दन उठाकर कहा—हाँ, मैं खुद जाती हूँ। मैं हुजूर की देश में विघ्न नहीं डालना चाहती मगर आपको इसका भुगतान करना पड़ेगा। अचलगढ़ में या तो भानकुँवर रहेगी या आपकी जहरीली, विषैली परियाँ।

राजा पर इस धमकी का कोई असर न हुआ। गैंडे की ढाल पर कच्चे लोहे का असर क्या हो सकता है! जी में आया कि साफ-साफ कह दें भानकुँवर चाहे रहें या न रहें यह परियाँ जरूर रहेंगी लेकिन अपने को रोककर बोले—तुमको अख्तियार है जो ठीक समझो वह करो।

रानी कुछ कदम चलकर फिर लौटी और बोली—त्रियाहठ रहेगी या राजहठ?

राजा ने निष्कंप स्वर में उत्तर दिया—इस वक्त तो राजहठ ही रहेगी।

:: 4 ::

रानी भानकुँवर के चले जाने के बाद राजा देवमल फिर अपने कमरे में आ बैठे मगर चिन्तित और मन बिलकुल बुझा हुआ, मुर्दे के समान। रानी की सख्त बातों से दिल के सबसे नाजुक हिस्सों में टीस और जलन हो रही थी। पहले तो वह अपने ऊपर झुंझलाए कि मैंने उसकी बातों .को क्यों इतने धीरज से सुना, मगर जब जरा गुस्से की आग धीमी हुई और दिमाग का सन्तुलन फिर असली हालत पर आया तो उन घटनाओं पर अपने मन में विचार करने लगे। न्यायप्रिय स्वभाव के लोगों के लिए क्रोध एक चेतावनी होता है, जिससे उन्हें अपने कथन और आचार की अच्छाई और बुराई को जाँचने और आगे के लिए सावधान हो जाने का मौका मिलता है। इस कड़वी दवा से अक्सर अनुभव को शक्ति, दृष्टि को व्यापकता और चिन्तन को सजगता प्राप्त होती है। राजा सोचने लगे—बेशक रियासत के अन्दरूनी हालात के लिहाज से यह सब नाच-रंग बेमौका है। बेशक वह रिआया के साथ अपना फर्ज नहीं अदा कर रहे थे। वह इन खर्चों और इस नैतिक धब्बे को मिटाने के लिए तैयार थे मगर इस तरह कि नुक्ताचीनी करनेवाली आँखें उसमें कुछ और मतलब न निकाल सकें। रियासत की शान कायम रहे। इतना इन्दरमल से उन्होंने साफ कह दिया था कि अगर इतने पर भी वह अपनी जिद से बाज नहीं आता तो यह उसकी ढिठाई है। हर एक मुमकिन पहलू से गौर

करने पर राजा साहब के इस फैसले में जरा भी फैर-फार न हुआ। कुँवर का यों गायब हो जाना जरूर चिन्ता की बात है और रियासत के लिए उसके खतरनाक नतीजे हो सकते हैं, मगर वह अपने आपको इन नतीरनों की जिम्मेदारियों से बिलकुल बरी समझते थे। वह यह मानते थे कि इन्दरमल के चले जाने के बाद उनका यह महफिलें जमाना बेमौका और दूसरों को भड़कानेवाला था मगर इसका कुँवर के आखिरी फैसले पर क्या असर पड सकता है। कुँवर ऐसा नादान, नातजुर्बेकार और बुजदिल तो नहीं है कि आत्महत्या कर ले हाँ वह दो-चार दिन इधर-उधर आवारा घूमेगा और अगर ईश्वर ने कुछ भी विवेक उसे दिया तो वह दु रखी और लज्जित होकर जरूर चला आएगा। मैं खुद उसे ढूँढ निकालूंगा। वह ऐसा कठोर नहीं है कि अपने बूढ़े बाप की मजबूरी पर कुछ भी ध्यान न दे।

इन्दरमल से फारिग होकर राजा साहब का ध्यान रानी की तरफ पहुँचा और जब उसकी आग की तरह दहकती हुई बातें याद आईं तो गुस्से से बदन में पसीना आ गया और वह बेताब होकर उठकर टहलने लगे। बेशक, मैं उसके साथ बेरहमी से पेश आया। माँ को अपनी औलाद ईमान से भी ज्यादा प्यारी होती है और उसका रुष्ट होना उचित था मगर इन धमकियों के क्या माने? इसके सिवा कि वह रूठकर मैंके-चली जाय और मुझे बदनाम करे वह मेरा और क्या कर सकती है? अक्लमन्दों ने कहा है कि औरत की जात बेवफा होती है, वह मीठे पानी की चंचल, चुलबुली-चमकीली धारा है। जिसकी गोद में चहकती और चिमटती है उसे बालू का ढेर बनाकर छोड़ती है। यही भानकुँवर है जिसकी नाजबरदारियाँ मुहब्बत का दर्जा रखती हैं। आह, क्या वह पिछली बातें भूल जाऊँ? क्या उन्हें किस्सा समझकर दिल को तसकीन दूँ?

इसी बीच में एक लौंडी ने आकर कहा कि महारानी ने हाथी मँगवाया है और न जाने कहाँ जा रही हैं। कुछ बताती नहीं। राजा ने सुना और मुँह फेर लिया।

:: 5 ::

शहर इन्दौर से तीन मील उत्तर की तरफ घने पेड़ों के बीच में एक तालाब है जिसके चाँदी-जैसे चेहरे से काई का हरा मखमली घूँघट कभी नहीं उठता। कहते हैं किसी जमाने में उसके चारों तरफ पक्के घाट बने हुए थे। मगर इस वक्त तो सिर्फ यह जनश्रुति बाकी थी जोकि इस दुनिया में अक्सर ईंट-पत्थर की यादगारों से ज्यादा टिकाऊ हुआ करती है।

तालाब के पूरब में एक पुराना मन्दिर था, उसमें शिवजी राख की धूनी रमाए खामोश बैठे हुए थे। अबाबीलें और जंगली कबूतर उन्हें अपनी मीठी बोलियाँ सुनाया करते। मगर उस वीराने में भी उनके भक्तों की कमी न थी। मन्दिर के अन्दर भरा हुआ पानी और बाहर बदबूदार कीचड़ इस भक्ति के प्रमाण थे। वह मुसाफिर जो इस तालाब में नहाता उसके एक लोटे पानी से अपने ईश्वर की प्यास बुझाता था। शिवजी खाते कुछ न थे मगर पानी बहुत पीते थे। उनकी न बुझनेवाली प्यास कभी न बुझती थी।

तीसरे पहर का वक्त था। क्यार की धूप तेज थी। कुँवर इन्दरमल अपने हवा की चालवाले घोड़े पर सवार इन्दौर की तरफ से आए और एक पेड़ की छाया में ठहर गए। वह बहुत उदास थे। उन्होंने घोड़े को पेड़ से बाँध दिया और खुद जीन के ऊपर डालनेवाला कपड़ा

बिछाकर लेट रहे। उन्हें अचलगढ़ से निकले आज तीसरा दिन है मगर चिन्ताओं ने पलक तक नहीं झपकने दी। रानी भानकुँवर उसके दिल से एक पल के लिए भी दूर न होती थी। इस वक्त ठण्डी हवा लगी तो नींद आ गई। सपने में देखने लगा कि जैसे रानी आई हैं और उसे गले लगाकर रो रही हैं। चौंककर आँखें खोलीं तो रानी सचमुच सामने खड़ी उसकी तरफ सुभरी आँखों से ताक रही थीं। वह उठ बैठा और माँ के पैरों को चूमा। मगर रानी ने ममता से उठाकर गले लगा लेने के बजाय अपने पाँव हटा लिये और मुँह से कुछ न बोलीं।

इन्दरमल ने कहा-माँजी, आप मुझसे नाराज हैं?

रानी ने रुखाई से जवाब दिया—मैं तुम्हारी कौन होती हूँ!

कुँवर—आपको यकीन आए न आए मैं जब से अचलगढ़ से चला हूँ एक पल के लिए भी आपका खयाल दिल से दूर नहीं हुआ। अ भी आप ही को सपने में देख रहा था।

इन शब्दों ने रानी का गुस्सा ठण्डा किया। कुँवर की ओर से निश्चिन्त होकर अब वह राजा का ध्यान कर रही थी। उसने कुँवर से पूछा-तुम तीन दिन कहाँ रहे?

कुँवर ने जवाब दिया—क्या बताऊँ, कहाँ रहा। इन्दौर चला गया था। वहाँ पोलिटिकल एजेण्ट से सारी कथा कह सुनाई।

रानी ने यह सुना तो माथा पीटकर बोली—तुमने गजब कर दिया। आग लगा दी।

इन्दरमल—क्या करूँ, खुद पछताता हूँ। उस वक्त यही धुन सवार थी।

रानी—मुझे जिन बातों का डर था वह सब हो गईं। अब कौन मुँह लेकर अचलगढ़ जाएँगे।

इन्दरमल-मेरा जी चाहता है कि अपना गला घोंट लूँ।

रानी-गुस्सा बुरी बला है। तुम्हारे आने के बाद मैंने रार मचाई और कुछ यही इरादा करके इन्दौर जा रही थी, रास्ते में तुम मिल गए।

यह बातें हो ही रही थीं कि सामने से बहेलियों और सांडूनियों की एक लम्बी कतार आती हुई दिखाई दी। सांडूनियों पर मर्द सवार थे। सुरमा लगी आँखोंवाले, पेचदार जुल्फों वाले। बहेलियों में हुस्न के जलवे थे। शोख निगाहें बेधड़क चितवनें। यह उन नाच-रंग वालों का काफिला था जो अचलगढ़ से निराश और खिन्न चला आता था। उन्होंने रानी की सवारी देखी और कुँवर का घोड़ा पहचान लिया। घमण्ड से सलाम किया मगर बोले नहीं। जब वह दूर निकल गए तो कुँवर ने जोर से कहकहा मारा। यह विजय का नारा था।

रानी ने पूछा—यह क्या कायापलट हो गई? यह सब अचलगढ़ से लौटे आते हैं और ऐन दशहरे के दिन?

इन्दरमल बड़े गर्व से बोले—यह पोलिटिकल एजेण्ट के इनकारी तार के करिश्मे हैं। मेरी चाल बिलकुल ठीक पड़ी।

रानी का सन्देह दूर हो गया। जरूर यही बात है। यह इनकारी तार की करामात है। वह बड़ी देर तक बेसुध-सी जमीन की तरफ ताकती रही और उसके दिल में बार-बार यह सवाल पैदा होता था, क्या इसी का नाम राजहठ है?

आखिर इन्दरमल ने खामोशी तोड़ी—क्या आज चलने का इरादा है कि कल?

रानी—कल शाम तक हमको अचलगढ़ पहुँचना है, महाराज घबराते होंगे।

–जमाना, सितम्बर *1912*

त्रिया-चरित्र

सेठ लगनदास जी के जीवन की बगिया फलहीन थी। कोई ऐसा मानवीय, आध्यात्मिक या चिकित्सात्मक प्रयत्न न था जो उन्होंने न किया हो। यों शादी में एक-पत्नीव्रत के कायल थे मगर जरूरत और आग्रह से विवश होकर एक-दो नहीं पाँच शादियाँ कीं। यहाँ तक कि उम्र के चालीस साल गुजर गए और अँधेरे घर में उजाला न हुआ। बेचारे बहुत रंजीदा रहते। यह धन-संपत्ति, यह ठाठ-बाट, यह वैभव और ऐश्वर्य क्या होंगे। मेरे बाद इनका क्या हाल होगा, कौन इनको भोगेगा। यह खयाल बहुत अफसोसनाक था। आखिर यह सलाह हुई कि किसी लड़के को गोद लेना चाहिए मगर यह मसला पारिवारिक जगडों के कारण कई सालों तक स्थगित रहा। जब सूक्ष्म-, ने देखा कि बीवियों में अब तक बदस्तूर कशमकश हो रही है तो उन्होंने नैतिक साहस से काम लिया और एक होनहार अनाथ लड़के को गोद ले दिया। उसका नाम रखा गया मगनदास। उसकी उम्र पाँच-छ: साल से ज्यादा न थी। बला का जहीन और तमीजदार। मगर औरतें सब कुछ कर सकती हैं दूसरे के बच्चे को अपना नहीं समझ सकतीं। यहाँ तो पाँच औरतों का साझा था। अगर एक उसे प्यार करती तो बाकी चार औरतों का फर्ज था कि उससे नफरत करें। हाँ, सेठजी उसके साथ बिलकुल अपने लड़के कीं-सी मुहब्बत करते थे। पड़ाने को मास्टर रखे, सवारी के लिए घोड़े। रईसी खयाल के आदमी थे। राग-रंग का सामान भी मुहैया था। गाना सीखने का लड़के ने शौक किया तो उसका भी इन्तजाम हो गया। गरज जब मगनदास जवानी पर पहुँचा तो रईसाना दिलचस्पियों से उसे कमाल हासिल था। उसका गाना सुनकर उस्ताद लोग कानों पर हाथ रखते। शहसवार ऐसा कि दौड़ते हुए घोड़े पर सवार हो जाता। डीलडौल, शक्ल-सूरत में उसका-सा अलबेला जवान दिल्ली में कम होगा। शादी का मसला पेश हुआ। नागपुर के करोड़पति सेठ मक्खनलाल बहुत लहराए हुए थे। उनकी लड़की से शादी हो गई। धूमधाम का जिक्र किया जाय तो किस्सा वियोग की रात से भी लम्बा हो जाय। मक्खनलाल का उसी शादी में दीवाला निकल गया। इस वक्त मगनदास से ज्यादा ईर्ष्या के योग्य आदमी और कौन होगा? उसकी जिन्दगी की बहार उमंगों पर थी और मुरादों के फूल अपनी शबनमी ताजगी में खिल-खिलकर हुस्न और ताजगी का समां दिखा रहे थे। मगर तकदीर की देवी कुछ और ही सामान कर रही थी। वह सैर-सपाटे के इरादे से जापान गया हुआ था कि दिल्ली से खबर आई कि ईश्वर ने तुम्हें एक भाई दिया है। मुझे इतनी खुशी है कि ज्यादा अर्से तक जिन्दा न रह सकूँ। तुम बहुत जल्द लौट आओ।

मगनदास के हाथ से तार का कागज छूट गया और सिर में ऐसा चक्कर आया जैसे किसी ऊँचाई से गिर पडा है।

:: 2 ::

मगनदास का किताबी ज्ञान बहुत कम था। मगर स्वभाव की सज्जनता से वह खाली न था। हाथों की उदारता ने, जो समृद्धि का वरदान है हृदय को भी उदार बना दिया था। उसे

घटनाओं की इस कायापलट से दुःख तो जरूर हुआ, आखिर इन्सान ही था, मगर उसने धीरज से काम लिया और एक आशा और भय की मिली-जुली हालत में देश को रवाना हुआ।

रात का वक्त था। जब अपने दरवाजे पर पहुँचा तो नाच-गाने की महफिल सजी देखी। उसके कदम आगे न बड़े, लौट पड़ा और एक दुकान के चबूतरे पर बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। इतना तो उसे यकीन था कि सेठजी उसके साथ उसी भलमनसी और मुहब्बत से पेश आएँगे बल्कि शायद अब और भी कृपा करने लगें। सेठानियों भी अब उसके साथ गैरों का-सा बर्ताव न करेंगी। मुमकिन है मझली बहू जो इस बच्चे की खुशनसीब माँ थीं, उससे दूर-दूर रहें मगर बाकी चारों सेठानियों की तरफ से सेवा-सत्कार में कोई शक नहीं था। उनकी डाह से वह फायदा उठा सकता था। ताहम उसके स्वाभिमान ने गवारा न किया कि जिस घर में मालिक की हैसियत से रहता था उसी घर में अब एक आश्रित की हैसियत से जिन्दगी बसर करे। उसने फैसला कर लिया कि अब यहाँ रहना न मुनासिब है न मसलहत। मगर जाऊँ कहाँ? न कोई ऐसा फन सीखा, न कोई ऐसा इल्म हासिल किया जिससे रोजी कमाने की सूरत पैदा होती। रईसाना दिलचस्पियाँ उसी वक्त तक कद्र की निगाह से देखी जाती हैं जब तक कि वे रईसों के आभूषण रहें। जीविका बनकर वे सम्मान के पद से गिर जाती हैं। अपनी रोजी हासिल करना तो उसके लिए कोई ऐसा मुश्किल काम न था। किसी सेठ-साहूकार के यहाँ मुनीम बन सकता था, किसी कारखाने की तरफ से एजेण्ट हो सकता था, मगर उसके कन्धे पर एक भारी जुआ रखा हुआ था, उसे क्या करे। एक बड़े सेठ की लड़की, जिसने लाड़-प्यार में परवरिश पाई, उससे यह कंगाली की तकलीफें क्योंकर झेली जाएँगी। क्या मक्खनलाल की लाडली बेटी एक ऐसे आदमी के साथ रहना पसन्द करेगी जिसे रात की रोटी का भी ठिकाना नहीं? मगर इस फिक्र में अपनी जान क्यों खपाऊँ। मैंने अपनी मर्जी से शादी नहीं की। मैं बराबर इनकार करता रहा। सेठजी ने जबर्दस्ती मेरे पैरों में बेड़ी डाली है। अब वही इसके जिम्मेदार हैं। मुझसे कोई वास्ता नहीं। लेकिन जब उसने दुबारा ठण्डे दिल से इस मसले पर गौर किया तो बचाव की कोई सूरत नजर न आई। आखिरकार उसने यह फैसला किया कि पहले नागपुर चलूँ जरा उन महारानी के तौर-तरीके को देखूँ बाहर ही बाहर उनके स्व भाव की, मिजाज की जाँच करूँ। उस वक्त तय करूँगा कि मुझे क्या करना चाहिए। अगर रईसी की बू उनके दिमाग से निकल गई है और मेरे साथ रूखी रोटियाँ खाना उन्हें मंजूर है तो इससे अच्छा फिर और क्या, लेकिन अगर वह अमीरी ठाठ-बाट के हाथों बिकी हुई हैं तो मेरे लिए रास्ता साफ है। फिर मैं हूँ और दुनिया का गम। ऐसी जगह जाऊँ जहाँ किसी परिचित की सूरत सपने में भी न दिखाई दे। गरीबी की जिल्लत जिल्लत नहीं रहती, अगर अजनबियों में जिन्दगी बसर की जाय। यह जानने-पहचाननेवालों की कनखियों और कनबतियाँ हैं जो गरीबी को यन्त्रणा बना देती हैं। इस तरह दिल में जिन्दगी का नक्शा बनाकर मगनदास अपनी मर्दाना हिम्मत के भरोसे पर नागपुर की तरफ चला, उस मल्लाह की तरह, जो किश्ती और पाल के बगैर नदी की उमड़ती हुई लहरों में अपने को डाल दे।

:: 3 ::

शाम के वक्त सेठ मक्खनलाल के सुंदर बगीचे में सूरज की पीली मुरझाए हुए फूलों से गले मिलकर विदा हो रही थीं। बाग के बीच में एक पक्का कुआँ था और एक मौलसिरी का पेड़। कुएँ के मुँह पर अँधेरे की नीली-सी नकाब थी पेड़ के सिर पर रोशनी की सुनहरी चादर। इसी पेड़ के नीचे एक बुढ़िया मालिन बैठी हुई फूलों के हार और गजरे गूँध रही थी। इतने मे, एक नौजवान थका-माँदा कुएँ पर आया और लोटे से पानी भरकर पीने के बाद जगत पर बैठ गया। मालिन ने पूछा—कहाँ जाओगे? मगनदास ने जवाब दिया कि जाना तो था बहुत दूर, मगर यहीं रात हो गई। यहाँ कहीं ठहरने का ठिकाना मिल जाएगा?

मालिन—चले जाओ सेठजी के धर्मशाले में बड़े आराम की जगह है।

मगनदास—धर्मशाले में तो मुझे ठहरने का कभी संयोग नहीं हुआ। कोई हर्ज न हो तो यहीं पड़ रहूँ। यहाँ कोई रात को रहता है?

मालिन—भाई, मैं यहाँ ठहरने को न कहूँगी। यह मिली हुई बाईजी की बैठक है। झरोखे में बैठकर सैर किया करती हैं। कहीं देख-भाल लें तो मेरे सिर में एक बाल भी न रहे।

मगनदास—बाईजी कौन?

मालिन—यही सेठजी की बेटी। इन्दिरा बाई।

मगनदास—यह गजरे उन्हीं के लिए बना रही हो क्या?

मालिन—हाँ और सेठजी के यहाँ है ही कौन? फूलों के गहने बहुत पसन्द करती हैं।

मगनदास—शौकीन औरत मालूम होती हैं?

मालिन—भाई, यही तो बड़े आदमियों की बातें हैं। वह शौक न करें तो हमारा-तुम्हारा निबाह कैसे हो? और धन है किसलिए। अकेली जान पर दस लौंड़ियाँ हैं। सुना करती थी कि भागवान आदमी का हल भूत जोतता है, वह आँखों देखा। आप ही आप पंखा चलने लगे। आप ही आप सारे घर में दिन का-सा उजाला हो जाए। तुम झूठ समझते होंगे मगर मैं आँखों देखी बात कहती हूँ।

उस गर्व की चेतना के साथ जो किसी नादान आदमी के सामने अपनी जानकारी के बयान करने में होता है बूढ़ी मालिन अपनी सर्वज्ञता का प्रदर्शन करने लगी। मगनदास ने उकसाया-होगा भाई, बड़े आदमी की बातें निराली होती हैं। लक्ष्मी के बस में सब कुछ है। मगर अकेली जान पर दस लौंडियाँ समझ में नहीं आता।

मालिन ने बुढापे के चिड़चिड़ेपन से जवाब दिया-तुम्हारी समझ मोटी हो तो कोई क्या करे! कोई पान लगाती है कोई पंखा झलती है कोई कपड़े पहनाती है, दो हजार रुपये में तो सेजगाड़ी आई थी, चाहो तो मुँह देख लो, उस पर हवा खाने जाती हैं। एक बंगालिन गाना-बजाना सिखाती है मेम पड़ाने आती है शास्त्रीजी संस्कृत पढ़ाते हैं कागद पर ऐसी मूरत बनाती हैं कि अब बोली और अब बोली। दिल की रानी हैं बेचारी के भाग फूट गए। दिल्ली के सेठ लगनदास के गोद लिये हुए लड़के से ब्याह हुआ था। मगर राम जी की लीला, सत्तर बरस के मुर्दे को लड़का दिया, कौन पतियायेगा। जब से यह सुनावनी आई है तब से बहुत उदास रहती हैं। एक दिन रोती थीं। मेरे सामने की बात है। बाप ने देख लिया। समझाने लगे। लड़की को बहुत चाहते हैं। सुनती हूँ दामाद को यहीं बुलाकर रखेंगे। नारायन करे मेरी

रानी दूधों नहाय पूतों फले। माली मर गया था। उन्होंने आड़ न ली होती तो घरभर के टुकड़े माँगती।

मगनदास ने एक ठण्डी साँस ली। बेहतर है, अब यहाँ से अपनी इज्जत-आबरू लिये हुए चल दो। यहाँ मेरा निबाह न होगा। इन्दिरा रईसजादी है। तुम इस काबिल नहीं हो कि उसके शौहर बन सको। मालिन से बोला—तो धर्मशाले में जाता हूँ। जाने वहाँ खाट-वाट मिल जाती है कि नहीं, मगर रात ही तो काटनी है किसी तरह कट ही जाएगी। रईसों के लिए मखमली गद्दे चाहिए हम मजदूरों के लिए पुआल ही बहुत है।

यह कहकर उसने लुटिया उठाई, डंडा सँभाला और दर्दभरे दिल से एक तरफ को चल दिया।

उस वक्त इन्दिरा अपने झरोखे पर बैठी हुई इन दोनों की बातें सुन रही थी। कैसा संयोग है कि स्त्री को स्वर्ग की सब सिद्धियाँ प्राप्त हैं और उसका पति आवारों की तरह मारा-मारा फिर रहा है। उसे रात काटने का ठिकाना नहीं।

:: 4 ::

मगनदास निराश विचारों में डूबा हुआ शहर से बाहर निकल आया और एक सराय में ठहरा जो सिर्फ इसलिए मशहूर थी कि वहाँ शराब की एक दुकान थी। यहाँ आस-पास से मजदूर लोग आ-आकर अपने दुःख को भुलाया करते थे। जो भूले-भटके मुसाफिर यहाँ ठहरते उन्हें होशियारी और चौकसी का व्यावहारिक पाठ मिल जाता था। मगनदास थका-माँदा था ही एक पेड़ के नीचे चादर बिछाकर सो रहा और जब सुबह को नींद खुली तो उसे किसी पीर-औलिया के ज्ञान की सजीव दीक्षा का चमत्कार दिखाई पड़ा जिसकी पहली मंजिल वैराग्य है। उसकी छोटी-सी पोटली जिसमें दो-एक कपड़े और थोड़ा-सा रास्ते का खाना और लुटिया-डोर बँधी हुई थी, गायब हो गई। उन कपड़ों को छोड़कर, जो उसके बदन पर थे अब उसके पास कुछ भी न था और भूख जो कंगाली में और भी तेज हो जाती है उसे बेचैन कर रही थी। मगर वह दृढ़ स्वभाव का आदमी था, उसने किस्मत का रोना नहीं रोया, किसी तरह गुजर करने की तदबीरें सोचने लगा। लिखने और गणित में उसे अच्छा अभ्यास था मगर इस हैसियत में उससे फायदा उठाना असंभव था। उसने संगीत का बहुत अभ्यास किया था। किसी रसिक रईस के दरबार में उसकी कदर हो सकती थी। मगर उसके पुरुषोचित अभिमान ने इस पेशे को अख्तियार करने की इजाजत न दी। हाँ, वह आला दर्जे का घुड़सवार था और यह फन मजे में पूरी शान के साथ उसकी रोजी का साधन बन सकता था। यह पक्का इरादा करके उसने हिम्मत से कदम आगे बढ़ाए। ऊपर से देखने पर यह बात यकीन के काबिल नहीं मालूम होती मगर वह अपना बोझ हलका हो जाने से इस वक्त बहुत उदास नहीं था। मर्दाना हिम्मत का आदमी ऐसी मुसीबतों को उसी निगाह से देखता है जिससे एक होशियार विद्यार्थी परीक्षा के प्रश्नों को देखता है। उसे अपनी हिम्मत आजमाने का, एक मुश्किल से जूझने का मौका मिल जाता है। उसकी हिम्मत अनजाने ही मजबूत हो जाती है। अक्सर ऐसे मार्के मर्दाना हौसले के लिए प्रेरणा का काम देते हैं। मगनदास इस जोश से कदम बढ़ाता चला जाता था कि जैसे कामयाबी की मंजिल सामने नजर आ रही

है। मगर शायद वहाँ के घोड़ों ने शरारत और बिगड़ैलपन से तोबा कर ली थी या वे स्वाभाविक रूप से बहुत मजे में धीमे-धीमे चलनेवाले थे। वह जिस गाँव में जाता निराशा को उकसानेवाला जवाब पाता। आखिरकार शाम के वक्त जब सूरज अपनी आखिरी मंजिल पर जा पहुँचा था, उसकी कठिन मंजिल तमाम हुई। नागरघाट के ठाकुर अटलसिंह ने उसकी जीविका की चिन्ता को समाप्त किया।

यह एक बड़ा गाँव था। पक्के मकान बहुत थे। मगर उनमें प्रेतात्माएँ आबाद थीं। कई साल पहले प्लेग ने आबादी के बड़े हिस्से को इस क्षणभंगुर संसार से उठाकर स्वर्ग में पहुँचा दिया था। इस वक्त प्लेग के बचे खुचे लोग गाँव के नौजवान और शौकीन जमींदार साहब और हलके के कारगुजार और रोबीले थानेदार साहब थे। उनकी मिली-जुली कोशिशों से गाँव में सतयुग का राज था। धन-दौलत को लोग जान का अजाब समझते थे। उसे गुनाह की तरह छिपाते थे। घर-घर में रुपये रहते हुए लोग कर्ज ले-लेकर खाते और फटेहाल रहते थे। इसी में निबाह था। काजल की कोठरी थी, सफेद कपड़े पहनना उन पर धब्बा लगाना था। हुकूमत और जबर्दस्ती का बाजार गर्म था। अहीरों के यहाँ जन के लिए भी दूध न था। थाने में दूध की नदी बहती थी। मवेशीखाने के मुहर्रिर दूध की कुल्लियाँ करते थे। इसी अंधेरनगरी को मगनदास ने अपना घर बनाया। ठाकुर साहब ने असाधारण उदारता से काम लेकर उसे रहने के लिए एक मकान भी दे दिया, जो केवल व्यापक अर्थों में मकान कहा जा सकता था। इसी झोपड़ी में वह एक हफ्ते से जिन्दगी के दिन काट रहा है। उसका चेहरा जर्द है और कपड़े मैले हो रहे हैं। मगर ऐसा मालूम होता है कि उसे अब इन बातों की अनुभूति ही नहीं रही। जिन्दा है, मगर जिन्दगी रुखसत हो गई। हिम्मत और हौसला मुश्किल को आसान कर सकते हैं आँधी और तूफान से बचा सकते हैं मगर चेहरे को खिला सकना उनके सामर्थ्य से बाहर है। टूटी हुई नाव पर बैठकर मल्हार गाना हिम्मत का काम नहीं हिमाकत का काम है।

एक रोज जब शाम के वक्त वह अँधेरे में खाट पर पड़ा हुआ था, एक औरत उमके दरवाजे पर आकर भीख माँगने लगी। मगनदास को आवाज परिचित जान पड़ी। बाहर आकर देखा तो वही चम्पा मालिन थी। कपड़े तार-तार, मुसीबत की रोती हुई तसवीर। बोला-मालिन? तुम्हारी यह क्या हालत है? मुझे पहचानती हो?

मालिन ने चौंककर देखा और पहचान गई। रोकर बोली—बेटा, अब बताओ मेरा कहाँ ठिकाना लगे? तुमने मेरा बना-बनाया घर उजाड़ दिया। न उस दिन तुमसे बातें करती न मुझ पर यह बिपत पड़ती। बाई ने तुम्हें बैठे देख लिया, बातें भी सुनीं सुबह होते ही मुझे बुलाया और बरस पड़ी—नाक कटवा लूंगी, मुँह में कालिख लगवा दूँगी, चुड़ैल, कुटनी, तू मेरी बात किसी गैर आदमी से क्यों चलाए? तू दूसरों से मेरी चर्चा क्यों करे? वह क्या तेरा दामाद था, जो तू उससे मेरा दुखड़ा रोती थी? जो कुछ मुँह में आया बकती रही। मुझसे भी न सहा गया। रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी! बोली—बाईजी, मुझसे कसूर हुआ, लीजिए अब जाती हूँ। छींकते नाक कटती है तो मेरा निबाह यहाँ न होगा। ईश्वर ने मुँह दिया है तो आहार भी देगा। चार घर से माँगूँगी तो मेरे पेट को हो जाएगा। उस छोकरी ने मुझे खड़े खड़े निकलवा दिया। बताओ, मैंने तुमसे उनकी कौन-सी शिकायत की थी। उसकी क्या चर्चा की थी? मैं तो उसका बखान कर रही थी। मगर बड़े आदमियों का गुस्सा भी बड़ा

होता है। अब बताओ मैं किसकी होकर रहूँ? आठ दिन इसी तरह टुकड़े माँगते हो गए। एक भतीजी उन्हीं के यहाँ लौंडियों में नौकर थी, उसी दिन उसे भी निकाल दिया। तुम्हारी बदौलत, जो कभी न किया था, वह करना पड़ा। तुम्हें काहे को दोष लगाऊँ, किस्मत में जो कुछ लिखा था, वह देखना पड़ा।

मगनदास सन्नाटे में आ गया। आह मिजाज का यह हाल है यह घमण्ड, यह शान! मालिन को इत्मीनान दिलाया। उसके पास अगर दौलत होती तो उसे मालामाल कर देता। सेठ मक्खनलाल की बेटी को भी मालूम हो जाता कि रोजी की कुंजी उसी के हाथ में नहीं है। बोला—तुम फिक्र न करो, मेरे घर में आराम से रहो। अकेले मेरा जी भी नहीं लगता। सच कहो तो मुझे तुम्हारी तरह एक औरत की तलाश थी, अच्छा हुआ तुम आ गई।

मालिन ने आँचल फैलाकर असीस दिया—बेटा, तुम जुग-हा जियो, बड़ी उमिर हो, यहाँ कोई घर मिले तो मुझे दिलवा दो। मैं यहाँ रहूँगी तो मेरी भतीजी कहाँ जाएगी? वह बेचारी शहर में किसके आसरे रहेगी?

मगनदास के खून में जोश आया। उसके स्वाभिमान को चोट लगी। उन पर यह आफत मेरी लाई हुई है। उनकी इस आवारागर्दी का जिम्मेदार मैं हूँ। बोला—कोई हर्ज न हो तो उसे भी यहीं ले आओ। मैं दिन को यहाँ बहुत कम रहता हूँ। रात को बाहर चारपाई डालकर पड़ रहा करूँगा। मेरी वजह से तुम लोगों को कोई तकलीफ न होगी। यहाँ दूसरा मकान मिलना मुश्किल है। यही झोपड़ा बड़ी मुश्किलों से मिला है। यह अन्धेरकारी है। जब तुम्हारा सु भीता कहीं लग जाय तो चली जाना।

मगनदास को क्या मालूम था कि हजरत इश्क उसकी जबान पर बैठे हुए उससे यह बातें कहलवा रहे हैं। क्या यह ठीक है कि इश्क पहले माशूक के दिल में पैदा होता है?

:: 5 ::

नागपुर इस गाँव से बीस मील की दूरी पर था। चम्पा उसी दिन चली गई और तीसरे दिन रम्भा के साथ लौट आई। यह उसकी भतीजी का नाम था। उसके आने से झोपड़े में जान-सी पड़ गई। मगनदास के दिमाग में मालिन की लड़की की जो तसवीर थी उसका रम्भा से कोई मेल न था। वह सौन्दर्य नाम की चीज का अनुभवी जौहरी था मगर ऐसी सूरत जिस पर जवानी की ऐसी मस्ती और दिल का चैन छीन लेनेवाला ऐसा आकर्षण हो उसने पहले कभी न देखा था। उसकी जवानी का चाँद अपनी सुनहरी और गम्भीर शान के साथ चमक रहा था। सुबह का वक्त था। मगनदास दरवाजे पर पड़ा ठण्डी-ठण्डी हवा का मजा उठा रहा था। रम्भा सिर पर घड़ा रखे पानी भरने को निकली। मगनदास ने उसे देखा और एक लम्बी साँस खींचकर उठ बैठा। चेहरा-मोहरा बहुत ही मोहक। ताजे फूल की तरह खिला हुआ चेहरा, आँखों में गम्भीर सरलता। मगनदास को उसने भी देखा। चेहरे पर लाज की लाली दौड़ गई। प्रेम ने पहला वार किया।

मगनदास सोचने लगा—क्या तकदीर यहाँ कोई और गुल खिलानेवाली है? क्या दिल मुझे यहाँ भी चैन न लेने देगा? रम्भा, तू यहाँ नाहक आई, नाहक एक गरीब का खून तेरे सर पर होगा। मैं तो अब तेरे हाथों बिक चुका, मगर क्या तू मेरी हो सकती है? लेकिन नहीं

इतनी जल्दबाजी ठीक नहीं। दिल का सौदा सोच-समझकर करना चाहिए। तुमको अ भी जब्ल करना होगा। रम्भा सुन्दरी है मगर झूठे मोती की आब और ताब उसे सच्चा नहीं बना सकती। तुम्हें क्या खबर कि उस भोली लड़की के कान प्रेम के शब्द से परिचित नहीं हो चुके हैं। कौन कह सकता है कि उसके सौन्दर्य की वाटिका पर किसी फूल चुननेवाले के हाथ नहीं पड़ चुके हैं। अगर कुछ दिनों की दिलबस्तगी के लिए कुछ चाहिए तो तुम आजाद हो, मगर यह नाजुक मामला है जरा सँ भल के कदम रखना। पेशेवर जातों में दिखाई पड़ने वाला सौन्दर्य अक्सर नैतिक बन्धनों से मुका होता है।

तीन महीने गुजर गए। मगनदास रम्भा को ज्यों-ज्यों बारीक से बारीक निगाहों से देखता, त्यों-त्यों उस पर प्रेम का रंग गाढ़ा होता जाता था। वह रोज उसे कुएँ से पानी निकालते देखता, वह रोज घर में बाद देती रोज खाना पकाती। आह, मगनदास को उन ज्वार की रोटियों में जो मजा आता था वह अच्छे से अच्छे व्यंजनों में भी न आया था। उसे अपनी कोठरी हमेशा साफ-सु थरी मिलती। न जाने कौन उसके बिस्तर बिछा देता। क्या यह रम्भा की कृपा थी? उसकी निगाहें कैसी शर्मीली थीं। उसने उसे कभी अपनी तरफ चंचल आँखों से ताकते नहीं देखा। आवाज कैसी मीठी! उसकी हँसी की आवाज कभी उसके कान में नहीं आई। अगर मगनदास उसके प्रेम में मतवाला हो रहा था तो कोई ताज्जुब की बात नहीं थी। उसकी भूखी निगाहें बेचैनी और लालसा में डूबी हुई हमेशा रम्भा को हूंका करतीं। वह जब किसी दूसरे गाँव को जाता तो मीलों तक उसकी जिद्दी और बेताब आँखें मुड़ मुड़कर झोंपड़े के दरवाजे की तरफ आतीं। उसकी ख्याति आस-पास फैल गई थी मगर उसके स्वभाव की मुरौवत और उदार-हृदयता से अक्सर लोग अनुचित लाभ उठाते थे। इन्साफ-पसन्द लोग तो स्वागत-सत्कार से काम निकाल लेते और जो लोग ज्यादा समझदार थे वे लगातार तकाजों का इन्तजार करते। चूकि मगनदास इस फन को बिलकुल न जानता था, तावजूद दिन-रात की दौड़-धूप के गरीबी से उसका गला न छूटता। जब वह रम्भा को चक्की पीसते हुए देखता तो गेहूँ के साथ उसका दिल भी पिस जाता था। वह कुएँ से पानी निकालती तो उसका कलेजा निकल आता। जब वह पड़ोस की औरतों के कपड़े सीती तो कपड़ों के साथ मगनदास का दिल छिद जाता। मगर न कुछ बस था न काबू।

मगनदास की हृदयवेधी दृष्टि को इसमें तो कोई सन्देह नहीं था कि उसके प्रेम का आकर्षण बिलकुल बेअसर नहीं है वर्ना रम्भा की उन वफा से भरी हुई खातिरदारियों की तुक कैसे बिठाता। वफा ही वह जादू है जो रूप के गव का सिर नीचा कर सकता है। मगर प्रेमिका के दिल में बैठने का माद्दा उसमें बहुत कम था। कोई दूसरा मनचला प्रेमी अब तक अपने वशीकरण में कामयाब हो चुका होता लेकिन मगनदास ने दिल आशिक का पाया था और जबान माशूक की।

एक रोज शाम के वक्त चम्पा किसी काम से बाजार गई हुई थी और मगनदास हमेशा की तरह चारपाई पर पड़ा सपने देख रहा था कि रम्भा अद्‌भुत छटा के साथ आकर उसके सामने खड़ी हो गई। उसका भोला चेहरा कमल की तरह खिला हुआ था और आँखों से सहानुभूति का भाव झलक रहा था। मगनदास ने उसकी तरफ पहले आश्चर्य और फिर प्रेम की निगाहों से देखा और दिल पर जोर डालकर बोला—आओ रम्भा, तुम्हें देखने को बहुत दिन से आँखें तरस रही थीं।

रम्भा ने भोलेपन से कहा—मैं यहाँ न आती तो तुम मुझसे कभी न बोलते।

मगनदास का हौसला बढ़ा, बोला—बिना मर्जी पाए तो कुत्ता भी नहीं आता।

रम्भा मुस्कराई, कली खिल गई—मैं तो आप ही चली आई।

मगनदास का कलेजा उछल पड़ा। उसने हिम्मत करके रम्भा का हाथ पकड़ लिया और भावावेश से काँपती हुई आवाज में बोला-नहीं रम्भा, ऐसा नहीं है। यह मेरी महीनों की तपस्या का फल है।

मगनदास ने बेताब होकर उसे गले से लगा लिया। जब वह चलने लगी तो अपने प्रेमी की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देखकर बोली—अब यह प्रीत हमको निभानी होगी।

पौ फटने के वक्त जब सूर्य देवता के आगमन की तैयारियाँ हो रही थीं मगनदास की आँखें खुला। रम्भा आटा पीस रही थी। उस शान्तिपूर्ण सन्नाटे में चक्की की घुमर-घुमर बहुत सुहानी मालूम होती थी और उससे सुर मिलाकर अपने प्यारे ढंग से गाती थी—

झुलनियाँ मोरी पानी में गिरी
मैं जाएं पिया मोको मनैहैं
उलटी मनावन मोको पड़
झुलनियाँ मोरी पानी में गिरी

सालभर गुजर गया। मगनदास की मुहब्बत और रम्भा के सलीके ने मिलकर उस वीरान झोपड़े को कुंज बाग बना दिया। अब वहाँ गाएँ थीं, फूलों की क्यारियाँ थीं और कई देहाती ढंग के मोड़ थे। सुख-सुविधा की अनेक चीजें दिखाई पड़ती

एक रोज सुबह के वक्त मगनदास कहीं जाने के लिए तैयार हो रहा था कि एक स्तभ्रान्त व्यक्ति अंग्रेजी पोशाक पहने उसे ढूंढता हुआ आ पहुँचा और उसे देखते ही दौड़कर गले से लिपट गया। मगनदास और वह दोनों एक साथ पड़ा करते थे। वह अब वकील हो गया था। मगनदास ने भी अब उसे पहचाना और कुछ झेंपता और कुछ झिझकता उससे गले लिपट गया। बड़ी देर तक दोनों दोस्त बातें करते रहे। बातें क्या थीं घटनाओं और संयोगों की एक लंबी कहानी थी। कई महीने हुए सेठ लगन का छोटा बच्चा चेचक की नजर हो गया। सेठजी ने दु: ख के मारे आत्महत्या कर ली और अब मगनदास सारी जायदाद, कोठी, इलाके और मकानों का एकछत्र स्वामी था। सेठानियों में आपसी झगड़े हो रहे थे। कर्मचारियों ने गबन को अपना ढंग बना रखा था। बड़ी सेठानी उसे बुलाने के लिए खुद आने को तैयार थीं, मगर वकील साहब ने उन्हें रोका था। जब मगनदास ने मुस्कराकर पूछा—तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ कि मैं यहाँ हूँ र तो वकील साहब ने फरमाया—महीने-भर से तुम्हारी ही टोह में हूँ। सेठ मक्खनलाल ने अता-पता बतलाया। तुम दिल्ली पहुँचे और मैंने अपना महीने-भर का बिल पेश किया।

रम्भा अधीर हो रही थी कि यह कौन है और इनमें क्या बातें हो रही हैं? दस बजते-बजते वकील साहब मगनदास से एक हफ्ते के अन्दर आने का वादा लेकर विदा हुए। उसी वक्त रम्भा आ पहुँची और पूछने लगी—यह कौन थे? इनका तुमसे क्या काम था?

मगनदास ने जवाब दिया—यमराज का दूत।

रम्भा—क्या असगुन बकते हो!

मगन—नहीं रम्भा, यह असगुन नहीं है, यह सचमुच मेरी मौत का दूत था। मेरी खुशियों के बाग को रौंदने वाला, मेरी हरी-भरी खेती को उजाड़ने वाला। रम्भा, मैंने तुम्हारे साथ दगा की है, मैंने तुम्हें अपने फरेब के जाल में फंसाया है मुझे माफ करो। मुहब्बत ने मुझसे यह सब करवाया। मैं मगनसिंह ठाकुर नहीं हूँ; मैं सेठ लगनदास का बेटा और सेठ मक्खनलाल का दामाद हूँ।

मगनदास को डर था कि रम्भा यह सुनते ही चौंक पड़ेगी और शायद उसे जालिम, दगाबाज कहने लगे मगर उसका खयाल गलत निकला। रम्भा ने औखों में आँसू भरकर सिर्फ इतना कहा—तो क्या तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे?

मगनदास ने उसे गले लगाकर कहा—हाँ।

रम्भा—क्यों

मगन—इसलिए कि इन्दिरा बहुत होशियार, सुन्दर और धनी है।

रम्भा—मैं तुम्हें न छोडटँगी। कभी इन्दिरा की लौंडी थी, अब उनकी सौत बनूँगी। तुम जितनी मेरी मुहब्बत करोगे उतनी इन्दिरा की तो न करोगे, क्यों?

मगनदास इस भोलेपन पर मतवाला हो गया। मुस्कराकर बोला—अब इन्दिरा तुम्हारी लौंडी बनेगी, मगर सुनता हूँ वह बहुत सुन्दर है। कहीं मैं उसकी सूरत पर लुभा न जाऊँ। मर्दों का हाल तुम नहीं जानतीं, मुझे अपने ही से डर लगता है।

रम्भा ने विश्वासभरी आँखों से देखकर कहा—क्या तुम भी ऐसा करोगे? ऊँह, जो जी में आए करना, मैं तुम्हें न छोडँगी। इन्दिरा रानी बने, मैं लौंडी हूँगी। क्या इतने पर भी मुझे छोड़ दोगे?

मगनदास की आँखें डबडबा गईं, बोला—प्यारी, मैंने फैसला कर लिया है कि दिल्ली न जाऊँगा। यह तो मैं कहने ही न पाया कि सेठजी का स्वर्गवास हो गया। बच्चा उनसे पहले ही चल बसा था। अफसोस, सेठजी के आखिरी दर्शन भी न कर सका। अपना बाप भी इतनी मुहब्बत नहीं कर सकता। उन्होंने मुझे अपना वारिस बनाया है। वकील साहब कहते थे कि सेठानियों में अनबन है। नौकर-चाकर लूटमार मचा रहे हैं। वहाँ का यह हाल है और मेरा दिल वहाँ जाने पर राजी नहीं होता। दिल तो यहाँ है, वहाँ कौन जाए।

रम्भा जरा देर तक सोचती रही, फिर बोली—तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगी। इतने दिन तुम्हारे साथ रही, जिन्दगी का सुख लूटा, अब जब तक जिऊंगी इस सुख का ध्यान करती रहूँगी। मगर तुम मुझे भूल तो न जाओगे? साल में एक बार देख लिया करना और इसी झोपड़े में।

मगनदास ने बहुत रोका मगर आँसू न रुक सके, बोले—रम्भा, यह बातें न करो, कलेजा बैठा जाता है। मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता, इसलिए नहीं कि तुम्हारे ऊपर कोई एहसान है। तुम्हारी खातिर नहीं, अपनी खातिर। वह शान्ति, वह प्रेम, वह आनन्द जो मुझे यहाँ मिलता है और कहीं नहीं मिल सकता। खुशी के साथ जिन्दगी बसर हो, यही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है। मुझे ईश्वर ने वह खुशी यहाँ दे रखी है तो मैं उसे क्यों छोडस्रं। धन-दौलत को मेरा सलाम है, मुझे उसकी हवस नहीं है।

रम्भा फिर गम्भीर स्वर में बोली—मैं तुम्हारे पाँव की बेड़ी न बनूँगी। चाहे तुम अभी मुझे न छोड़ो लेकिन थोड़े दिनों में तुम्हारी यह मुहब्बत न रहेगी।

मगनदास को कोड़ा लगा। जोश से बोला—तुम्हारे सिवा इस दिल में अब कोई और

जगह नहीं पा सकता।

रात ज्यादा आ गई थी। अष्टमी का चाँद सोने जा चुका था। दोपहर के कमल की तरह साफ आसमान में सितारे खिले हुए थे। किसी खेत के रखवाले की बाँसुरी की आवाज, जिसे दूरी ने तासीर, सन्नाटे ने सुरीलापन और अँधेरे ने आत्मिकता का आकर्षण दे दिया था, कानों में आ रही थी कि जैसे कोई पवित्र आत्मा नदी के किनारे बैठी हुई पानी की लहरों से या दूसरे किनारे के खामोश और अपनी तरफ खींचनेवाले पेड़ों से अपनी जिन्दगी की गम की कहानी सुना रही है।

मगनदास सो गया, मगर रम्भा की अस्त्रों में नींद न आई।

:: 6 ::

सुबह हुई तो मगनदास उठा और रम्भा, रम्भा पुकारने लगा। मगर रम्भा रात ही को अपने चाची के साथ वहाँ से कहीं चली गई। मगनदास को उस मकान के दरी-दीवार पर एक हसरत-सी छाई हुई मालूम हुई कि जैसे घर की जान निकल गई हो। वह घबराकर उस कोठरी में गया जहाँ रम्भा रोज चक्की पीसती थी मगर अफसोस, आज चक्की एकदम निश्चल थी। फिर वह कुएँ की तरफ दौड़ा गया लेकिन ऐसा मालूम हुआ कि कुएँ ने उसे निगल जाने के लिए अपना मुंह खोल दिया है। तब वह बच्चों की तरह चीख उठा और रोता हुआ फिर उसी झोपड़ी में आया जहाँ कल रात तक प्रेम का वास था। मगर आह, उस वक्त वह शोक का घर बना हुआ था। जब जरा आँसू थमे तो उसने घर में चारों तरफ निगाह दौड़ाई। रम्भा की साड़ी अरगनी पर पड़ी हुई थी। एक पिटारी में वह कंगन रखा हुआ था जो मगनदास ने उसे दिया था। बर्तन सब रखे हुए थे, साफ और सुथरे। मगनदास सोचने लगा—रम्भा, तूने रात को कहा था—मैं तुम्हें छोड़ दूँगी। क्या तूने वह बात दिल से कही थी? मैंने तो समझा था, तू दिल्लगी कर रही है नहीं तो मैं तुझे कलेजे में छिपा लेता। मैं तो तेरे लिए सब कुछ छोड़े बैठा था। तेरा प्रेम मेरे लिए सब कुछ था। आह, मैं यों बेचैन हूँ क्या तू बेचैन नहीं है? हाय, तू रो रही है। मुझे यकीन है कि तू अब भी लौट आएगी। फिर सजीव कल्पनाओं का एक जमघट उसके सामने आया—वह नाजुक अदाएँ वह मतवाली आँखें वह भोली-भोली बातें वह अपने को भूली हुई-सी मेहरबानियाँ वह जीवनदायी मुस्कान, वह आशिकों जैसी दिलजोइयाँ, वह प्रेम का नशा, वह हमेशा खिला रहनेवाला चेहरा, वह लचक-लचककर कुएँ से पानी लाना, वह इन्तजार की सूरत, वह मुहब्बत से भरी हुई बेचैनी—यह सब तसवीरें उसकी निगाहों के सामने हसरतनाक बेताबी के साथ फिरने लगीं। मगनदास ने एक ठण्डी साँस ली और आँसुओं और दर्द की उमड़ती हुई नदी को मर्दाना जब्ल से रोककर उठ खड़ा हुआ। नागपुर जाने का पक्का फैसला हो गया। तकिये के नीचे से सन्दूक की कुंजी उठाई तो कागज का एक टुकड़ा निकल आया। यह रम्भा की विदा की चिट्ठी थी—

प्यारे

मैं बहुत रो रही हूँ। मेरे पैर नहीं उठते, मगर मेरा जाना जरूरी है। तुम्हें जगाऊँगी तो तुम जाने न दोगे। आह, कैसे जाऊँ, अपने प्यारे पति को कैसे छोडंद्र किस्मत मुझसे यह आनन्द का घर छुड़वा रही है, मुझे बेवफा न कहना, मैं तुमसे फिर कभी मिलूँगी। मैं जानती हूँ कि

तुमने मेरे लिए यह सब कुछ त्याग दिया है। मगर तुम्हारे लिए जिन्दगी में बहुत कुछ उम्मीदें हैं। मैं अपनी मुहब्बत की धुन में तुम्हें उन उम्मीदों से क्यों दूर रखूँ। अब तुमसे जुदा होती हूँ। मेरी सुध मत भूलना। मैं तुम्हें हमेशा याद रखूँगी। यह आनन्द के दिन कभी न भूलेंगे। क्या तुम मुझे भूल सकोगे?

तुम्हारी प्यारी
रम्भा

:: 7 ::

मगनदास को दिल्ली आए तीन महीने गुजर चुके हैं। इस बीच उसे सबसे बड़ा जो निजी अनुभव हुआ वह यह था कि रोजी की फिक्र और धन्धों की बहुतायत से उमड़ती हुई भावनाओं का जोर कम किया जा सकता है। डेढ़ साल पहले का बेफिक्र नौजवान अब एक समझदार और सूझ-बूझ रखनेवाला आदमी बन गया था। सागर घाट के उस कुछ दिनों के रहने से उसे रिआया की उन तकलीफों का निजी ज्ञान हो गया था जो कारिन्दों और मुख्तारों की सख्तियों की बदौलत उन्हें उठानी पड़ती हैं। उसने उसे रियासत के इन्तजाम में बहुत मदद दी और जो कर्मचारी दबी जबान से उसकी शिकायत करते थे और अपनी किस्मतों और जमाने के उलट-फेर को कोसते थे मगर रिआया खुश थी। हाँ, जब वह सब धंधों से फुरसत पाता तो एक भोली-भाली सूरत वाली लड़की उसके खयाल के पहलू में आ बैठती और थोड़ी देर के लिए सागर घाट का वह हरा-भरा झोपड़ा और उसकी मस्तियाँ आँखों के सामने आ जातीं। सारी बातें एक सुहाने सपने की तरह याद आ-आकर उसके दिल को मसोसने लगतीं लेकिन कभी-कभी खुद-ब-खुद उसका खयाल इन्दिरा की तरफ भी जा पहुँचता। गो उसके दिल में रम्भा की वही जगह थी मगर किसी तरह उसमें इन्दिरा के लिए भी एक कोना निकल आया था। जिन हालतों और आफतों ने उसे इन्दिरा से बेजार कर दिया था वह अब रुखसत हो गई थीं। अब उसे इन्दिरा से कुछ हमदर्दी हो गई थी। अगर उसके मिजाज में घमण्ड है, हुकूमत है, तकल्वफ है, शान है तो यह उसका कसूर नहीं, यह रईसजादों की आम कमजोरियां हैं। यही उनकी शिक्षा है। वे बिलकुल बेबस और मजबूर हैं। इन बदले हुए और संतुलित भावों के साथ जहाँ वह बेचैनी के साथ रम्भा की याद को ताजा किया करता था वहाँ इन्दिरा का स्वागत करने और उसे अपने दिल में जगह देने के लिए तैयार था। वह दिन भी दूर नहीं था जब उसे उस आजमाइश का सामना करना पड़ेगा। उसके कई आत्मीय अमीराना शान-शौकत के साथ इन्दिरा को विदा कराने के लिए नागपुर गए हुए थे। मगनदास की तबीयत आज तरह-तरह के भावों के कारण, जिनमें प्रतीक्षा और मिलन की उत्कंठा विशेष थी, उचाट-सी हो रही थी। जब कोई नौकर आता तो वह संभल बैठता कि शायद इन्दिरा आ पहुँची। आखिर शाम के वक्त, जब दिन और रात गले मिल रहे थे, जनानखाने में जोर-शोर के गाने की आवाजों ने बहू के पहुँचने की सूचना दी।

सुहाग की सुहानी रात थी। दस बज गए थे। खुले हुए हवादार सहन में चाँदनी छिटकी हुई थी। वह चाँदनी जिसमें नशा है, आरजू और खिंचाव है। गमलों में खिले हुए गुलाब और

चम्पे के फूल चाँद की सुनहरी रोशनी में ज्यादा गम्भीर और खामोश नजर आते थे। मगनदास इन्दिरा से मिलने के लिए चला। उसके दिल में लालसाएं जरूर थीं मगर एक पीड़ा भी थी। दर्शन की उत्कण्ठा थी मगर प्यास से खाली। मुहब्बत नहीं, प्राणों का खिंचाव था जो उसे खींचे लिये जाता था। उसके दिल में बैठी हुई रम्भा शायद बार-बार बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी। इसलिए दिल में धड़कन हो रही थी। वह सोने के कमरे के दरवाजे पर पहुँचा। रेशमी पर्दा पड़ा हुआ था। उसने पर्दा उठा दिया। अन्दर एक औरत सफेद साड़ी पहने खड़ी थी। हाथ में चन्द खूबसूरत चूड़ियों के सिवा उसके बदन पर एक जेवर भी न था। ज्योंही पर्दा उठा और मगनदास ने अन्दर कदम रखा, वह मुस्कराती हुई उसकी तरफ बड़ी। मगनदास ने उसे देखा और चकित होकर बोला, 'रम्भा!' और दोनों प्रेमावेश से लिपट गए। दिल में बैठी हुई रम्भा बाहर निकल आई थी।

सालभर गुजरने के बाद एक दिन इन्दिरा ने अपने पति से कहा—क्या रम्भा को बिलकुल भूल गए? कैसे केवका हा! कुछ याद है उसने चलते वका तुमसे क्या विनती की थी?

मगनदास ने कहा—खूब याद है। वह आवाज भी कानों में गूँज रही है। मैं रम्भा को भोली-भाली लडकी समझता था। यह नहीं जानता था कि यह त्रिया-चरित्र का जादू है। मैं अपनी रम्भा को अब भी इन्दिरा से ज्यादा प्यार करता हूँ। तुम्हें डाह तो नहीं होती?

इन्दिरा ने हँसकर जवाब दिया—डाह क्यों हो? तुम्हें रम्भा है तो क्या मेरा मगनसिंह नहीं है? मैं अब भी उस पर मरती हूँ।

दूसरे दिन दोनों दिल्ली से एक राष्ट्रीय समारोह में शरीक होने का बहाना करके रवाना हो गए और सागर घाट जा पहुँचे। वह झोपड़ा, वह मुहब्बत का मन्दिर, यह प्रेम-भवन फूल और हरियाली से लहरा रहा था। चम्पा मालिन उन्हें वहाँ मिली। गांव के जमींदार उनसे मिलने के लिए आए कई दिन तक फिर मगनसिंह को घोड़े निकालने पड़े। रम्भा कुएँ से पानी लाती, खाना पकाती, फिर चक्की पीसती और गाती। गाँव की औरतें फिर उससे अपने कुर्ते और बच्चों की लेसदार टोपियाँ सिलातीं। हाँ, इतना जरूर कहतीं कि उसका रंग कैसा निखर आया है हाथ-पाँव कैसे मुलायम पड़ गए हैं, किसी बड़े घर की रानी मालूम होती है। मगर स्वभाव वही है, वही मीठी बोली है, वही मुरौवत, वही हंसमुख चेहरा।

इस तरह एक हफ्ते तक इस सरल और पवित्र जीवन का आनन्द उठाने के बाद दोनों दिल्ली वापस आए और अब दस साल गुजरने पर भी साल में एक बार उस झोपड़े के नसीब जागते हैं। वह मुहब्बत की दीवार अभी तक उन दोनों प्रेमियों को अपनी छाया में आराम देने के लिए खड़ी है।

–जमाना जनवरी *1913*

मिलाप

लाला ज्ञानचन्द बैठे हुए हिसाब-किताब जाँच रहे थे कि उनके सुपुत्र बाबू नानकचन्द आए और बोले—दादा, अब यहाँ पड़े-पड़े जी उकता गया, आपकी आज्ञा हो तो मैं सैर को निकल जाऊँ? दो-एक महीने में लौट आऊँगा।

नानकचन्द बहुत सुशील और सुंदर नवयुवक था। रंग पीला, आँखों के गिर्द हलके गड्ढे, कंधे झुके हुए। ज्ञानचन्द ने उनकी तरफ तीखी निगाह से देखा और व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोले—क्यों, क्या यहाँ तुम्हारे लिए कुछ कम दिलचस्पियाँ हैं?

ज्ञान ने बेटे को सीधे रास्ते पर लाने की बहुत कोशिश की थी, मगर सफल न हुए। उनकी डाँट-फटकार और समझाना-बुझाना बिलकुल बेकार हुआ। उसकी संगति अच्छी न थी, पीने-पिलाने और राग-रंग में डूबा रहता था। उन्हें यह नया प्रस्ताव क्यों पसन्द आने लगा, लेकिन नानकचन्द उनके स्वभाव से परिचित था। बेधड़क बोला—अब यहाँ जी नहीं लगता। कश्मीर की बहुत तारीफ सुनी है अब वहीं जाने की सोचता हूँ।

ज्ञानचन्द—बेहतर है, तशरीफ ले जाइए।

नानकचन्द—(हँसकर) रुपये तो दिलवाइए। इस वक्त पाँच सौ रुपये की सख्त जरूरत है।

ज्ञानचन्द—ऐसी फिजूल बातों का मुझसे जिक्र न किया करो, मैं तुमको बार-बार समझा चुका।

नानकचन्द ने हठ करना शुरू किया और बूढ़े लाला इनकार करते रहे, यहाँ तक कि नानकचन्द झुँझलाकर बोला—अच्छा, कुछ मत दीजिए मैं यों ही चला जाऊँगा।

ज्ञानचन्द ने कलेजा मजबूत करके कहा—बेशक तुम ऐसे ही हिम्मतवर हो। वहाँ भी तुम्हारे भाई-बन्द बैठे हुए हैं न!

नानकचन्द—मुझे किसी की परवाह नहीं है। आपका रुपया आपको मुबारक रहे।

नानकचन्द की यह चाल कभी पट नहीं पड़ती थी। अकेला लड़का था। बूढ़े लाला साहब ढीले पड़ गए। रुपया दिया, खुशामद की और उसी दिन नानकचन्द कश्मीर की सैर के लिए रवाना हुआ।

:: 2 ::

मगर नानकचन्द यहाँ से अकेला न चला। उसकी प्रेम की घातें आज सफल हो गई थीं। पड़ोस में बाबू राम दास रहते थे। बेचारे सीधे-सादे आदमी थे, सुबह को दफ्तर जाते और शाम को आते और इस बीच नानकचन्द अपने कोठे पर बैठा हुआ उनकी बेवा लड़की से मुहब्बत के इशारे किया करता। यहाँ तक कि अभागी ललिता उसके जाल में आ फँसी। भाग जाने के मंसूबे हुए।

आधी रात का वक्त था, ललिता एक साड़ी पहने अपनी चारपाई पर करवटें बदल रही थी। जेवरों को उतारकर उसने एक सन्दूकने में रख दिया था। उसके दिल में इस वक्त तरह-

तरह के खयाल दौड़ रहे थे और कलेजा जोर-जोर से धड़क रहा था। मगर चाहे और कुछ न हो, नानकचन्द की तरफ से उसे बेवफाई का जरा भी गुमान न था। जवानी की सबसे बड़ी नेमत मुहब्बत है और इस नेमत को पाकर ललिता अपने को खुशनसीब समझ रही थी। रामदास बेसुध सो रहे थे कि इतने में कुण्डी खटकी। ललिता चौंककर उठ खड़ी हुई। उसने जेवरों का सद्कचा उठा लिया। एक बार इधर-उधर हसरत-भरी निगाहों से देखा और दबे पाँव चौंक-चौंककर कदम उठाती देहलीज में आई और कुण्डी खोल दी। नानकचन्द ने उसे गले से लगा लिया। बग्घी तैयार थी, दोनों उस पर जा बैठे।

सुबह को बाबू रामदास उठे, ललिता न दिखाई दी। घबराए सारा घर छान मारा, कुछ पता न चला। बाहर की कुण्डी खुली देखी। बग्घी के निशान नजर आए। सर पीटकर बैठ गए। मगर अपने दिल का दर्द किससे कहते। हँसी और बदनामी का डर जबान पर मोहर हो गया। मशहूर किया कि वह अपने ननिहाल चली गई, मगर लाला ज्ञानचन्द सुनते ही भाँप गए कि कश्मीर की सैर के कुछ और ही माने थे। धीरे-धीरे यह बात सारे मुहल्ले में फैल गई। यहाँ तक कि बाबू रामदास ने शर्म के मारे आत्महत्या कर ली।

:: 3 ::

मुहब्बत की सरगर्मियाँ नतीजे की तरफ से बिलकुल बेखबर होती हैं। नानकचन्द जिस वक्त बग्घी में ललिता के साथ बैठा तो उसे इसके सिवाय और कोई खयाल न था कि एक युवती मेरे बगल में बैठी है, जिसके दिल का मैं मालिक हूँ। उसी धुन में वह मस्त था। बदनामी का डर, कानून का खटका, जीविका के साधन, इन समस्याओं पर विचार करने की उसे उस वक्त फुरसत न थी। हाँ, उसने कश्मीर का इरादा छोड़ दिया। कलकत्ते जा पहुंचा। किफायतशारी का सबक न पड़ा था। जो कुछ जमा-जथा थी, दो महीनों में खर्च हो गई। ललिता के गहनों पर नौबत आई। लेकिन नानकचन्द में इतनी शराफत बाकी थी। दिल मजबूत करके बाप को खत लिखा, मुहब्बत को गालियाँ दीं और विश्वास दिलाया कि अब आपके पैर चूमने के लिए जी बेकरार है, कुछ खर्च भेजिए। लाला साहब ने वह खत पड़ा, तसकीन हो गई कि चलो जिन्दा है और खैरियत से है। धूम-धाम से सत्यनारायण की कथा सुनी। रुपया रवाना कर दिया, लेकिन जवाब में लिखा—खैर, जो कुछ तुम्हारी किस्मत में था वह हुआ। अभी इधर आने का इरादा मत करो। बहुत बदनाम हो रहे हो। तुम्हारी वजह से मुझे भी बिरादरी से नाता तोड़ना पड़ेगा। इस तूफान को उतर जाने दो। तुम्हें खर्च की तकलीफ न होगी। मगर इस औरत की बाँह पकड़ी है तो उसका निबाह करना, उसे अपनी ब्याहता स्त्री समझो।

नानकचन्द के दिल पर से चिन्ता का बोझ उतर गया। बनारस से माहवार वजीफा मिलने लगा। इधर ललिता की कोशिश ने भी कुछ दिल को खींचा और गो शराब की लत न छूटी और हफ्ते में दो दिन जरूर थियेटर देखने जाता तो भी तबीयत में स्थिरता और कुछ संयम आ चला था। इस तरह कलकत्ते में उसने तीन साल काटे। इसी बीच उसे एक प्यारी लड़की का बाप बनने का सौभाग्य हुआ जिसका नाम उसने कमला रखा।

:: 4 ::

तीसरा साल गुजरा ही था कि नानकचन्द के उस शान्तिमय जीवन में हलचल पैदा हुई। लाला ज्ञानचन्द का पचासवां साल था जो हिन्दोस्तानी रईसों की प्राकृतिक आयु है। उनका स्वर्गवास हो गया और ज्योंही यह खबर नानकचन्द को मिली वह ललिता के पास जाकर चीखें मार-मारकर रोने लगा। जिन्दगी के नये-नये मसले अब उसके सामने आए। इस तीन साल की संभली हुई जिन्दगी ने उसके दिल से शोहदेपन और नशेबाजी के खयाल बहुत कुछ दूर कर दिए थे। उसे अब यह फिक्र सवार हुई कि चलकर बनारस में अपनी जायदाद का कुछ इंतजाम करना चाहिए, वर्ना सारा कारोबार भूल में मिल जाएगा। लेकिन ललिता को क्या करूँ! अगर इसे वहाँ लिये चलता हूँ तो तीन साल की पुरानी घटनाएँ ताजी हो जाएँगी और फिर एक हलचल पैदा होगी जो मुझे हुक्काम और हमजोलियों में जलील कर देगी। इसके अलावा उसे अब कानूनी औलाद की जरूरत भी नजर आने लगी। यह हो सकता था कि वह ललिता को अपनी ब्याहता स्त्री मशहूर कर देता लेकिन इस आम खयाल को दूर करना असम्भव था कि उसने उसे भगाया है। ललिता से नानकचन्द को अब वह मुहब्बत न थी जिसमें दर्द होता है और बेचैनी होती है। वह अब एक साधारण पति था जो गले में पड़े हुए ढोल को पीटना ही अपना धर्म समझता है, जिसे बीवी की मुहब्बत उसी वक्त याद आती है, जब वह बीमार होती है। और इसमें अचरज की कोई बात नहीं है अगर जिंदगी की नई-नई उमंगों ने उसे उकसाना शुरू किया। वे मंसूबे पैदा होने लगे जिनका दौलत और बड़े लोगों के मेलजोल से संबंध है। मानव भावनाओं की यही साधारण दशा है। नानकचन्द अब मजबूत इरादे के साथ सोचने लगा कि यहाँ से क्योंकर भागूँ। अगर इजाजत लेकर जाता हूँ तो दो-चार दिन में सारा पर्दाफाश हो जाएगा। अगर हीला किए जाता हूँ तो आज के तीसरे दिन ललिता बनारस में मेरे सिर पर सवार होगी। कोई ऐसी तरकीब निकालूँ कि इन सम्भावनाओं से मुक्ति मिले। सोचते-सोचते उसे आखिर एक तदबीर सूझी। वह एक दिन शाम को दरिया की सैर का बहाना करके चला और रात को घर पर न आया। दूसरे दिन सुबह को एक चौकीदार ललिता के पास आया और उसे थाने में ले गया। ललिता हैरान थी कि क्या माजरा है ? दिल में तरह-तरह की दुश्चिन्ताएँ पैदा हो रही थीं। वहाँ जाकर जो कैफियत देखी, तो दुनिया औखों में अँधेरी हो गई। नानकचन्द के कपड़े खून में तर-ब-तर पड़े थे। उसकी वही सुनहरी घड़ी, वही खूबसूरत छतरी, वही रेशमी साफा, सब वहाँ मौजूद था। जेब में उसके नाम के छपे हुए कार्ड थे। कोई सन्देह न रहा कि नानकचन्द को किसी ने कल्ल कर डाला। दो-तीन हफ्ते तक थाने में तहकीकातें होती रहीं और आखिरकार खूनी का पता चल गया। पुलिस के अफसरों को कड़े बड़े इनाम मिले, इसको जासूसी का एक बड़ा आश्चर्य समझा गया। खूनी ने प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता के जोश में यह काम किया। मगर इधर तो गरीब, बेगुनाह खूनी सूली पर चढ़ा हुआ था और वहां बनारस में नानकचन्द की शादी रचाई जा रही थी।

:: 5 ::

लाला नानकचन्द की शादी एक रईस घराने में हुई और तब धीरे-धीरे फिर वही पुराने उठने-बैठने वाले आने शुरू हुए। फिर वही मजलिसें जमीं और फिर वही सागर-ओ-मीना के दौर चलने लगे। संयम का कमजोर अहाता इन विषय-वासना के बटमारों को न रोक सका। हाँ, अब इस पीने-पिलाने में कुछ परदा रखा जाता है और ऊपर से थोड़ी-सी गम्भीरता बनाए रखी जाती है। सालभर इसी बहार में गुजरा। नवेली बहू घर में कुछ-कुढ़कर मर गई। तपेदिक ने उसका काम तमाम कर दिया। तब दूसरी शादी हुई। मगर इस स्त्री में नानकचन्द की सौन्दर्य-प्रेमी अस्त्रों के लिए कोई आकर्षण न था। इसका भी वही हाल हुआ। कभी बिना रोए कौर मुँह में नहीं दिया। तीन साल में चल बसी। तब तीसरी शादी हुई। यह औरत बहुत सुन्दर थी, अच्छे आभूषणों से सुसज्जित। उसने नानकचन्द के दिल में जगह कर ली। एक बच्चा भी पैदा हुआ और नानकचन्द गार्हस्थिक आनन्दों से परिचित होने लगा, दुनिया के नाते-रिश्ते अपनी तरफ खींचने लगे। मगर प्लेग के एक ही हमले ने सारे मंसूबे भूल में मिला दिए। पतिप्राण स्त्री मरी, तीन बरस का प्यारा लड़का हाथ से गया और दिल पर ऐसा दाग छोड़ गया जिसका कोई मरहम न था। उच्छृंखलता भी चली गई, ऐयाशी का भी खात्मा हुआ। दिल पर रंजोगम छा गया और तबीयत संसार से विरक्त हो गई।

:: 6 ::

जीवन की दुर्घटनाओं में अक्सर बड़े महत्त्व के नैतिक पहलू छिपे हुआ करते हैं। इन सदमों ने नानकचन्द के दिल में मरे हुए इन्सान को जगा दिया। जब वह निराशा के यातनापूर्ण अकेलेपन में पड़ा हुआ इन घटनाओं को याद करता तो उसका दिल रोने लगता और ऐसा मालूम होता कि ईश्वर ने मुझे मेरे पापों की सजा दी है। धीरे-धीरे यह खयाल उसके दिल में मजबूत हो गया—उफ्, मैंने उस मासूम औरत पर कैसा जुल्म किया! कैसी बेरहमी की! यह उसी का दण्ड है। यह सोचते-सोचते ललिता की मासूम तसवीर उसकी आँखों के सामने खड़ी हो जाती और प्यारे मुखड़े वाली कमला अपने मरे हुए सौतले भाई के साथ उसकी तरफ प्यार से दौड़ती हुई दिखाई देती। इस लम्बी अवधि में नानकचन्द को ललिता की याद तो कई बार आई थी मगर भोग-विलास, पीने-पिलाने की उन कैफियतों ने कभी उस खयाल को जमने न दिया। एक धुँधला-सा सपना दिखाई दिया और बिखर गया। मालूम नहीं, दोनों मर गई या जिन्दा हैं। अफसोस! ऐसी बेकसी की हालत में छोड़कर मैंने उनकी सुध तक न ली। उस नेकनामी पर धिक्कार है, जिसके लिए ऐसी निर्दयता की कीमत देनी पड़े। यह खयाल आखिर उसके दिल पर इस बुरी तरह बैठा कि एक रोज वह कलकत्ता के लिए रवाना हो गया।

सुबह का वक्त था। वह कलकत्ता पहुँचा और अपने उसी पुराने घर को चला। सारा शहर कुछ से कुछ हो गया था। बहुत तलाश के बाद उसे अपना पुराना घर नजर आया। उसके दिल में जोर से धड़कन होने लगी और भावनाओं में हलचल पैदा हो गई। उसने एक पड़ोसी से पूछा—इस मकान में कौन रहता है?

बूढ़ा बंगाली था, बोला—हम यह नहीं कह सकता, कौन है कौन नहीं है। इतना बड़ा मुलुक में कौन किसको जानता है? हाँ, एक लड़की और उसका आमाँ, दो औरत रहता है।

विधवा, है कपड़े की सिलाई करता है। जब से उसका आदमी मर गया, तब से यही काम करके अपना पेट पालता है।

इतने में दरवाजा खुला और एक तेरह-चौदह साल की सुन्दर लड़की किताब लिये हुए बाहर निकली। नानकचन्द पहचान गया कि यह कमला है। उसकी औखों में औंसू उमड़ आए बेअख्तियार जी चाहा कि उस लड़की को छाती से लगा ले। कुबेर की दौलत मिल गई। आवाज को सँ भालकर बोला—बेटी, जाकर अपनी अम्माँ से कह दो कि बनारस से एक आदमी आया है। लड़की अन्दर चली गई और थोड़ी देर में ललिता दरवाजे पर आई। उसके चेहरे पर घूँघट था और गो सौन्दर्य की ताजगी न थी मगर आकर्षण अब भी था। नानकचन्द ने उसे देखा और एक ठंडी साँस ली। पातिव्रत या धैर्य और निराशा की सजीव मूर्ति सामने खड़ी थी। उसने बहुत जोर लगाया, मगर जब्ल न हो सका, बरबस रोने लगा। ललिता ने घूंघट की आड़ से उसे देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गई। वह चित्र जो हृदय-पट पर अंकित था और जो जीवन के अल्पकालिक आनन्दों की याद दिलाता रहता था, जो सपनों में सामने आ-आकर कभी खुशी के गीत सुनाता था और कभी रंज के तीर चुभाता था, इस वक्त सजीव, सचल सामने खड़ा था। ललिता पर एक बेहोशी-सी छा गई, कुछ वही हालत जो आदमी को सपने में होती है। वह व्यग्र होकर नानकचन्द की तरफ बड़ी और रोती हुई बोली—मुझे भी अपने साथ ले चलो। मुझे अकेले किस पर छोड़ दिया है! मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जाता।

ललिता को इस बात की जरा भी चेतना न थी कि वह उस व्यक्ति के सामने खड़ी है जो एक जमाना हुआ मर चुका, वर्ना शायद वह चीखकर भागती। उस पर एक सपने कीं-सी हालत छाई हुई थी, मगर जब नानकचन्द ने उसे सीने से लगाकर कहा, 'ललिता, अब तुमको अकेले न रहना पड़ेगा, तुम्हें इन आँखों की पुतली बनाकर रखूँगा। मैं इसलिए तुम्हारे पास आया हूँ। मैं अब तक नरक में था, अब तुम्हारे साथ स्वर्ग का सुख भोगूँगा।' तो ललिता चौंकी और छिटककर अलग हटती हुई बोली—' अस्त्रों को तो यकीन आ गया मगर दिल को नहीं आता। ईश्वर करे यह सपना न हो!'

–जमाना जून *1913*

मनावन

बाबू दयाशंकर उन लोगों में थे जिन्हें उस वक्त तक सोहबत का मजा नहीं मिलता जब तक कि वह प्रेमिका की जबान की तेजी का मजा न उठाएं। स्वे हुए को मनाने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता। फिरी हुई निगाहें कभी-कभी मुहब्बत के नशे की मतवाली औखों से भी ज्यादा मोहक जान पड़ी। कभी-कभी प्रेमिका की बेरुखी और तुर्शियाँ जोश और उमंग से भी ज्यादा आकर्षक लगतीं। झगड़ों में मिलाप से ज्यादा मजा आता। पानी में हलके-हलके झकोले कैसा समां दिखा जाते हैं। जब तक दरिया में धीमी-धीमी हलचल न हो सैर का लुत्फ नहीं।

अगर बाबू दयाशंकर को इन दिलचस्पियों के कम मौके मिलते थे तो यह उनका कसूर न था। गिरिजा स्वभाव से बहुत नेक और गम्भीर थी, तो भी चूकि उसे अपने पति की रुचि का अनुभव हो चुका था इसलिए वह कभी-कभी अपनी तबीयत के खिलाफ सिर्फ उनकी खातिर से उनसे रूठ जाती थी। मगर यह बे-नींव की दीवार हवा का एक झोंका भी न संभाल सकती। उसकी आँखें उसके होंठ और उसका दिल यह बहुरूपिये का खेल ज्यादा देर तक न चला सकते। आसमान पर घटाएं आतीं मगर सावन की नहीं, कुआर की। वह डरती, कहीं ऐसा न हो कि हँसी-हँसी में रोना आ जाय। आपस की बदमगजी के खयाल से उसकी जान निकल जाती थी, मगर इन मौकों पर बाबू साहब को जैसी-जैसी रिझाने वाली यातें सूझना, वह काश, विद्यार्थी-जीवन में सूझी होतीं तो वह कई साल तक कानून से सिर मारने के बाद भी मामूली क्लर्क न रहते।

:: 2 ::

दयाशंकर को कौमी जलसों से बहुत दिलचस्पी थी। इस दिलचस्पी की बुनियाद उसी जमाने में पड़ी जब वह कानून की दरगाह के मुजाविर थे और वह अब तक कायम थी। रुपयों की थैली गायब हो गई थी मगर कंधों में दर्द मौजूद था। इस साल कांफ्रेंस का जलसा सतारा में होने वाला था। नियत तारीख से एक रोज पहले बाबू साहब सतारा को रवाना हुए। सफर की तैयारियों में इतने व्यस्त थे कि गिरिजा से बातचीत करने की फुर्सत न मिलती थी। आने वाली खुशियों की उम्मीद उस क्षणिक वियोग के खयाल के ऊपर भारी थी।

कैसा शहर होगा! बड़ी तारीफ सुनते हैं। दकन सौन्दर्य और संपदा की खान है। खूब सैर रहेगी। हजरत तो इन दिल को खुश करने वाले खयालों में मस्त थे और गिरिजा आँखों में आँसू भरे अपने दरवाजे पर खड़ी यह कैफियत देख रही थी और ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि इन्हें खैरियत से लाना। वह खुद एक हफ्ता कैसे काटेगी, यह खयाल बहुत ही कष्ट देनेवाला था।

गिरिजा इन विचारों में व्यस्त थी और दयाशंकर सफर की तैयारियों में। यहाँ तक कि सब तैयारियाँ पूरी हो गईं। इक्का दरवाजे पर आ गया। बिस्तर और इंक उस पर रख दिए

गए और तब विदाई भेंट की बातें होने लगीं। दयाशंकर गिरिजा के सामने आए और मुस्कराकर बोले—अब जाता हूँ।

गिरिजा के कलेजे में एक बच्ची-सी लगी। बरबस जी चाहा कि उनके सीने से लिपटकर रोके। आँसुओं की एक बाढ़-सी आँखों में आती हुई मालूम हुई, मगर जन्त करके बोली-जाने को कैसे कहूँ क्या वक्त आ गया?

दयाशंकर—हाँ, बल्कि देर हो रही है।

गिरिजा—-मंगल को शाम की गाड़ी से आओगे न?

दयाशंकर—जरूर किसी तरह नहीं रुक सकता। तुम सिर्फ उसी दिन मेरा इन्तजार करना।

गिरिजा—ऐसा न हो भूल जाओ। सतारा बहुत अच्छा शहर है।

दयाशंकर—(हँसकर) वह स्वर्ग ही क्यों न हो, मंगल को यहाँ जरूर आ जाऊँगा। दिल बराबर यहीं रहेगा। तुम जरा भी न घबराना।

यह कहकर गिरिजा को गले लगा लिया और मुस्कराते हुए बाहर निकल आए। इक्का रवाना हो गया। गिरिजा पलंग पर बैठ गई और खूब रोई। मगर इस वियोग के दुःख, आँसुओं की बाढ़, अकेलेपन के दर्द और तरह-तरह के भावों की भीड़ के साथ एक और खयाल दिल में बैठा हुआ था जिसे वह बार-बार हटाने की कोशिश करती थी-क्या इनके पहलू में दिल नहीं है! या है तो उस पर उन्हें पूरा-पूरा अधिकार है? वह मुस्कराहट जो विदा होते वक्त दयाशंकर के चेहरे पर लग रही थी, गिरिजा की समझ में नहीं आती थी।

:: 3 ::

सतारा में बड़ी धूमधाम थी। दयाशंकर गाड़ी से उतरे तो वर्दीपोश वालंटियरों ने उनका स्वागत किया। एक फिटन उनके लिए तैयार खड़ी थी। उस पर बैठकर वह कांफ्रेंस पंडाल की तरफ चले। दोनों तरफ इंडियों लहरा रही थीं। दरवाजे पर बन्दनवारें लटक रही थीं। औरतें अपने झरोखों से और मर्द बरामदों में खड़े हो-होकर खुशी से तालियाँ बजाते थे। इस शान-शौकत के साथ वह पंडाल में पहुँचे और एक खूबसूरत खेमे में उतरे। यहाँ सब तरह की सुविधाएँ एकत्र थीं। दस बजे कांफ्रेंस शुरू हुई। वक्ता अपनी-अपनी भाषा के जलवे दिखाने लगे। किसी के हँसी-दिल्लगी से भरे हुए चुटकुलों पर वाह-वाह की धूम मच गई, किसी की आग बरसानेवाली तकरीर ने दिलों में जोश की एक लहर-सी पैदा कर दी। विद्वतापूर्ण भाषणों के मुकाबले में हँसी-दिल्लगी और बात कहने की खूबी को लोगों ने ज्यादा पसन्द किया। श्रोताओं को उन भाषणों में थयेटर के गीतों का-सा आनन्द आता था।

कई दिन तक यही हालत रही और भाषणों की दृष्टि से कांफ्रेंस को शानदार कामयाबी हासिल हुई। आखिरकार मंगल का दिन आया। बाबू साहब वापसी की तैयारियाँ करने लगे। मगर कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आज उन्हें मजबूरन ठहरना पड़ा। बम्बई और यूपी. के डेलीगेटों में एक हॉकी मैच की ठहर गई। बाबू दयाशंकर हॉकी के बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। वह भी टीम में दाखिल कर लिये गए थे। उन्होंने बहुत कोशिश की कि अपना गला छुड़ा लूँ मगर दोस्तों ने इनकी आनाकानी पर बिलकुल ध्यान न दिया। एक साहब जो ज्यादा

बेतकल्लुफ थे, बोले-आखिर तुम्हें इतनी जल्दी क्यों है? तुम्हारा दफ्तर अभी हफ्ता-भर बंद है। बीवी साहबा की नाराजगी के सिवा मुझे इस जल्दबाजी का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। दयाशंकर ने जब देखा कि जल्दी ही मुझ पर बीवी का गुलाम होने की फबतियाँ कसी जानेवाली हैं जिससे ज्यादा अपमानजनक बात मर्द की शान में कोई दूसरी नहीं कही जा सकती, तो उन्होंने बचाव की कोई सूरत न देखकर वापसी मुल्तवी कर दी और हॉकी में शरीक हो गए। मगर दिल में यह पक्का इरादा कर लिया कि शाम की गाड़ी से जरूर चले जाएँगे फिर चाहे कोई बीवी का गुलाम नहीं, बीवी के गुलाम का बाप कहे एक न मानेंगे 1

खैर, पाँच बजे खेल शुरू हुआ। दोनों तरफ के खिलाड़ी बहुत तेज थे जिन्होंने हाँकी खेलने के सिवा जिन्दगी में और कोई काम ही नहीं किया। खेल बड़े जोश और सरगर्मी से होने लगा। कई हजार तमाशाई जमा थे। उनकी तालियाँ और बढावे खिलाड़ियों पर मारू बाजे का काम कर रहे थे और गेंद किसी अभागे की किस्मत की तरह इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती थी। दयाशंकर के हाथों में तेजी और सफाई, उनकी पकड़ और बेऐब निशानेबाजी पर लोग हैरान थे। यहाँ तक कि जब वक्त खत्म होने में सिर्फ एक मिनट बाकी रह गया था और दोनों तरफ के लोग हिम्मतें हार चुके थे तो दयाशंकर ने गेंद ली और बिजली की तरह विरोधी पक्ष के गोल पर पहुँच गए। एक पटाखे की आवाज हुई, चारों तरफ से गोल का नारा बुलन्द हुआ। इलाहाबार की जीत हुई और इस जीत का सेहरा दयाशंकर के सिर था —जिसका नतीजा यह हुआ कि बेचारे दयाशंकर को उस वक्त भी रुकना पड़ा और सिर्फ इतना ही नहीं सतारा अमेचर क्लब की तरफ से इस जीत की बधाई में एक नाटक खेलने का प्रस्ताव हुआ जिससे बुध के रोज भी रवाना होने की कोई उम्मीद बाकी न रही। दयाशंकर .ने दिल में बहुत पेचोताब खाया मगर जबान से क्या कहते। बीवी का गुलाम कहलाने का डर जबान बन्द किए हुए था। हालाकिं उनका दिल कह रहा था कि अब की देवी रूठेंगी तो सिर्फ खुशामदों से न मानेंगी।

:: 4 ::

बाबू दयाशंकर वादे के रोज के तीन दिन बाद मकान पर पहुँचे। सतारा से गिरिजा के लिए कई अनूठे तोहफे लाए थे, मगर उसने इन चीजों को कुछ इस तरह देखा कि जैसे उनसे उसका जी भर गया है। उसका चेहरा उतरा हुआ था और होंठ सूखे थे। दो दिन से उसने कुछ नहीं खाया था। अगर चलते वक्त दयाशंकर की आँखों से आँसू की चन्द बूदें टपक पड़ी होतीं या कम-से-कम चेहरा कुछ उदास और आवाज कुछ भारी हो गई होती तो शायद गिरिजा उनसे न रूठती। आँसुओं की चन्द बूँदें उसके दिल में इस खयाल को तरोताजा रखतीं कि उनके न आने का कारण चाहे और कुछ हो, निष्ठुरता हरगिज नहीं। शायद हाल पूछने के लिए उसने तार दिया होता और अपने पति को अपने सामने खैरियत से देखकर वह बरबस उनके सीने से जा चिमटती और देवताओं की कृतज्ञ होती। मगर अस्त्रों की वह बेमौका कंजूसी और चेहरे की वह निष्ठुर मुस्कान इस वक्त उसके पहलू में खटक रही थी। दिल में यह खयाल जम गया था कि मैं चाहे इनके लिए मर भी मिटूँ मगर इन्हें मेरी परवाह नहीं है। दोस्तों का आग्रह और जिद केवल बहाना है। कोई जबरदस्ती किसी को रोक नहीं

सकता। खूब! मैं तो रात की रात बैठकर काटूँ और वहाँ मजे उड़ाए जाएँ!

बाबू दयाशंकर को रूठों को मनाने में विशेष दक्षता थी और इस मौके पर उन्होंने कोई बात, कोई कोशिश उठा नहीं रखी। तोहफे तो लाए थे मगर उनका जादू न चला। तब हाथ जोड़कर एक पैर से खड़े हुए गुदगुदाया, तलुए सहलाए कुछ शोखी और शरारत की, दस बजे तक इन्हीं सब बातों में लगे रहे। इसके बाद खाने का वक्त आया। आज उन्होंने रूखी रोटियाँ बड़े शौक से और मामूली से कुछ ज्यादा खाईं—गिरिजा, आज हफ्ते-भर के बाद रोटियाँ नसीब हुई हैं, सतारे में रोटियों को तरस गए। पूड़ियाँ खाते-खाते आँतों में बायगोले पड़ गए। यकीन मानो गिरिजा, वहाँ कोई आराम न था, न कोई सैर, न कोई लुत्फ। सैर और लुत्फ तो महज अपने दिल की कैफियत पर मुनहसर हैं। बेफिक्री हो तो चटियल मैदान में बाग का मजा आता है और तबीयत को कोई फिक्र हो तो बाग वीराने से भी ज्यादा उजाड़ मालूम होता है। कम्बख्त दिल तो हरदम यहीं धरा रहता था, वहाँ मजा क्या खाक आता। तुम चाहे इन बातों को केवल बनावट समझ लो, क्योंकि मैं तुम्हारे सामने दोषी हूँ और तुम्हें अधिकार है कि मुझे झूठा, मक्कार, दगाबाज, बेवफा, बात बनानेवाला जो चाहे समझ लो, मगर सच्चाई यही है जो मैं कह रहा हूँ। मैं जो अपना वादा पूरा नहीं कर सका, उसका कारण दोस्तों की जिद थी।

दयाशंकर ने रोटियों की खूब तारीफ की क्योंकि पहले कई बार यह तरकीब फायदेमन्द साबित हुई थी मगर आज यह मन्त्र भी कारगर न हुआ और गिरिजा के तेवर बदले ही रहे।

तीसरे पहर दयाशंकर गिरिजा के कमरे में गए और पंखा झलने लगे; यहाँ तक कि गिरिजा झुँझलाकर बोल उठी—अपनी नाजबरदारियाँ अपने ही पास रखिए। मैंने हुजूर से भर पाया। मैं तुम्हें पहचान गई, अब धोखा नहीं खाने की। मुझे न मालूम था कि मुझसे आप यों दगा करोगे। गरज जिन शब्दों में बेवफाइयों और निष्ठुरताओं की शिकायतें हुआ करती हैं वह सब इस वक्त गिरिजा ने खर्च कर डाले।

:: 5 ::

शाम हुई। शहर की गलियों में मोतिये और बेले की लपटें आने लगीं। सड़कों पर छिड़काव होने लगा और मिट्टी की सोंधी खुशबू उड़ने लगी। गिरिजा खाना पकाने जा रही थी कि इतने में उसके दरवाजे पर एक इक्का आकर रुका और उसमें से एक औरत उतर पड़ी। उसके साथ एक महरी थी। उसने ऊपर आकर गिरिजा से कहा—बहूजी, आपकी सखी आ रही हैं।

यह सखी पड़ोस में रहने वाली अहलमद साहब की बीवी थीं। अहलमद साहब बूढ़े आदमी थे। उनकी पहली शादी उस वक्त हुई थी, जब दूध के दाँत न टूटे थे। दूसरी शादी संयोग से उस जमाने में हुई जब मुँह में एक दाँत भी बाकी न था। लोगों ने बहुत समझाया कि अब आप बूढ़े हुए शादी न कीजिए ईश्वर ने लड़के दिए हैं बहुएँ हैं आपको किसी बात की तकलीफ नहीं हो सकती। मगर अहलमद साहब खुद बुट्टे और दुनिया देखे हुए आदमी थे, इन शुभचिंतकों की सलाहों का जवाब व्यावहारिक उदाहरणों से दिया करते थे—क्यों क्या मौत को ओं से कोई दुश्मनी है? बूढ़े गरीब उसका क्या बिगाडते हैं। हम बाग में जाते हैं तो मुरझाए हुए फूल नहीं तोड़ते हमारी आँखें तरोताजा, हरे-भरे खूबसूरत फूलों पर पड़ती हैं।

कभी-कभी गजरे वगैरह बनाने के लिए कलियाँ भी तोड़ ली जाती हैं। यही हालत मौत की है। क्या यमराज को इतनी समझ भी नहीं है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि जवान और बच्चे ओं से ज्यादा मरते हैं। मैं अभी ज्यों का त्यों हूँ र मेरे तीन जवान भाई, पाँच बहनें बहनों के पति, तीनों भावजें चार बेटे पाँच बेटियाँ कई भतीजे, सब मेरी आँखों के सामने इस दुनिया से चल बसे। मौत सबको निगल गई मगर मेरा बाल बाँका न कर सकी। यह गलत, बिलकुल गलत है कि बूढ़े आदमी जल्द मर जाते हैं। और असल बात तो यह है कि जवान बीवी की जरूरत बुढ़ापे में ही होती है। बहुएँ मेरे सामने निकला न चाहें और न निकल सकती हैं भावजें खुद बूढ़ी हुई, छोटे भाई की बीवी मेरी परछाईं भी नहीं देख सकती हैं बहनें अपने-अपने घर हैं लड़के सीधे मुँह बात नहीं करते। मैं ठहरा आ, बीमार पड़ूँ तो पास कौन फटके, एक लोटा पानी कौन दे देखूँ किसकी अंखिं से जी कैसे बहलाऊँ! क्या आत्महत्या कर लूँ! या कहीं डूब मरूँ इन दलीलों के मुकाबले में किसी की जबान न खुली थी। गरज इस नई अहलमदिन और गिरिजा में कुछ बहनापा-सा हो गया था, कभी-कभी उससे मिलने आ जाया करती थी। अपने भाग्य पर सन्तोष करने वाली स्त्री थी, कभी शिकायत या रंज की एक बात जबान से न निकालती। एक बार गिरिजा ने मजाक में कहा था कि बूढ़े और जवान का मेल अच्छा नहीं होता। इस पर वह नाराज हो गई और कई दिन तक न आई। गिरिजा महरी को देखते ही फौरन गिन में निकल आई और गो उसे इस वक्त मेहेमान का आना नागवार गुजरा मगर महरी से बोली—बहन, अच्छी आईं, दो घड़ी दिल बहलेगा।

जरा देर में अहलमदिन साहब गहने से लदी हुई, घूँघट निकाले छमछम करती हुई गिन में आकर खड़ी हो गईं। गिरिजा ने करीब आकर कहा—वाह सखी, आज तो तुम दुलहिन बनी हो। मुझसे पर्दा करने लगी हो तो क्या? यह कहकर उसने घूँघट हटा दिया और सखी का मुँह देखते ही चौंककर एक कदम पीछे हट गई। दयाशंकर ने जोर से कहकहा लगाया और गिरिजा को सीने से लिपटा लिया और विनती के स्वर में बोले—गिरजन, अब मान जाओ, ऐसी खता फिर कभी न होगी। मगर सरिजन अलग हट गई और रुखाई से बोली—तुम्हारा बहुरूप बहुत देख चुकी, अब तुम्हारा असली रूप देखना चाहती हूँ।

:: 6 ::

दयाशंकर प्रेम-नदी की हलकी-हलकी लहरों का आनन्द तो जरूर उठाना चाहते थे मगर तूफान से उनकी तबीयत भी उतना ही घबराती थी जितना गिरिजा की, बल्कि शायद उससे भी ज्यादा। हृदय-परिवर्तन के जितने मन्त्र उन्हें याद थे वह सब उन्होंने पड़े और उन्हें कारगर न होते देखकर आखिर उनकी तबीयत को भी उलझन होने लगी। यह वे मानते थे कि बेशक मुझसे खता हुई है मगर खता उनके खयाल में ऐसी दिल जलानेवाली सजाओं के काबिल न थी। मनाने की कला में वह जरूर सिद्धहस्त थे मगर इस मौके पर उनकी अक्ल ने कुछ काम न दिया। उन्हें ऐसा कोई जादू नजर नहीं आता था जो उठती हुई काली घटाओं और जोर पकड़ते हुए झोंकों को रोक दे। कुछ देर तक वह इन्हीं खयालों में खामोश खड़े रहे और फिर बोले—आखिर गिरजन, अब तुम क्या चाहती हो?

गिरिजा ने अत्यन्त सहानुभूतिशून्य बेपरवाही से मुँह फेरकर कहा—कुछ नहीं।

दयाशंकर—नहीं कुछ तो जरूर चाहती हो वर्ना चार दिन तक बिना दाना-पानी के रहने का क्या मतलब? क्या मुझ पर जान देने की ठानी है? अगर यही फैसला है तो बेहतर है तुम यों जान दो और मैं कत्ल के जुर्म में फाँसी पाई, किस्सा तमाम हो जाए। अच्छा होगा, दुनिया की परेशानियों से छुटकारा हो जाएगा।

यह मन्तर बिलकुल बेअसर न रहा। गिरिजा आँखों में औंसू भरकर बोली—तुम खामखाह मुझसे झगड़ना चाहते हो और मुझे झगड़े से नफरत है। मैं न तुमसे बोलती हूँ और न चाहती हूँ कि तुम मुझसे बोलने की तकलीफ गवारा करो। क्या आज शहर में कहीं नाच नहीं होता, कहीं हॉकी मैच नहीं है कहीं शतरंज नहीं बिछी हुई है? वहीं तुम्हारी तबीयत जमती है, आप वहीं जाइए मुझे अपने हाल पर रहने दीजिए। मैं बहुत अच्छी तरह हूँ।

दयाशंकर करुण स्वर में बोले—क्या तुमने मुझे ऐसा बेवफा समझ लिया है?

गिरिजा—जी हाँ, मेरा तो यही तजुर्बा है।

दयाशंकर—तो तुम सख्त गलती पर हो। अगर तुम्हारा यही खयाल है तो मैं कह सकता हूँ कि औरतों की अन्तर्दृष्टि के बारे में जितनी बातें सुनी हैं वह सब गलत हैं। सरिजन, मेरे भी दिल हैं ...

गिरिजा ने बात काटकर कहा—सच, आपके भी दिल है यह आज नई बात मालूम हुई!

दयाशंकर कुछ झेंपकर बोले—खैर, जैसा तुम समझो। मेरे दिल न सही, मेरे जिगर न सही, दिमाग तो साफ जाहिर है कि ईश्वर ने मुझे नहीं दिया वर्ना वकालत में फेल क्यों होता। तो गोया मेरे शरीर में सिर्फ पेट है मैं सिर्फ खाना जानता हूँ और सचमुच है भी ऐसा ही, तुमने मुझे कभी फाका करते नहीं देखा। तुमने कई बार दिन-दिन-भर कुछ नहीं खाया है, मैं पेट भरने से कभी बाज नहीं आया। लेकिन कई बार ऐसा भी हुआ है कि दिल और जिगर जिस कोशिश में असफल रहे वह इसी पेट ने पूरी कर दिखाई या यों कहो कि कई बार इसी पेट ने दिल और दिमाग और जिगर का काम कर दिखाया है और मुझे अपने इस अजीब पेट पर कुछ गर्व होने लगा था मगर अब मालूम हुआ कि मेरे पेट की बेहयाइयाँ लोगों को बुरी मालूम होती हैं ... इस वक्त मेरा खाना न बने। मैं कुछ न खाऊँगा।

गिरिजा ने पति की तरफ देखा, चेहरे पर हलकी-सी मुस्कराहट थी, वह यह कह रही थी कि यह आखिरी बात तुम्हें ज्यादा सँभलकर कहनी चाहिए थी। गिरिजा और औरतों की तरह यह भूल जाती थी कि मर्दों की आत्मा को भी कष्ट हो सकता है। उसके खयाल में कष्ट का मतलब शारीरिक कष्ट था। उसने दयाशंकर के साथ और चाहे जो रियायत की हो, खिलाने-पिलाने में उसने कभी भी रियायत नहीं की और जब तक खाने की दैनिक मात्रा उनके पेट में पहुँचती जाए उसे उनकी तरफ से कोई ज्यादा अन्देशा नहीं होता था। हजम करना दयाशंकर का काम था। सच पूछिए तो गिरिजा ही की सख्तियों ने उन्हें हाँकी का शौक दिलाया वर्ना अपने और सैकड़ों भाइयों की तरह उन्हें दफ्तर से आकर हुक्के और शतरंज से ज्यादा मनोरंजन होता था। गिरिजा ने यह धमकी सुनी तो त्योरियाँ चढ़ाकर बोली—अच्छी बात है, न बनेगा।

दयाशंकर दिल में कुछ झेंप-से गए। उन्हें इस बेरहम जवाब की उम्मीद न थी। अपने कमरे में जाकर अखबार पढ़ने लगे। इधर गिरिजा हमेशा की तरह खाना पकाने में लग गई।

दयाशंकर का दिल इतना टूट गया था कि उन्हें खयाल भी न था कि गिरिजा खाना पका रही होगी। इसलिए जब नौ बजे के करीब उसने आकर कहा कि चलो खाना खा लो तो वह ताज्जुब से चौंक पड़े मगर यह यकीन आ गया कि मैंने बाजी मार ली। जी हरा हुआ, फिर भी ऊपर से रुखाई से कहा—मैंने तो तुमसे कह दिया था कि आज कुछ न खाऊँगा।

गिरिजा—चलो, थोड़ा-सा खा लो।

दयाशंकर—मुझे जरा भी भूख नहीं है।

गिरिजा—क्यों? आज भूख क्यों नहीं लगी?

दयाशंकर—तुम्हें तीन दिन से क्यों भूख नहीं लगी?

गिरिजा—मुझे तो इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मेरे दिल को चोट पहुँचाई थी।

दयाशंकर—मुझे भी इस वजह से नहीं लगी कि तुमने मुझे तकलीफ दी है।

दयाशंकर ने रुखाई के साथ यह बातें कहीं और अब गिरिजा उन्हें मनाने लगी। फौरन पांसा पलट गया। अभी एक ही क्षण पहले वह उसकी खुशामदें कर रहे थे मुजरिम की तरह उसके सामने हाथ बाँधे खड़े थे गिड़गिड़ा रहे थे, मिन्नतें करते थे और अब बाजी पलटी हुई थी मुजरिम इन्साफ की मसनद पर बैठा हुआ था। मुहब्बत की राहें मकड़ी के जालों से भी पेचीदा हैं।

दयाशंकर ने दिल में प्रतिज्ञा की थी कि मैं भी इसे इतना ही हैरान करूँगा जितना इसने मुझे किया है और थोड़ी देर तक वह योगियों की तरह स्थिरता के साथ बैठे रहे। गिरिजा ने उन्हें गुदगुदाया, तलुए खुजलाए उनके बालों में कंघी की, कितनी ही लुभाने वाली अदाएँ खर्च कीं मगर असर न हुआ। तब उसने अपनी दोनों बाहें उनकी गर्दन में डाल दीं और याचना और प्रेम से भरी हुई आँखें उठाकर बोली—चलो मेरी कसम खा लो।

फूस की बाँध बह गई। दयाशंकर ने गिरिजा को गले से लगा लिया। उसके भोलेपन और भावों की सरलता ने उनके दिल पर एक अजीब दर्दनाक असर पैदा किया। उनकी आँखें भी गीली हो गईं। आह, मैं कैसा जालिम हूँ मेरी बेवफाइयों ने इसे कितना रुलाया है तीन दिन तक इसके आँसू नहीं थमे, ओखें नहीं झपकों तीन दिन तक इसने दाने की सूरत नहीं देखी मगर मेरे एक जरा से इनकार ने, झूठे नकली इनकार ने, चमत्कार कर दिखाया। कैसा कोमल हृदय है, गुलाब की पंखुड़ी की तरह, जो मुरझा जाती है मगर मैली नहीं होती। कहाँ मेरा ओछापन, खुदगर्जी और कहाँ यह बेखुदी, यह त्याग यह साहस।

दयाशंकर के सीने से लिपटी हुई गिरिजा उस वक्त अपने प्रबल आकर्षण से उनके दिल को खींचे लेती थी। उसने जीती हुई बाजी हारकर आज अपने पति के दिल पर कब्जा पा लिया। इतनी जबर्दस्त जीत उसे कभी न हुई थी। आज दयाशंकर को मुहब्बत और भोलेपन की इस मूरत पर जितना गर्व था इसका अनुमान लगाना कठिन है। जरा देर में वह उठ खड़े हुए और बोले—एक शर्त पर चलूंगा।

गिरिजा—क्या?

दयाशंकर—अब कभी मत रूठना।

गिरिजा—तो टेढ़ी शर्त है मगर . . . . मंजूर है।

दो-तीन कदम चलने के बाद गिरिजा ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोली—तुम्हें भी मेरी एक शर्त माननी पड़ेगी।

दयाशंकर—मैं समझ गया। तुमसे सच कहता हूँ, अब ऐसा न होगा।

दयाशंकर ने आज गिरिजा को भी अपने साथ खिलाया। वह बहुत लजाई, बहुत हीले किए कोई सुनेगा तो क्या कहेगा, यह तुम्हें क्या हो गया है। मगर दयाशंकर ने एक न मानी और कई कौर गिरिजा को अपने हाथ से खिलाए और हर बार अपनी मुहब्बत का बेदर्दी के साथ मुआवजा लिया।

खाते-खाते उन्होंने हँसकर गिरिजा से कहा—मुझे न मालूम था कि तुम्हें मनाना इतना आसान है।

गिरिजा ने नीची निगाहों से देखा और मुस्कराई, मगर मुँह से कुछ न बोली।

–उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

अँधेर

नागपंचमी आई। साठे के जिन्दादिल नौजवानों ने रंग-बिरंगे रणेंघए बनवाए। अखाड़े में ढोल की मर्दाना सदाएं गूँजने लगीं। आसपास के पहलवान इकदठे हुए और अखाड़े पर तम्बोलियों ने अपनी दुकानें सजाई क्योंकि आज कुश्ती और दोस्ताना मुकाबले का दिन है। औरतों ने गोबर से अपने अगिन लीपे और गाती-बजाती कटोरों में दूध-चावल लिये नाग पूजने चलीं।

साठे और पाठे दो लगे हुए मौजे। दोनों गंगा के किनारे। खेती में ज्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ती थी इसीलिए आपस में फौजदारियाँ खूब होती थीं। आदिकाल से-अत उनके बीच होड़ चली आती थी। साठेवालों को यह घमण्ड था कि उन्होंने पाठेवालों को कभी सिर न उठाने दिया। उसी तरह पाठेवाले अपने प्रतिद्वन्द्वियों को नीचा दिखलाना ही जिन्दगी का सबसे बड़ा काम समझते थे। उनका इतिहास विजयों की कहानियों से भरा हुआ था। पाठे के चरवाहे यह गीत गाते हुए चलते थे—

साठेवाले कायर सगरे पाठेवाले हैं सरदार

और साठे के धोबी गाते—

साठेवाले साठ हाथ के जिनके हाथ सदा तरवार।

उन लोगन के जनम नसाए जिन पाठे मान लीन अवतार।।

गरज आपसी होड़ का यह जोश बच्चों में माँ के दूध के साथ दाखिल होता था और उसके प्रदर्शन का सबसे अच्छा और ऐतिहासिक मौका यही नागपंचमी का दिन था। इस दिन के लिए सालभर तैयारियाँ होती रहती थीं। आज उनमें मार्के की कुश्ती होनेवाली थी। साठे को गोपाल पर नाज था, पाठे को बलदेव का गर्रा। दोनों सूरमा अपने-अपने फरीक की दुआएँ और आरजुएँ लिये हुए अखाड़े में उतरे। तमाशाइयों पर चुम्बक का-सा असर हुआ। मौजे के चौकीदारों ने लट्ठ और डण्डों का यह जमघट देखा और मर्दो की अंगारे की तरह लाल आँखें तो पिछले अनुभव के आधार पर बेपता हो गए। इधर अखाड़े में दाँव-पेच होते रहे। बलदेव उलझता था, गोपाल पैंतरे बदलता था। उसे अपनी ताकत का जोम था, इसे अपने करतब का भरोसा। कुछ देर तक अखाड़े से ताल ठोंकने की आवाजें आती रहीं, तब यकायक बहुत-से आदमी खुशी के नारे मार-मार उछलने लगे कपड़े और बर्तन और पैसे और बताशे लुटाए जाने लगे। किसी ने अपना पुराना साफा फेंका, किसी ने अपनी बोसीदा टोपी हवा में उड़ा दी। साठे के मनचले जवान अखाड़े में पिल पड़े और गोपाल को गोद में उठा लाए। बलदेव और उसके साथियों ने गोपाल को लहू की औखों से देखा और दाँत पीसकर रह गए।

:: 2 ::

दस बजे रात का वक्त और सावन का महीना। आसमान पर काली घटाएँ छाई हुई थीं। अँधेरे का यह हाल था कि जैसे रोशनी का अस्तित्व ही नहीं रहा। कभी-कभी बिजली चमकती थी मगर अँधेरे को और ज्यादा अँधेरा करने के लिए। मेंढकों की आवाजें जिन्दगी का पता देती थीं वर्ना चारों तरफ मौत थी। खामोश, डरावने और गम्भीर साठे के झोपड़े और मकान इस अंधेरे में बहुत गौर से देखने पर काली-काली भेड़ों की तरह नजर आते थे। न बच्चे रोते थे, न औरतें गाती थीं। पवित्रात्मा बुड्के राम नाम न जपते थे।

मगर आबादी से बहुत दूर कई पुरशोर नालों और ढाल के जंगलों से गुजरकर ज्वार और बाजरे के खेत थे और उनकी भेड़ों पर साठे के किसान जगह-जगह मड़ैया डाले खेतों की रखवाली कर रहे थे। तले जमीन, ऊपर अंधेरा, मीलों तक सन्नाटा छाया हुआ। कहीं जंगली सूअरों के गोल, कहीं नीलगायों के रेवड़, चिलम के सिवा कोई साथी नहीं, आग के सिवा कोई मददगार नहीं। जरा खटका हुआ और चौंक पड़े। अँधेरा भय का दूसरा नाम है, जब मिट्टी का एक ढेर, एक डंडा पेड़ और घास का एक ढेर भी जानदार चीजें बन जाती हैं। अँधेरा उनमें जान डाल देता है। लेकिन यह मजबूत हाथोंवाले, मजबूत जिगरवाले, मजबूत इरादेवाले किसान हैं कि यह सब सख्तियाँ झेलते हैं ताकि अपने ज्यादा भाग्यशाली भाइयों के लिए भोग-विलास के सामान तैयार करें। इन्हीं रखवालों में आज का हीरो, साठे का गौरव गोपाल भी है जो अपनी मड़ैया में बैठा हुआ है और नींद को भगाने के लिए धीमे सुरों में यह गीत गा रहा है-

मैं तो तोसे नैना लगाय पछताई रे

अचानक उसे किसी के पाँव की आहट मालूम हुई। जैसे हिरन कुत्तों की आवाजों को कान लगाकर सुनता है उसी तरह गोपाल ने भी कान लगाकर सुना। नींद की धवाई दूर हो गई। लट्ठ कंधे पर रखा और मड़ैया से बाहर निकल आया। चारों तरफ कालिमा छाई हुई थी और हल्की-हल्की बूदें पड़ रही थीं। वह बाहर निकला ही था कि उसके सर पर लाठी का भरपूर हाथ पड़ा। वह त्योराकर गिरा और रातभर वहीं बेसुध पड़ा रहा। मालूम नहीं उस पर कितनी चोटें पड़ी। हमला करनेवालों ने तो अपनी समझ में उसका काम तमाम कर डाला, लेकिन जिन्दगी बाकी थी। यह पाठे के गैरतमन्द लोग थे जिन्होंने अँधेरे की आड में अपनी हार का बदला लिया था।

:: 3 ::

गोपाल जाति का अहीर था, न पढ़ा न लिखा, बिलकुल अक्खड़। दिमाग रौशन ही नहीं हुआ तो शरीर का दीपक क्यों पुलता। पूरे छः फुट का कद, गठा हुआ बदन, ललकारकर गाता तो सुननेवाले मीलभर पर बैठे हुए उसकी तानों का मजा लेते। गाने-बजाने का आशिक, होली के दिनों में महीनेभर तक गाता, सावन में मलार और भजन तो रोज का शगल था। निडर ऐसा कि भूत और पिशाच के अस्तित्व पर उसे विद्वानों-जैसे सन्देह थे। लेकिन जिस तरह शेर और चीते भी लाल लपटों से डरते हैं उसी तरह लाल पगड़ी से

उसकी रूह काँपने लगती थी। अगरचे साठे के एक हिम्मती सूरमा के लिए यह बेमतलब डर असाधारण बात थी लेकिन उसका कुछ बस न था। सिपाही की वह डरावनी तसवीर जो बचपन में उसके दिल पर खींची गई थी, पत्थर की लकीर बन गई थी। शरारतें गई, बचपन गया, मिठाई की भूख गई लेकिन सिपाही की तसवीर अभी तक कायम थी। आज उसके दरवाजे पर लाल पगडीवालों की एक फौज जमा थी लेकिन गोपाल जख्मों से चूर, दर्द से बेचैन होने पर भी अपने मकान के एक अँधेरे कोने में छिपा हुआ बैठा था। नम्बरदार और मुखिया, पटवारी और चौकीदार रोब खाए हुए ढंग से खड़े दारोगा की खुशामद कर रहे थे। कहीं अहीर की फरियाद सुनाई देती थी, कहीं मोदी का रोना-धोना, कहीं तेली की चीख-पुकार, कहीं कसाई की अस्त्रों से लहू जारी। कलवार खड़ा अपनी किस्मत को रो रहा था। फोहश और गन्दी बातों की गर्मबाजारी थी। दारोगा जी निहायत कारगुजार अफसर थे, गालियों में बात करते थे। सुबह को चारपाई से उठते ही गालियों का वजीफा पड़ते थे। मेहतर ने आकर फरियाद की—हजूर, अण्डे नहीं हैं दारोगा जी हण्टर लेकर दौड़े और उस गरीब का भुरकुस निकाल दिया। सारे गाँव में हलचल पडी थी। कानिस्टिबिल और चौकीदार रास्तों पर यों अकडते चलते थे गोया अपनी ससुराल में आए हैं। जब गाँव के सारे आदमी आ गए तो दारोगा जी ने अफसरी शान से फरमाया—मौजे में ऐसी संगीन वारदात हुई और इस कम्बख्त गोपाल ने रपट तक न की।

मुखिया साहब बेद की तरह कांपते हुए बोले-हजूर, अब माफी दी जाए। दरोगा जी ने गजबनाक निगाहों से उसकी तरफ देखकर कहा-यह उसकी शरारत है। दुनिया जानती है कि जुर्म को छुपाना जुर्म करने के बराबर है। मैं इस बदमाश को इसका मजा चखा दूँगा। वह अपनी ताकत के जोम में भूला हुआ है, और कोई बात नहीं। लातों के भूत बातों से नहीं मानते।

मुखिया साहब ने सिर झुकाकर कहा—हजूर, अब माफी दी जाए।

दरोगा जी की त्योरियाँ चढ़ गई और झुँझलाकर बोले—अरे हजूर के बच्चे, कुछ सठिया तो नहीं गया है। अगर इसी तरह माफी देनी होती तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा था कि यहाँ तक दौड़ा आता। न कोई मामला, न मामले की बात, बस माफी की रट लगा रखी है। मुझे ज्यादा फुरसत नहीं है। मैं नमाज पड़ता हूँ तब तक तुम अपना सलाह-मशवरा कर लो और मुझे हँसी-खुशी रुखसत करो वर्ना गौसखां को जानते हो, उसका मारा पानी भी नहीं माँगता।

दारोगा तकवे व तहारत के बड़े पाबन्द थे। पाँचों वक्त की नमाज पढ़ते और तीसों रोजे रखते ईदों में धूमधाम से कुर्बानियाँ होतीं। इससे अच्छा आचरण किसी आदमी में और क्या हो सकता है!

:: 4 ::

मुखिया साहब दबे पाँच गुपचुप ढंग से गौरा के पास आए और बोले—यह दारोगा बड़ा काफिर है, पचास से नीचे तो बात ही नहीं करता। अव्वल दर्जे का थानेदार है। मैंने बहुत कहा, हजूर गरीब आदमी है, घर में कुछ सुभीता नहीं, मगर वह एक नहीं सुनता।

गौरा ने घूंघट में मुँह छिपाकर कहा—दादा, उसकी जान बच जाय, कोई तरह की आँच न आने पाए रुपये-पैसे की कौन बात है इसी दिन के लिए तो कमाया जाता है।

गोपाल खाट पर पड़ा यह सब बातें सुन रहा था। अब उससे न रहा गया। लकड़ी गाँठ ही पर टूटती है। जो गुनाह किया नहीं गया वह दबता है मगर कुचला नहीं जा सकता। वह जोश से उठ बैठा और बोला—पचास रुपये की कौन कहे मैं पचास कौड़ियाँ भी न दूँगा। कोई गदर है मैंने कसूर क्या किया है?

मुखिया का चेहरा फक हो गया। बड़प्पन के स्वर में बोले—धीरे बोली, कहीं सुन ले तो गजब हो जाय।

लेकिन गोपाल बिफरा हुआ था, अकड़कर बोला—मैं एक कौड़ी भी न दूँगा। देखें कौन मेरे फाँसी लगा देता है।

गौरा ने बहलाने के स्वर में कहा-अच्छा, जब मैं तुमसे रुपये माँगू तो मत देना। यह कहकर गौरा ने, जो इस वक्त लौंडी के बजाय रानी बनी हुई थी, छप्पर के एक कोने में से रुपयों की एक पोटली निकाली और मुखिया के हाथ में रख दी। गोपाल दाँत पीसकर उठा, लेकिन मुखिया साहब फौरन से पहले सरक गए। दारोगा जी ने गोपाल की बातें सुन ली थीं और दुआ कर रहे थे कि ऐ खुदा, इस मरदूद के दिल को पलट। इतने में मुखिया ने बाहर आकर पचीस रुपये की पोटली दिखाई। पचीस रास्ते ही में गायब हो गए थे। दारोगा जी ने खुदा का शुक्र किया। दुआ सुनी गई। रुपया जेब में रखा और रसद पहुँचानेवालों की भीड़ को रोते और बिलबिलाते छोड़कर हवा हो गए। मोदी का गला घुँट गया। कसाई के गले पर छुरी फिर गई। तेली पिस गया। मुखिया साहब ने गोपाल की गर्दन पर एहसान रखा गोया रसद के दाम गिरह से दिए। गाँव में सुर्खरू हो गया, प्रतिष्ठा बढ़ गई। इधर गोपाल ने गौरा की खूब खबर ली। गाँव में रातभर यही चर्चा रही। गोपाल बहुत बचा और इसका सेहरा मुखिया के सिर था। बड़ी विपत्ति आई थी। वह टल गई। पितरों ने, दीवान हरदौल ने, नीम तलेवाली देवी ने, तालाब के किनारेवाली सती ने गोपाल की रक्षा की। यह उन्हीं का प्रताप था। देवी पूजा होनी जरूरी थी। सत्यनारायण की कथा भी लाजिमी हो गई।

:: 5 ::

फिर सुबह हुई लेकिन गोपाल के दरवाजे पर आज लाल पगड़ियों के बजाय लाल साड़ियों का जमघट था। गौरा आज देवी की पूजा करने जाती थी और गाँव की औरतें उसका साथ देने आई थीं। उसका घर सोंधी-सोंधी मिट्टी की खुशबू से महक रहा था जो खस और गुलाब से कम मोहक न थी। औरतें सुहाने गीत गा रही थीं। बच्चे खुश हो-होकर दौड़ते थे। देवी के चबूतरे पर उसने मिट्टी का हाथी चढ़ाया। सती की माँग में सेंदूर डाला। दीवान साहब को बताशे और हलुआ खिलाया। हनुमानजी को लड्डू से ज्यादा प्रेम है, उन्हें लड्डू चढ़ाए। तब गाती-बजाती घर को आईं और सत्यनारायण की कथा की तैयारियाँ होने लगीं। मालिन फूल के हार, केले की शाखें और बन्दनवारें लाई। कुम्हार नए-नए दीये और हड़ियों दे गया। बारी हरे ढाल के पत्तल और दोने रख गया। कहार ने आकर मटकों में पानी भरा। बढ़ई ने आकर गोपाल और गौरा के लिए दो नई-नई पीढ़ियाँ बनाई। नाइन ने गिन लीपा और चौक

बनाई। दरवाजे पर बन्दनवारें बँध गईं। गिन में केले की शाखें गड़ गईं। पण्डितजी के लिए सिंहासन सज गया। आपस के कामों की व्यवस्था खुद-ब-खुद अपने निश्चित दायरे पर चलने लगी। यही व्यवस्था संस्कृति है जिसने देहात की जिन्दगी को आडम्बर की ओर से उदासीन बना रक्खा है। लेकिन अफसोस है कि अब ऊँच-नीच की बेमतलब और बेहूदा कैदों ने इन आपसी कर्तव्यों को सौहार्द-सहयोग के पद से हटाकर उन पर अपमान और नीचता का दाग लगा दिया है। शाम हुई। पण्डित मोटेरामजी ने कन्धे पर झोली डाली, हाथ में शंख लिया और खड़ाके पर खटपट करते गोपाल के घर आ पहुँचे। गिन में टाट बिछा हुआ था। गाँव के प्रतिष्ठित लोग कथा सुनने के लिए आ बैठे। घाटी बजी, शंख फूंका गया और कथा शुरू हुई। गोपाल भी गाढ़े की चादर ओढ़े एक कोने में दीवार के सहारे बैठा हुआ था। मुखिया, नम्बरदार और पटवारी ने मारे हमदर्दी के उससे कहा—सत्यनारायण की महिमा थी कि तुम पर कोई औच न आई!

गोपाल ने अंगड़ाई लेकर कहा—सत्यनारायण की महिमा नहीं, यह अन्धेर है।

–जमाना, जुलाई *1913*

सिर्फ एक आवाज

सुबह का वक्त था। ठाकुर दर्शन सिंह के घर में एक हंगामा बरपा था। आज रात को चन्द्र ग्रहण होनेवाला था। ठाकुर साहब अपनी बूढ़ी ठकुराइन के साथ गंगाजी जाते थे इसीलिए सारा घर उनकी पुरशोर तैयारी में लगा हुआ था। एक बहू उनका फटा हुआ कुर्ता टाँक रही थी, दूसरी बहू उनकी पगड़ी लिये सोचती थी, कि कैसे इसकी मरम्मत करूँ। दोनों लड़कियां नाश्ता तैयार करने में तल्लीन थीं जो ज्यादा दिलचस्प काम था और बच्चों ने अपनी आदत के अनुसार एक कुहराम मचा रखा था क्योंकि हर एक आने-जाने के मौके पर उनका रोने का जोश उमंग पर होता था। जाने के वक्त साथ जाने के लिए रोते, आने के वक्त इसलिए रोते कि शीरीनी का बाँट-बखरा मनोनुकूल नहीं हुआ। बूढ़ी ठकुराइन बच्चों को फुसलाती थीं और बीच-बीच में अपनी बहुओं को समझाती थीं—देखो खबरदार! जब तक उग्रह न हो जाए घर से बाहर न निकलना। हँसिया, छुरी, कुन्हाड़ी, इन्हें हाथ से मत छूना। समझाए देती हूँ मानना चाहे न मानना तुम्हें मेरी बात की कौन परवाह है। मुँह में पानी की बूँद न पड़े। नारायण के घर विपत पड़ी है। जो साधू-भिखारी दरवाजे पर आ जाए उसे फेरना मत। बहुओं ने सुना और नहीं सुना। वे मना रही थीं कि किसी तरह यह यहाँ से टलें। फागुन का महीना है गाने को तरस गए। आज खूब गाना-बजाना होगा।

ठाकुर साहब थे तो बूढ़े, लेकिन बुढ़ापे का असर दिल तक नहीं पहुँचा था। उन्हें इस बात का गर्व था कि कोई ग्रहण गंगा-स्नान के बगैर नहीं छूटा। उनका ज्ञान आश्चर्यजनक था। सिर्फ पत्रों को देखकर महीनों पहले सूर्यग्रहण और दूसरे पर्वो के दिन बता देते थे। इसीलिए गाँव वालों की निगाह में उनकी इज्जत अगर पण्डितों से ज्यादा न थी तो कम भी न थी। जवानी में कुछ दिनों फौज में नौकरी भी की थी। उसकी गर्मी अब तक बाकी थी, मजाल न थी कि कोई उनकी तरफ सीधी आँख से देख सके। सम्मन लाने वाले एक चपरासी को. ऐसी व्यावहारिक चेतावनी दी थी कि जिसका उदाहरण आस-पास के दस-पाँच गाँव में भी नहीं मिल सकता। हिम्मत और हौसले के कामों में अब भी आगे-आगे रहते थे। किसी काम को मुश्किल बता देना उनकी हिम्मत को प्रेरित कर देना था। जहाँ सबकी जबानें बन्द हो जाएँ वहाँ वे शेरों की तरह गरजते थे। जब कभी गाँव में दारोगा जी तशरीफ लाते तो ठाकुर साहब ही का दिल-गुर्दा था कि उनसे आँखें मिलाकर आमने-सामने बात कर सकें। ज्ञान की बातों को लेकर छिड़नेवाली बहसों के मैदान में भी उनके कारनामे कुछ कम शानदार न थे। झगड़ा पण्डित हमेशा उनसे मुँह छिपाया करते। गरज ठाकुर साहब का स्वभावगत गर्व और आत्मविश्वास उन्हें हर बरात में दूल्हा बनने पर मजबूर कर देता था। हाँ, कमजोरी इतनी थी कि अपना आल्हा भी आप ही गा लेते और मजे ले-लेकर क्योंकि रचना को रचनाकार ही खूब बयान करता है!

:: 2 ::

जब दोपहर होते-होते ठाकुर और ठकुराइन गाँव से चले तो सैकड़ों आदमी उनके साथ थे

और पक्की सड़क पर पहुँचे, तो यात्रियों का ऐसा तांता लगा हुआ था कि जैसे कोई बाजार है। ऐसे-ऐसे बूढ़े लाठियों टेकते या डोलियों पर सवार चले जाते थे जिन्हें तकलीफ देने की यमराज ने भी कोई जरूरत न समझी थी। अन्धे दूसरों की लकड़ी के सहारे कदम बढ़ाए आते थे। कुछ आदमियों ने अपनी बूढ़ी माताओं को पीठ पर लाद लिया था। किसी के सर पर कपड़ों की पोटली, किसी के कन्धे पर लोटा-डोर, किसी के कन्धे पर काँवर। कितने ही आदमियों ने पैरों पर चिथड़े लपेट लिये थे जूते कहाँ से लाएं। मगर धार्मिक उत्साह का यह वरदान था कि मन किसी का मैला न था। सबके चेहरे खिले हुए हँसते-हँसते बातें करते चले जा रहे थे। कुछ औरतें गा रही थीं—

चादँ सुरज दूना लोक के मालिक
एक दिना उनई पर बनती
हम जानी हमहीं पर बनती

ऐसा मालूम होता था, यह आदमियों की एक नदी थी, जो सैकड़ों छोटे-छोटे नालों और धारों को लेती हुई समुद्र से मिलने के लिए जा रही थी।

जब यह लोग गंगा के किनारे पहुँचे तो तीसरे पहर का वक्त था लेकिन मीलों तक कहीं तिल रखने की जगह न थी। इस शानदार दृश्य से दिलों पर ऐसा रोब और भक्ति का ऐसा भाव छा जाता था कि बरबस ' गंगा माता की जय ' की सदाएं बुलन्द हो जाती थीं। लोगों के विश्वास उसी नदी की तरह उमड़े हुए थे और वह नदी! वह लहराता हुआ नाला मैदान! वह प्यासों की प्यास बुझाने वाली! वह निराशों की आशा! वह वरदानों की देवी! वह पवित्रता का स्रोत! वह मुट्ठीभर खाक को आश्रय देने वाली गंगा हँसती-मुस्कराती थी और उछलती थी। क्या इसलिए कि आज वह अपनी चौतरफा इज्जत पर फूली न समाई थी या इसलिए कि वह उछल-उछलकर अपने प्रेमियों से गले मिलना चाहती थी जो उनके दर्शनों के लिए मंजिलें तय करके आए थे। और उसके परिधान की प्रशंसा किस जबान से हो जिस पर सूरज ने चमकते हुए तारे टांके थे और जिसके किनारों को उसकी किरणों ने रंग-बिरंगे. सुन्दर और गतिशील फूलों से सजाया था।

अभी ग्रहण लगने में घण्टों की देर थी। लोग इधर-उधर टहल रहे थे। कहीं मदारियों के खेल थे, कहीं चूरनवाले की लच्छेदार बातों के चमत्कार। कुछ लोग भेड़ों की कुश्ती देखने के लिए जमा थे। ठाकुर साहब भी अपने कुछ भक्तों के साथ सैर को निकले। उनकी हिम्मत ने गवारा न किया कि इन बाजारू दिलचस्पियों में शरीक हों। यकायक उन्हें एक बड़ा-सा शामियाना तना हुआ नजर आया, जहाँ ज्यादातर पड़े-लिखे लोगों की भीड़ थी। ठाकुर साहब ने अपने साथियों को एक किनारे खड़ा कर दिया और खुद बड़े गर्व से, ताकते हुए फर्श पर जा बैठे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यहाँ उन पर देहातियों की हैंका-दृष्टि पड़ेगी और सम्भव है कुछ ऐसा बारीक बातें भी मालूम हो जाएँ जो उनके भक्तों को उनकी सर्वज्ञता का विश्वास दिलाने में काम दे सकें।

यह एक नैतिक अनुष्ठान था। दो-ढाई हजार आदमी बैठे हुए एक मधुरभाषी वक्ता का भाषण सुन रहे थे। फैशनेबुल लोग ज्यादातर अगली पंक्तियाँ में बैठे हुए थे जिन्हें कनबतियों का इससे अच्छा मौका नहीं मिल सकता था। कितने ही अच्छे कपड़े पहने हुए लोग

इसलिए दु रखी नजर आते थे कि उनकी बगल में निम्न श्रेणी के लोग बैठे हुए थे। भाषण दिलचस्प मालूम पड़ता था। वजन ज्यादा था और चटखारे कम, इसलिए तालियाँ नहीं बजती थीं।

:: 3 ::

वक्ता ने अपने भाषण में कहा—

'मेरे प्यारे दोस्तो, राह हमारा और आपका कर्तव्य है। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण, ज्यादा परिणामदायक और कौम के लिए ज्यादा शुभ और कोई कर्तव्य नहीं है। हम मानते हैं कि उनके आचार-व्यवहार की दशा अत्यन्त करुण है। मगर विश्वास मानिए यह सब हमारी करनी है। उनकी इस लज्जाजनक सांस्कृतिक स्थिति का जिम्मेदार हमारे सिवा और कौन हो सकता है? अब इसके सिवा इसका और कोई इलाज नहीं है कि हम उस घृणा और उपेक्षा को जो उसकी तरफ से हमारे दिलों में बैठी हुई है धोएँ और खूब मलकर धोएँ। यह आसान काम नहीं है। जो कालिख कई हजार वर्षों से जमी हुई है वह आसानी से नहीं मिट सकती। जिन लोगों की छाया से हम बचते आए हैं जिन्हें हमने जानवरों से भी जलील समझ रखा है, उनसे गले मिलने में हमको त्याग और साहस और परमार्थ से काम लेना पड़ेगा। उस त्याग से जो कृष्ण में था, उस हिम्मत से जो राम में थी, उस परमार्थ से जो चैतन्य और गोविन्द में था। मैं यह नहीं कहता कि आप आज ही उनसे शादी के रिश्ते जोड़ें या उनके साथ बैठकर खाएँ-पिएँ। मगर क्या यह भी मुमकिन नहीं है कि आप उनके साथ सामान्य सहानुभूति, सामान्य मनुष्यता, सामान्य सदाचार से पेश आएँ? क्या यह सचमुच असम्भव बात है? आपने कभी ईसाई मिशनरियों को देखा है? आह, जब मैं एक उच्चकोटि की, सुन्दर, सुकुमार, गौरवर्ण लेडी को अपनी गोद में एक काला-कलूटा बच्चा लिये हुए देखता हूँ जिसके बदन पर फोड़े हैं खून है और गन्दगी है—वह सुन्दरी उस बच्चे को चूमती है प्यार करती है छाती से लगाती है—तो मेरा जी चाहता है कि उस देवी के कदमों पर सिर रख दूँ। अपनी नीचता, अपना कमीनापन, अपनी झूठी बड़ाई, अपने हृदय की संकीर्णता मुझे कभी इतनी सफाई से नजर नहीं आती। इन देवियों के लिए जिन्दगी में क्या-क्या संपदाएं नहीं थीं खुशियाँ बाहें पसारे हुए उनके इन्तजार में खड़ी थीं। उनके लिए दौलत की सब सुख-सुविधाएँ थीं। प्रेम के आकर्षण थे। अपने आत्मियों और स्वजनों की सहानुभूतियाँ थीं और अपनी प्यारी मातृ भूमि का आकर्षण था। लेकिन इन देवियों ने उन तमाम नेमतों, उन सब सांसारिक संपदाओं को सेवा, सच्ची निःस्वार्थ सेवा पर बलिदान कर दिया है। वे ऐसी बड़ी कुर्बानियाँ कर सकती हैं तो हम क्या इतना भी नहीं कर सकते कि अपने अछूत भाइयों से हमदर्दी का सलूक कर सकें? क्या हम सचमुच ऐसे पस्त-हिम्मत., ऐसे बोदे, ऐसे बेरहम हैं? इसे खूब समझ लीजिए कि आप उनके साथ कोई रियायत, कोई मेहरबानी नहीं कर रहे हैं। यह उन पर कोई एहसान नहीं है। यह आप ही के लिए जिन्दगी और मौत का सवाल है। इसलिए मेरे भाइयो और दोस्तो, आइए इस मौके पर शाम के वक्त पवित्र गंगा नदी के किनारे काशी के पवित्र स्थान में हम मजबूत दिल से प्रतिज्ञा करें कि आज से हम अछूतों के साथ भाईचारे का सलूक करेंगे उनके तीज-त्योहार में शरीक होंगे और अपने

त्योहारों में उन्हें बुलाएँगे। उनके गले मिलेंगे और उन्हें गले लगाएँगे। उनकी खुशियों में खुश और उनके दर्दों में दर्दमन्द होंगे और चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय, चाहे तानों तिश्नों और जिल्लत का सामना ही क्यों न करना पड़े हम इस प्रतिज्ञा पर कायम रहेंगे। आपमें सैकड़ों जोशीले नौजवान हैं जो बात के धनी और इरादे के मजबूत हैं। कौन यह प्रतिज्ञा करता है? कौन अपने नैतिक साहस का परिचय देता है? वह अपनी जगह पर खड़ा हो जाए और ललकार कर कहे कि मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक इस पर दृढ़ता से कायम रहूँगा।

:: 4 ::

सूरज गंगा की गोद में जा बैठा था और माँ प्रेम और गर्व से मतवाली जोश से उमड़ी हुई, रंग में केसर को शरमाती और चमक में सोने को लजाती थी। चारों तरफ एक रोबीली खामोशी छाई थी। उस सन्नाटे में संन्यासी की गर्मी और जोश से भरी हुई बातें गंगा की लहरों और गगनचुम्बी मन्दिरों में समा गईं। गंगा एक गं भोर माँ की निराशा के साथ हँसी और देवताओं ने अफसोस से सिर झुका लिया मगर मुँह से कुछ न बोले।

संन्यासी की जोशीली पुकार फिजा में जाकर गायब हो गई, मगर उस मजमे में किसी आदमी के दिल तक न पहुँची। वहाँ कौम पर जान देनेवालों की कमी न थी; स्टेजों पर कौमी तमाशे खेलनेवाले कॉलेजों के होनहार नौजवान, कौम के नाम पर मिटनेवाले पत्रकार, कौमी संस्थाओं के मेम्बर, सेक्रेटरी और प्रेसिडेण्ट राम और कृष्ण के सामने सिर झुकानेवाले सेठ और साहूकार, कौमी कॉलेजों के ऊँचे हौसले वाले प्रोफेसर और अखबारों में कौमी तरक्कियों की खबरें पढ़कर खुश होनेवाले दफ्तरों के कर्मचारी हजारों की तादाद में मौजूद थे। आँखों पर सुनहरी ऐनक लगाए मोटे-मोटे वकीलों की एक पूरी फौज जमा थी मगर संन्यासी के उस गर्म भाषण से एक दिल भी न पिघला क्योंकि वह पत्थर के दिल थे जिनमें दर्द और घुलावट न थी, जिनमें सदिच्छा थी मगर कार्य-शक्ति न थी जिनमें बच्चों कीं-सी इच्छा थी मगर मर्दों का-सा इरादा न था।

सारी मजलिस पर सन्नाटा छाया हुआ था। हर आदमी सिर झुकाए फिक्र में डूबा हुआ नजर आता था। शर्मिन्दगी किसी को सर उठाने न देती थी और आँखें झेंप के मारे जमीन में गड़ी हुई थीं। यह वही सर है जो कौमी चर्चों पर उछल पड़ते थे, यह वही आँखें हैं जो किसी वक्त राष्ट्रीय गौरव की लाली से भर जाती थीं। मगर कथनी और करनी में आदि और अन्त का अन्तर है। एक व्यक्ति को भी खड़े होने का साहस न हुआ। कैंची की तरह चलनेवाली जबानें भी ऐसे महान् उत्तरदायित्व के भय से बन्द हो गईं।

:: 5 ::

ठाकुर दर्शनसिंह अपनी जगह पर बैठे हुए इस दृश्य को बहुत गौर और दिलचस्पी से देख रहे थे। वे अपने धार्मिक विश्वासों में चाहे कट्टर हों या न हों, लेकिन सांस्कृतिक मामलों में

वे कभी अगुआई करने के दोषी नहीं हुए थे। इस पेचीदा और डरावने रास्ते में उन्हें अपनी बुद्धि और विवेक पर भरोसा नहीं होता था। यहाँ तर्क और मुक्ति को भी उनसे हार माननी पड़ती थी। इस मैदान में वे अपने घर की स्त्रियों की इच्छा पूरी करना ही अपना कर्तव्य समझते थे और चाहे उन्हें खुद किसी मामले में कुछ एतराज भी हो लेकिन यह औरतों का मामला था और इसमें वे हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे क्योंकि इससे परिवार की व्यवस्था में हलचल और गड़बड़ी पैदा हो जाने की जबर्दस्त आशंका रहती थी। अगर किसी वक्त उनके कुछ जोशीले नौजवान दोस्त इस कमजोरी पर उन्हें आड़े हाथों लेते तो वे बड़ी बुद्धिमत्ता से कहा करते थे—भई, यह औरतों के मामले हैं उनका जैसा दिल चाहता है करती हैं मैं बोलनेवाला कौन हूँ। गरज यहाँ उनकी फौजी गर्म-मिजाजी उनका साथ छोड़ देती थी। यह उनके लिए तिलिस्म की घाटी थी जहाँ होश-हवास बिगड़ जाते थे और अन्धे अनुकरण का पैर बँधी हुई गर्दन पर सवार हो जाता था।

लेकिन यह ललकार सुनकर वे अपने को काबू में न रख सके।-यही वह मौका था जब उनकी हिम्मतें आसमान पर जा पहुँचती थीं। जिस बीड़े को कोई न उठाए उसे उठाना उनका काम था। वर्जनाओं से उनको आत्मिक प्रेम था। ऐसे मौके पर वे नतीजे और मसलहत से बगावत कर जाते थे और उनके इस हौसले में यश के लोभ को उतना दखल नहीं था जितना उनके नैसर्गिक स्वभाव को। वर्ना यह असम्भव था कि एक ऐसे जलसे में जहाँ ज्ञान और सभ्यता की धूमधाम थी, जहाँ सोने की ऐनकों से रोशनी और तरह-तरह के परिधानों से दीप्त चिन्तन की किरणें निकल रही थीं जहाँ कपड़े लत्ते की नफासत से रोब और मोटापे से प्रतिष्ठा की झलक आती थी, वहाँ एक देहाती किसान को जबान खोलने का हौसला होता। ठाकुर ने इस दृश्य को गौर और दिलचस्पी से देखा। उसके पहलू में गुदगुदी-सी हुई। जिन्दादिली का जोश रगों में दौड़ा। वह अपनी जगह से उठा और मर्दाना लहजे में ललकार कर बोला—मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ और मरते दम तक उस पर कायम रहूँगा।

:: 6 ::

इतना सुनना था कि दो हजार औंखें अचम्भे से उसकी तरफ ताकने लगीं। सुभानअल्लाह क्या हुलिया था—गाढ़े की ढीली मिर्जई, घुटनों तक चढ़ी हुई धोती, सर पर एक भारी-सा उलझा हुआ साफा, कन्धे पर चुनौटी और तम्बाकू का वजनी बठुआ, मगर चेहरे से गम्भीरता और दृढ़ता स्पष्ट थी। गर्व आँखों के तंग घेर से बाहर निकल पड़ता था। उसके दिल में अब इस शानदार मजमे की इज्जत बाकी न रही थी। वह पुराने वक्तों का आदमी था जो अगर पत्थर को पूजता था तो उसी पत्थर से डरता भी था, जिसके लिए एकादशी का व्रत केवल स्वास्थ्य-रक्षा की एक मुक्ति और गंगा केवल स्वास्थ्यप्रद पानी की एक धारा न थी। उसके विश्वासों में जागृति न हो लेकिन दुविधा नहीं थी। यानी कि उसकी कथनी और करनी में अनार न था और उसकी बुनियाद कुछ अनुकरण और देखादेखी पर थी मगर अधिकांशत: भय पर जो ज्ञान के आलोक के बाद वृतियों के संस्कार की सबसे बड़ी शक्ति है। गेरुए बाने का आदर और भक्ति करना उसके धर्म और विश्वास का एक अंग था। संन्यास में उसकी आत्मा को अपना अनुचर बनाने की एक सजीव शक्ति छिपी हुई थी और उस ताकत

ने अपना असर दिखाया। लेकिन मजमे की इस हैरत ने बहुत जल्द मजाक की सूरत अख्तियार की। मतलब-भरी निगाहें आपस में कहने लगी—आखिर गँवार ही तो ठहरा! देहाती है ऐसे भाषण कभी काहे को सुने होंगे बस उबल पड़ा। उथले गठुए में इतना पानी भी समा सका! कौन नहीं जानता ऐसे भाषणों का उद्देश्य मनोरंजन होता है! दस आदमी आए इकट्ठे बैठे, कुछ सुना, कुछ गप शप मारी और अपने-अपने घर लौटे न यह कि कौल-करार करने बैठें अमल करने के लिए कसमें खाएँ!

मगर निराश संन्यासी सोच रहा था—अफसोस, जिस मुल्क की रोशनी में इतना अंधेरा है वहाँ कभी रोशनी का उदय होना मुश्किल नजर आता है। इस रोशनी पर इस अँधेरी, मुर्दा और बेजान रोशनी पर मैं जहालत को अज्ञान को ज्यादा ऊँची जगह देता हूँ। अज्ञान में सफाई है और हिम्मत है उसके दिल और जबान में पर्दा नहीं होता, न कथनी और करनी में विरोध। क्या यह अफसोस की बात नहीं है कि ज्ञान अज्ञान के आगे सिर झुकाए? इस सारे मजमे में सिर्फ एक आदमी है जिसके पहलू में मर्दों का दिल है और गो उसे बहुत सजग होने का दावा नहीं लेकिन मैं उसके अज्ञान पर ऐसी हजारों जागतियों को कुर्बान कर सकता हूँ। तब वह प्लेटफार्म से नीचे उतरे और-दर्शनसिंह को गले से लगाकर कहा-ईश्वर तुम्हें प्रतिज्ञा पर कायम रखे।

–जमाना अगस्त-सितम्बर *1913*

नेकी

सावन का महीना था। रेवती रानी ने पाँव में मेहंदी रचाई, माँग-चोटी सँवारी और तब अपनी बूढ़ी सास से जाकर बोली—अम्माँजी, आज मैं भी मेला देखने जाऊँगी।

रेवती पण्डित चिन्तामणि की पत्नी थी। पण्डितजी ने सरस्वती की पूजा में ज्यादा लाभ न देखकर लक्ष्मीदेवी की पूजा करनी शुरू की थी। लेन-देन का कारोबार करते थे मगर और महाजनों के विपरीत खास-खास हालतों के सिवा पच्चीस फीसदी से ज्यादा सूद लेना उचित न समझते थे।

रेवती की सास एक बच्चे के गोद में लिये खटोले पर बैठी थी। बहू की बात सुनकर बोली —भीग जाओगी तो बच्चे को जुकाम हो जाएगा।

रेवती-नहीं अम्माँ मुझे देर न लगेगी अभी चली जाऊँगी।

रेवती के दो बच्चे थे—एक लड़का, दूसरी लड़की। लड़की अभी गोद में थी और लड़का हीरामन सातवें साल में था। रेवती ने उसे अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाए। नजर लगने से बचाने के लिए माथे और गालों पर काजल के टीके लगा दिए गुड़ियाँ पीटने के लिए एक अच्छी रंगीन छड़ी दे दी और अपनी सहेलियों के साथ मेला देखने चली।

कीरत सागर के किनारे औरतों का बड़ा जमघट था। नील! घटाएँ छाई हुई थीं। औरतें सोलह सिंगार किए सागर के खुले हुए हरे-भरे सुन्दर मैदान में सावन की रिमझिम वर्षा की बहार लूट रही थीं। शाखों में झूले पड़े थे। कोई झूला झूलती, कोई मल्हार गाती, कोई सागर के किनारे बैठी लहरों से खेलती। ठंडी-ठंडी खुशगवार पानी की हलकी-हलकी फुहार, पहाड़ियों की निखरी हुई हरियावल लहरों के दिलकश झकोले मौसम को ऐसा बना रहे थे कि उसमें संयम टिक न पाता था।

आज गुड़ियों की विदाई है। गुड़ियाँ अपनी ससुराल जाएंगी। कुँवारी लड़कियाँ हाथ-पाँव में मेहंदी रचाए गुड़ियों को गहने-कपड़े से सजाए उन्हें विदा करने आई हैं। उन्हें पानी में बहाती हैं और छकछककर सावन के गीत गाती हैं। मगर सुख-चैन के आँचल से निकलते ही इन लाड़-प्यार में पली हुई गुड़ियों पर चारों तरफ से छड़ियों और लकड़ियों की बौछार होने लगती है।

रेवती यह सैर देख रही थी और हीरामन सागर की सीढ़ियों पर और लड़कियों के साथ गुड़ियाँ पीटने में लगा हुआ था। सीढ़ियों पर काई लगी हुई थी। अचानक उसका पाँव फिसला तो पानी में जा पड़ा। रेवती चीख मारकर दौड़ी और सर पीटने लगी। दम के दम में वहाँ मर्दों और औरतों का ठठ लग गया मगर यह किसी की इन्सानियत तकाजा न करती थी कि पानी में जाकर मुमकिन हो तो बच्चे की जान बचाए। सँवारे हुए बाल न बिखर जाएँगे! धुली हुई धोती न भीग जाएगी! कितने ही मर्दो के दिलों में यह मर्दाना खयाल आ रहे थे। दस मिनट गुजर गए। मगर कोई आदमी हिम्मत करता नजर न आया। गरीब रेवती पछाड़ें खा रही थी। अचानक उधर से एक आदमी अपने घोड़े पर सवार चला जाता था। यह भीड़ देखकर उतर पड़ा और एक तमाशाई से पूछा-यह कैसी भीड़ है? तमाशाई ने जवाब दिया—एक लड़का डूब गया है।

मुसाफिर—कहाँ?

तमाशाई—जहाँ वह औरत खड़ी रो रही है।

मुसाफिर ने फौरन अपनी गाढ़े की मिर्जई उतारी और धोती कसकर पानी में कूद पड़ा। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। लोग हैरान थे कि यह आदमी कौन है। उसने पहला गोता लगाया, लड़के की टोपी मिली। दूसरा गोता लगाया तो उसकी छड़ी हाथ लगी और तीसरे गोते के बाद जब ऊपर आया तो लड़का उसकी गोद में था। तमाशाइयों ने जोर से वाह-वाह का नारा बुलन्द किया। माँ दौड़कर बच्चे से लिपट गई। इसी बीच पण्डित चिन्तामणि के और कई मित्र आ पहुँचे और लड़के को होश में लाने की फिक्र करने लगे। आधे घण्टे में लड़के ने आँखेखोल दीं। लोगों की जान में जान आई। डॉक्टर साहब ने कहा—अगर लड़का दो मिनट पानी में रहता तो बचना असम्भव था। मगर जब लोग अपने गुमनाम भलाई करनेवाले को ढूँढने लगे तो उसका कहीं पता न था। चारों तरफ आदमी दौडाए सारा मेला छान मारा, मगर वह नजर न आया।

:: 2 ::

बीस साल गुजर गए। पण्डित चिन्तामणि का कारोबार रोज-ब-रोज बढ़ता गया। इस बीच में उसकी माँ ने सातों यात्राएँ कीं और मरी तो उनके नाम पर ठाकुरद्वारा तैयार हुआ। रेवती बहू से सास बनी लेन-देन, बहीखाता हीरामणि के हाथ में आया। हीरामणि अब एक हृष्ट-पुष्ट लम्बा-तड़ंगा नौजवान था—बहुत अच्छे स्वभाव का नेक। कभी-कभी बाप से छिपाकर गरीब असामियों को यों ही कर्ज दे दिया करता। चिन्तामणि ने कई बार इस अपराध के लिए बेटे को आँखें दिखाई थीं और अलग कर देने की धमकी दी थी। हीरामणि ने एक बार एक संस्कृत पाठशाला के लिए पचास रुपया चन्दा दिया। पण्डितजी उस पर ऐसे कुद्ध हुए कि दो दिन तक खाना नहीं खाया। ऐसे अप्रिय प्रसग आए दिन होते रहते थे इन्हीं कारणों से हीरामणि की तबीयत बाप से कुछ खिंची रहती थी। मगर उसकी यह सारी शरारतें हमेशा रेवती की साजिश से हुआ करती थीं। जब कस्बे की गरीब विधवाएँ या जमींदार के सताए हुए असामियों की औरतें रेवती के पास आकर हीरामणि को चल फैला-फैलाकर दुआएँ देने लगतीं तो उसे ऐसा मालूम होता कि मुझसे ज्यादा भाग्यवान और मेरे बेटे से ज्यादा नेक आदमी दुनिया में कोई न होगा। तब उसे बरबस वह दिन याद आ जाता जब हीरामणि कीरत सागर में डूब गया था और उस आदमी की तसवीर उनकी आँखों के सामने खड़ी हो जाती जिसने उसके लाल को डूबने से बचाया था। उसके दिल की गहराई से दुआ निकलती और ऐसा जी चाहता कि उसे देख पाती तो उसके पाँव पर गिर पड़ती। उसे अब पक्का विश्वास हो गया था कि वह मनुष्य न था बल्कि कोई देवता था। वह अब उसी खटोले पर बैठी हुई, जिस पर उसकी सास बैठती थी अपने दोनों पोतों को खिलाया करती थी।

आज हीरामणि की सत्ताईसवीं सालगिरह थी। रेवती के लिए यह दिन सालभर के दिनों में सबसे अधिक शुभ था। आज उसका दया का हाथ खूब उदारता दिखलाता था और यही एक अनुचित खर्च था जिसमें पण्डित चिन्तामणि भी शरीक हो जाते थे। आज के दिन वह

बहुत खुश होती और बहुत रोती और आज अपने गुमनाम भलाई करनेवाले के लिए उसके दिल से जो दुआएँ निकलतीं वह दिल और दिमाग की अच्छी से अच्छी भावनाओं में रंगी होती थीं। उसी दिन की बदौलत तो आज मुझे यह दिन और यह सुख देखना नसीब हुआ है!

:: 3 ::

एक दिन हीरामणि ने आकर रेवती से कहा—अम्माँ, श्रीपुर नीलाम पर चढ़ा हुआ है कहो तो मैं भी दाम लगाऊँ?

रेवती—सोलहों आना है?

हीरामणि—सोलहों आना। अच्छा गाँव है। न बड़ा न छोटा। यहाँ से दस कोस है। बीस हजार तक बोली चढ़ चुकी है। सौ-दो सौ में खत्म हो जाएगा।

रेवती—अपने दादा से तो पूछो?

हीरामणि—उनके साथ दो घंटे तक माथापच्ची करने की किसे फुरसत है।

हीरामणि अब घर का मालिक हो गया था और चिन्तामणि की एक न चलने पाती। वह गरीब अब ऐनक लगाए एक गद्दे पर बैठे अपना वक्त खाँसने में खर्च करते थे।

दूसरे दिन हीरामणि के नाम पर श्रीपुर खत्म हो गया। महाजन से जमींदार हुए अपने मुनीम और दो चपरासियों को लेकर गाँव की सैर करने चले। श्रीपुर वालों को खबर हुई। नए जमींदारों का पहला आगमन था। घर-घर नजराने देने की तैयारियाँ होने लगीं। पाँचवें दिन शाम के वक्त हीरामणि गाँव मे' दाखिल हुए। दही और चावल का तिलक लगाया गया और तीन सौ असामी पहर रात तक हाथ बाँधे हुए उनकी सेवा में खड़े रहे। सवेरे मुजारे आम ने असामियों का परिचय कराना शुरू किया। जो असामी जमींदार के सामने आता वह अपनी बिसात के मुताबिक एक या दो रुपये उनके पाँव पर रख देता। दोपहर होते-होते वहाँ पाँच सौ रुपये का ढेर लगा हुआ था।

हीरामणि को पहली बार जमींदारी का मजा मिला, पहली बार धन और बल का नशा महसूस हुआ। सब नशों से ज्यादा तेज ज्यादा घातक धन का नशा है। जब असामियों की फेहरिस्त खत्म हो गई तो मुख्तार से बोले—और कोई असामी तो बाकी नहीं है?

मुख्तार—हाँ महाराज, अभी एक असामी और है तखतसिंह।

हीरामणि—वह क्यों नहीं आया?

मुख्तार—जरा मस्त है।

हीरामणि—मैं उसकी मस्ती उतार दूँगा। जरा कोई उसे बुला लाए।

थोड़ी देर में एक आ आदमी लाठी टेकता हुआ आया और दण्डवत करके जमीन पर बैठ गया, न नजर न नियाज। उसकी यह गुस्ताखी देखकर हीरामणि को बुखार चढ़ आया। कड़ककर बोले—अभी किसी जमींदार से पाला नहीं पड़ा है। एक-एक की हेकड़ी भुला दूँगा।

तखतसिंह ने हीरामणि की तरफ गौर से देखकर जवाब दिया—मेरे सामने बीस जमींदार आए और चले गए मगर कभी किसी ने इस तरह जुड़की नहीं दी।

यह कहकर उसने लाठी उठाई और अपने घर चला आया।

बूढ़ी ठकुराइन ने पूछा—देखा जमींदार को, कैसे आदमी हैं?

तखतसिंह—अच्छे आदमी हैं। मैं उन्हें पहचान गया।

ठकुराइन—क्या तुमसे पहले की मुलाकात है?

तखतसिंह—मेरी उनकी बीस बरस की जान-पहचान है। गुड़ियों के मेलेवाली बात याद है न ?

उस दिन से तखतसिंह फिर हीरामणि के पास न आया।

:: 4 ::

छ: महीने के बाद रेवती को भी श्रीपुर देखने का शौक हुआ। वह और उसकी बहू और बच्चे सब श्रीपुर आए। गाँव की सब औरतें उनसे मिलने आईं। उनमें बूढ़ी ठकुराइन भी थी। उसकी बातचीत, सलीका और तमीज देखकर रेवती दंग रह गई। जब वह चलने लगी तो रेवती ने कहा—ठकुराइन, कभी-कभी आया करना, तुमसे मिलकर तबीयत बहुत खुश हुई।

इस तरह दोनों औरतों में धीरे-धीरे मेल हो गया। यहाँ तो यह कैफियत थी और हीरामणि अपने मुजारे आम के बहकावे में आकर तखतसिंह को बेदखल करने की तरकीबें सोच रहा था।

जेठ की पूरनमासी आई। हीरामणि की सालगिरह की तैयारियाँ होने लगीं। रेवती चलनी में मैदा छान रही थी कि बूढ़ी ठकुराइन आई। रेवती ने मुस्कराकर कहा—ठकुराइन, हमारे यहाँ कल तुम्हारा न्योता है।

ठकुराइन—तुम्हारा न्योता सिर-आँखों पर। कौन-सी बरसगाँठ है?

रेवती—उनतीसवीं।

ठकुराइन—नरायन करे अभी ऐसे-ऐसे सौ दिन तुम्हें और देखने नसीब हों। रेवती-ठकुराइन, तुम्हारी जबान मुबारक हो। बड़े-बड़े जन्तर-मन्तर किए हैं तब तुम लोगों की दुआ से यह दिन देखना नसीब हुआ है। यह तो सातवें ही साल में थे कि इनकी जान के लाले पड़ गए। गुड़ियों का मेला देखने गई थी। यह पानी में गिर पड़े। बारे एक महात्मा ने इनकी जान बचाई। इनकी जान उन्हीं की दी हुई है। बहुत तलाश करवाया। उनका पता न चला। हर बरस गाँठ पर उनके नाम से सौ रुपये निकाल रखती हूँ। दो हजार से कुछ ऊपर हो गए हैं। बच्चे की नीयत है कि उनके नाम से श्रीपुर में एक मन्दिर बनवा दें। सच मानो ठकुराइन, एक बार उनके दर्शन हो जाते तो जीवन सुफल हो जाता, जी की हवस निकाल लेते।

रेवती जब खामोश हुई तो ठकुराइन की आँखों से आँसू जारी थे।

दूसरे दिन एक तरफ हीरामणि की सालगिरह का उत्सव था और दूसरी तरफ तखतसिंह के खेत नीलाम हो रहे थे।

ठकुराइन बोली—मैं रेवती रानी के पास जाकर दुहाई मचाती हूँ।

तखतसिंह ने जवाब दिया—मेरे जीते जी नहीं।

:: 5 ::

आषाढ़ का महीना आया। मेघराज ने अपनी प्राणदायी उदारता दिखाई। श्रीपुर के किसान अपने-अपने खेत जोतने चले। तखतसिंह की लालसाभरी आँखें उनके साथ-साथ जातीं यहाँ तक कि जमीन उन्हें अपने दामन में छिपा लेती।

तखतसिंह के पास एक गाय थी। वह अब दिन के दिन उसे चराया करता। उसकी जिन्दगी का अब यही एक सहारा था। उसके उपले और दूध बेचकर गुजर-बसर करता। कभी-कभी फाके करने पड़ जाते। यह सब मुसीबतें उसने झेलीं मगर अपनी कंगाली का रोना रोने के लिए एक दिन भी हीरामणि के पास न गया। हीरामणि ने उसे नीचा दिखाना चाहा था मगर खुद उसे ही नीचा देखना पड़ा, जीतने पर भी उसे हार हुई, पुराने लोहे को अपने नीचे हठ की आँच से न झुका सका।

एक दिन रेवती ने कहा-बेटा, तुमने गरीब को सताया, अच्छा न किया। हीरामणि ने तेज होकर जवाब दिया-वह गरीब नहीं है। उसका घमण्ड मैं तोड़ दूँगा।

दौलत के नशे में मतवाला जमींदार वह चीज तोड़ने की फिक्र में था जो कहीं थी ही नहीं। जैसे नासमझ बच्चा अपनी परछाईं से लड़ने लगता है।

:: 6 ::

सालभर तखतसिंह ने ज्यों-त्यों करके काटा। फिर बरसात आई। उसका घर छाया न गया था। कई दिन तक मूसलाधार मेह बरसा तो मकान का एक हिस्सा गिर पड़ा। गाय वहाँ बँधी हुई थी, दबकर मर गई। तखतसिंह को सख्त चोट आई। उसी दिन से बुखार आना शुरू हुआ। दवा-दारू कौन करता, रोजी का सहारा था वह भी टूटा। जालिम बेदर्द मुसीबत ने कुचल डाला। सारा मकान पानी से भरा हुआ, घर में अनाज का दाना नहीं अँधेरे में पड़ा हुआ कराह रहा था कि रेवती उसके घर गई। तखतसिंह ने आखें खोलीं और पूछा—कौन है?

ठकुराइन—रेवती रानी हैं।

तखतसिंह—मेरे धन्य भाग, मुझ पर बड़ी दया की।

रेवती ने लज्जित होकर कहा—ठकुराइन, ईश्वर जानता है मैं अपने बेटे से हैरान हूँ। तुम्हें जो तकलीफ हो मुझसे कहो। तुम्हारे ऊपर ऐसी आफत पड़ गई और हमको खबर तक न की?

यह कहकर रेवती ने रुपयों की एक छोटी-सी पोटली ठकुराइन के सामने रख दी।

रुपयों की झनकार सुनकर तखतसिंह उठ बैठा और बोला—रानी, हम इसके भूखे नहीं हैं। मरते दम गुनहगार न करो।

दूसरे दिन हीरामणि भी अपने मुसाहिबों को लिये उधर से जा निकला। गिरा हुआ मकान देखकर मुस्कराया। उसके दिल ने कहा, आखिर मैंने उसका घमण्ड तोड़ दिया। मकान के अन्दर जाकर बोला—ठाकुर, अब क्या हाल है?

ठाकुर ने धीरे से कहा—सब ईश्वर की दया है, आप कैसे भूल पड़े

हीरामणि को दूसरी बार हार खानी पड़ी। उसकी यह आरजू कि तखतसिंह मेरे पाँव को आँखों से चूमे, अब भी पूरी न हुई। उसी रात को गरीब, आजाद, ईमानदार और बेगरज

ठाकुर इस दुनिया से विदा हो गया।

:: 7 ::

बूढ़ी ठकुराइन अब दुनिया में अकेली थी। कोई उसके गम का शरीक और उसके मरने पर आँसू बहानेवाला न था। कंगाली ने गम की अचि और तेज कर दी थी। जरूरत की चीजें मौत के घाव को चाहे न भर सकें मगर मरहम का काम जरूर करती हैं।

रोटी की चिन्ता बुरी बला है। ठकुराइन अब खेत और चरागाह से गोबर चुन लाती और उपले बनाकर बेचती। उसे लाठी टेकते हुए खेतों को जाते और गोबर का टोकरा सिर पर रखकर बोझ से हाँफते हुए आते देखना बहुत ही दर्दनाक था। यहाँ तक कि हीरामणि को भी उस पर तरस आ गया। एक दिन उन्होंने आटा, दाल, चावल थालियों में रखकर उसके पास भेजा। रेवती खुद लेकर गई। मगर बूढ़ी ठकुराइन आँखों में आँसू भरकर बोली—रेवती, जब तक आँखों से सूझता है और हाथ-पाँव चलते हैं मुझे और मरने वाले को गुनहगार न करो।

उस दिन से हीरामणि को फिर उसके साथ अमली हमदर्दी दिखलाने का साहस न हुआ।

एक दिन रेवती ने ठकुराइन से उपले मोल लिये। गाँव में पैसे के तीस उपले बिकते थे। उसने चाहा कि इससे बीस ही उपले लूँ। उस दिन से ठकुराइन ने उसके यहाँ उपले लाना बन्द कर दिया।

ऐसी देवियाँ दुनिया में कितनी हैं! क्या वह इतना न जानती थी कि एक गुप्त रहस्य जबान पर लाकर मैं अपनी इन तकलीफों का खात्मा कर सकती हूँ! मगर फिर वह एहसान का बदला न हो जाएगा! मसल मशहूर है नेकी कर और दरिया में डाल। शायद उसके दिल में कभी यह खयाल ही न आया कि मैंने रेवती पर कोई एहसान किया।

यह वजादार, आन पर मरनेवाली औरत पति के मरने के बाद तीन साल तक जिन्दा रही। यह जमाना उसने जिस तकलीफ से काटा उसे याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कई-कई दिन निराहार बीत जाते। कभी गोबर न मिलता, कभी कोई उपले चुरा ले जाता। ईश्वर की मर्जी! किसी का घर भरा हुआ है खानेवाले नहीं। कोई यों रो-रोकर जिन्दगी काटता है।

बुढ़िया ने यह सब दुःख झेला मगर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया।

:: 8 ::

हीरामणि की तीसवीं सालगिरह आई। ढोल की सुहानी आवाज सुनाई देने लगी। एक तरफ घी की पूड़ियाँ पक रही थीं दूसरी तरफ तेल की। घी की मोटे ब्राह्मणों के लिए तेरा की गरीब भूखे नीचों के लिए।

अचानक एक औरत ने रेवती से आकर कहा—ठकुराइन जाने कैसी हुई जाती हैं। तुम्हें बुला रही हैं।

रेवती ने दिल में कहा—आज तो खैरियत से काटना, कहीं बुढ़िया मर न रही हो।

यह सोचकर वह बुढ़िया के पास न गई। हीरामणि ने जब देखा, अम्मा नहीं जाना

चाहतीं तो खुद चला। ठकुराइन पर उसे कुछ दिनों से दया आने लगी थी। मगर रेवती मकान के दरवाजे तक उसे मना करने आई। यह रहमदिल, नेक-मिजाज शरीफ रेवती थी।

हीरामणि ठकुराइन के मकान पर पहुँचा तो वहाँ विल्कुल सन्नाटा छाया हुआ था। बूढ़ी औरत का चेहरा पीला था और जान निकलने की हालत उस पर छाई हुई थी। हीरामणि ने जोर से कहा—ठकुराइन, मैं हूँ, हीरामणि।

ठकुराइन ने आँखें खोलीं और इशारे से उसे अपना सिर नजदीक लाने को कहा, फिर रुक-रुककर बोली—मेरे सिरहाने पिटारी में ठाकुर की हड्डियाँ रखी हुई हैं मेरे सुहाग का सिंदूर भी वहीं है। यह दोनों प्रयागराज भेज देना।

यह कहकर उसने आँखें बन्द कर लीं। हीरामणि ने पिटारी खोली तो दोनों चीजें हिफाजत के साथ रखी हुई थीं। एक पोटली में दस रुपये भी रखे हुए मिले। यह शायद जानेवाले का सफर खर्च था!

रात को ठकुराइन के कष्टों का हमेशा के लिए अन्त हो गया।

उसी रात को रेवती ने सपना देखा—सावन का मेला है घटाएँ छाई हुई हैं मैं कीरत सागर के किनारे खड़ी हूँ। इतने में हीरामणि पानी में फिसल पड़ा। मैं छाती पीट-पीटकर रोने लगी। अचानक एक आ आदमी पानी में कूदा और हीरामणि को निकाल लाया। रेवती उसके पाँव पर गिर पड़ी और बोली—आप कौन हैं।

उसने जवाब दिया—मैं श्रीपुर में रहता हूँ मेरा नाम तखतसिंह है।

श्रीपुर अब भी हीरामणि के कब्जे में है मगर अब उसकी रौनक दोबाला हो गई है। वहाँ जाओ तो दूर से शिवाले का सुनहरा कलश दिखाई देने लगता है; जिस जगह तखतसिंह का मकान था, वहाँ यह शिवाला बना हुआ है। उसके सामने एक पक्का कुआँ और पक्की धर्मशाला है। मुसाफिर यहाँ ठहरते हैं और तखतसिंह का गुन गाते हैं। यह शिवाला और धर्मशाला दोनों उसके नाम से मशहूर हैं।

– उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

बाँका जमींदार

ठाकुर प्रद्युम्नसिंह एक प्रतिष्ठित वकील थे और अपने हौसले और हिम्मत के लिए सारे शहर में मशहूर। उनके दोस्त अक्सर कहा करते कि अदालत की इजलास में उनके मर्दाना कमाल ज्यादा साफ तरीके पर जाहिर हुआ करते हैं। इसी की बरकत थी कि बावजूद इसके कि उन्हें शायद ही कभी किसी मामले में सुर्खरूई हासिल होती थी। उनके मुवक्किलों की भक्ति-भावना में जर्रा भर भी फर्क नहीं आता था। इन्साफ की कुर्सी पर बाका बैठनेवाले बड़े लोगों की निडर आजादी पर किसी प्रकार का सन्देह करना पाप ही क्यों न हो, मगर शहर के जानकार लोग ऐलानिया कहते थे कि ठाकुर साहब जब किसी मामले में जिद पकड़ लेते हैं तो उनका बदला हुआ तेवर और तमतमाया हुआ चेहरा इन्साफ को भी अपने वश में कर लेता है। एक से ज्यादा मौकों पर उनके जीवट और जिगर ने वे चमत्कार कर दिखाए थे जहाँ कि इन्साफ और कानून ने जवाब दे दिया।

इसके साथ ही ठाकुर साहब मर्दाना गुणों के सच्चे जौहरी थे। अगर मुवक्किल को कुश्ती में कुछ पैठ हो तो यह जरूरी नहीं था कि वह उनकी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए रुपया-पैसा दे। इसलिए उनके यहाँ शहर के पहलवानों और फेकैतों का हमेशा जमघट रहता था और यही वह जबर्दस्त प्रभावशाली और व्यावहारिक कानूनी बारीकी थी जिसकी काट करने में इन्साफ को भी आगा-पीछा सोचना पड़ता। वे गर्व और सच्चे गर्व की दिल से कदर करते थे। उनके बेतकल्लुफ घर की ड्योढ़याँ बहुत ऊँची थीं। वहाँ झुकने की जरूरत न थी। इन्सान खूब सिर उठाकर जा सकता था। यह एक विश्वस्त कहानी है कि एक बार उन्होंने किसी मुकदमे को बावजूद बहुत विनती और आग्रह के हाथ में लेने से इनकार किया। मुवक्किल कोई अक्खड़ देहाती था। उसने जब आरजू-मिन्नत से काम निकलते न देखा तो हिम्मत से काम लिया। वकील साहब कुर्सी से नीचे गिर पड़े और बिफरे हुए देहाती को सीने से लगा लिया।

:: 2 ::

धन और धरती के बीच आदिकाल से एक आकर्षण है। धरती में साधारण गुरात्वाकर्षण के अलावा एक खास ताकत होती है जो हमेशा धन को अपनी तरफ खींचती है। सूद और तमत्सुक और व्यापार, यह दौलत की बीच की मंजिलें हैं, जमीन उसकी आखिरी मंजिल है। ठाकुर प्रद्युम्नसिंह की निगाहें बहुत अर्से से एक बहुत उपजाऊ मौजे पर लगी हुई थीं। लेकिन बैंक का एकाउण्ट कभी हौसले को कदम नहीं बढ़ाने देता था। यहाँ तक कि एक दफा उसी मौजे का जमींदार एक कल्ल के मामले में पकड़ा गया। उसने सिर्फ रस्मो-रिवाज के माफिक एक असामी को दिनभर धूप और जेठ की जलती हुई धूप मे खड़ा रखा था लेकिन अगर सूरज की गर्मी या जिस्म की कमजोरी या प्यास की तेजी उसकी जानलेवा बन जाए तो इसमें जमींदार की क्या खता थी। यह शहर के वकीलों की ज्यादती थी कि कोई उसकी हिमायत पर आमादा न हुआ या मुमकिन है जमींदार के हाथ की तंगी को भी उसमें कुछ

दखल हो।

बहरहाल, उसने चारों तरफ से ठोकरें खाकर ठाकुर साहब की शरण ली। मुकदमा निहायत कमजोर था। पुलिस ने अपनी पूरी ताकत से धावा किया था और उसकी कुकुक के लिए शासन और अधिकार के ताजे से ताजे रिसाले तैयार थे। ठाकुर साहब अनुभवी सपेरों की तरह साँप के बिल में हाथ नहीं डालते थे लेकिन इस मौके पर उन्हें रूखी-सूखी मसलहत के मुकाबले में अपनी मुरादों का पल्ला झुकता हुआ नजर आया। जमींदार को इत्मीनान दिलाया और वकालतनामा दाखिल कर दिया और फिर इस तरह जी-जान से मुकदमे की पैरवी की, कुछ इस तरह जान लड़ाई कि मैदान से जीत का डंका बजाते हुए निकले। जनता की जबान इस जीत का सेहरा उनकी कानूनी पैठ के सर नहीं, उनके मर्दाना गुणों के सर रखती है क्योंकि उन दिनों वकील साहब नजीरों और दफाओं की हिम्मत तोड़ पेचीदगियों में उलझने के बजाय दंगल की उत्साहवर्धक दिलचस्पियों में ज्यादा लगे रहते थे लेकिन यह बात जरा भी यकीन करने के काबिल नहीं मालूम होती।

ज्यादा जानकार लोग कहते हैं कि अनार के बम गोलों और सेब और अंगूर की गोलियों ने पुलिस के इस पुरशोर हमले को तोड़कर बिखेर दिया। गरज कि मैदान हमारे ठाकुर साहब के हाथ रहा। जमींदार की जान बची। मौत के मुँह से निकल आया। उनके पैरों पर गिर पड़ा और बोला—ठाकुर साहब, मैं इस काबिल तो नहीं कि आपकी खिदमत कर सकूँ। ईश्वर ने आपको बहुत कुछ दिया है लेकिन कृष्ण भगवान् ने गरीब सुदामा के सूखे चावल खुशी से कबूल किए थे। मेरे पास बुजुर्गों की यादगार एक छोटा-सा वीरान मौजा है, उसे आपकी भेंट करता हूँ। आपके लायक तो नहीं लेकिन मेरी खातिर से इसे कबूल कीजिए। मैं आपका जस कभी न भूलूंगा। वकील साहब भड़क उठे। दो-चार बार निस्पृह बैरागियों की तरह इनकार करने के बाद इस भेंट को कबूल कर लिया, मुँहमाँगी मुराद मिली।

:: 3 ::

इस मौजे के लोग बेहद सरकश और झगड़ालू थे जिन्हें इस बात का गर्व था कि कभी कोई जमींदार उन्हें बस में नहीं कर सका। लेकिन जब उन्होंने अपनी बागडोर प्रद्युम्नसिंह के हाथों में जाते देखी तो चौकड़ियाँ भूल गए एक बदलगाम घोड़े की तरह सवार को कनखियों से देखा, कनौतियाँ खड़ी कीं, कुछ हिनहिनाए और तब गर्दनें झुका दीं। समझ गए कि यह जिगर का मजबूत और आसन का पक्का शहसवार है।

आषाढ़ का महीना था। किसान गहने और बर्तन बेच-बेचकर बैलों की तलाश में दर-ब-दर फिरते थे। गाँवों की छुट्टी बनियाइन नवेली दुलहन बनी हुई थी और फाका करनेवाला कुम्हार बरात का दूल्हा था। मजदूर मौके के बादशाह बने हुए थे। टपकती हुई छतें उनकी कृपादृष्टि की राह देख रही थीं। घास से ढके हुए खेत उनके ममतापूर्ण हाथों के मुहताज। जिसे चाहते थे बसाते थे, जिसे चाहते उजाड़ते थे। आम और जामुन के पेड़ों पर आठों पहर निशानेबाज मनचले लडुकों का धावा रहता था। बूढ़े गर्दनों में झोलियाँ लटकाए पहर रात से टपके की खोज में घूमते नजर आते थे जो बुढ़ापे के बावजूद भोजन और जाप से ज्यादा दिलचस्प और मजेदार काम था। नाले पुरशोर, नदियाँ अथाह, चारों तरफ हरियाली और

खुशहाली। इन्हीं दिनों ठाकुर साहब मौत की तरह, जिसके आने के पहले से कोई सूचना नहीं होती, गाँव में आए। एक सजी हुई बरात थी, हाथी और घोड़े और साज-सामान, लठैतों का एक रिसाला-सा था। गाँव ने यह तूमतड़ाक और आन-बान देखी तो रहे-सहे होश उड़ गए। घोड़े खेतों में ऐंडने लगे और गुंडे गलियों में। शाम के वक्त ठाकुर साहब ने अपने असामियों को बुलाया और बुलंद आवाज में बोले—मैंने सुना है कि तुम लोग बड़े सरकश हो और मेरी सरकशी का हाल तुमको मालूम ही है। अब ईंट और पत्थर का सामना है। बोलो, क्या मंजूर है?

एक बूढ़े किसान ने बेद के पेड़ की तरह काँपते हुए जवाब दिया—सरकार, आप हमारे राजा हैं। हम आपसे ऐंठकर कहाँ जाएँगे।

ठाकुर साहब तेवर बदलकर बोले—तो तुम लोग सब के सब कल सुबह तक तीन साल का पेशगी लगान दाखिल कर दो और खूब ध्यान देकर सुन लो कि मैं हुक्म को दुहराना नहीं जानता वर्ना मैं गाँव में हल चलवा दूँगा और घरों को खेत बना दूँगा।

सारे गाँव में कोहराम मच गया। तीन साल का पेशगी लगान और इतनी जल्दी जुटाना असम्भव था। रात इसी हैस-बैस में कटी। अ भी तक आरजू-मिन्नत के बिजली जैसे असर की उम्मीद बाकी थी। सुबह बड़ी इंतजार के बाद आई तो प्रलय बनकर आई। एक तरफ तो जोर-जबर्दस्ती और अन्याय-अत्याचार का बाजार गर्म था, दूसरी तरफ रोती हुई आखों सर्द आहों और चीख-पुकार का, जिन्हें सुननेवाला कोई न था। गरीब किसान अपनी-अपनी पोटलियाँ लादे, बेकस अंदाज से ताकते आखों में याचना भरे बीवी-बच्चों को साथ लिये रोते-बिलखते किसी अज्ञात देश को चले जाते थे। शाम हुई तो गाँव उजड़ गया था।

:: 4 ::

यह खबर बहुत जल्द चारों तरफ फैल गई। लोगों को ठाकुर साहब के इंसान होने पर संदेह होने लगा। गाँव वीरान पड़ा हुआ था। कौन उसे आबाद करे। किसके बच्चे उसकी गलियों में खेलें। किसकी औरतें कुओं पर पानी भरें। राह चलते मुसाफिर तबाही का यह दृश्य आँखों से देखते और अफसोस करते। नहीं मालूम उस वीराने देश में पड़े हुए गरीबों पर क्या गुजरी। आज, जो मेहनत की कमाई खाते थे और सर उठाकर चलते थे, अब दूसरों की गुलामी कर रहे हैं।

इस तरह एक पूरा साल गुजर गया। तब गाँव के नसीब जागे। जमीन उपजाऊ थी, मकान मौजूद। धीरे-धीरे जुल्म की यह दास्तान फीकी पड गई। मनचले किसानों की लोभ-दृष्टि उस परं पड़ने लगी। बला से जमींदार जालिम है बेरहम है, सख्तियाँ करता है, हम उसे मना लेंगे। तीन साल की पेशगी लगान का क्या जिक्र वह जैसे खुश होगा, खुश करेंगे। उसकी गालियों को दुआ समझेंगे, उसके जूते अपने सिर-आँखों पर रखेंगे। वह राजा हैं, हम उनके चाकर हैं। जिन्दगी की कशमकश और लड़ाई में आत्मसम्मान को निबाहना कैसा मुश्किल काम है! दूसरा आषाढ़ आया तो वह गाँव फिर बगीचा बना हुआ था। बच्चे फिर अपने दरवाजों पर घरौंदे बनाने लगे, मर्दों के बुलन्द आवाज के गाने खेतों में सुनाई दिए व औरतों के सुहाने गीत चक्कियों पर। जिन्दगी के मोहक दृश्य दिखाई देने लगे।

सालभर और गुजरा। जब रबी की दूसरी फसल आई तो सुनहरी बालों को खेतों में लहराते देखकर किसानों के दिल लहराने लगते थे। साल भर की परती जमीन ने सोना उगल दिया था। औरतें खुश थीं कि अब की नए-नए गहने बनवाएँगे, मर्द खुश थे कि अच्छे-अच्छे बैल मोल लेंगे और दारोगा जी की खुशी का तो अंत ही न था। ठाकुर साहब ने यह खुशखबरी सुनी और देहात की सैर को चले। वही शान-शौकत, वही लठैतों का रिसाला, वही गुंडों की फौज! गाँववालों ने उनके आदर-सत्कार की तैयारियाँ करनी शुरू कीं। मोटे-ताजे बकरों का एक पूरा गल्ला चौपाल के दरवाजे पर बाँधा। लकड़ी के अम्बार लगा दिए दूध के हौज भर दिए। ठाकुर साहब गाँव की मेड पर पहुँचे तो पूरे एक सौ आदमी उनकी अगवानी के लिए हाथ बाँधे खड़े थे। लेकिन पहली चीज जिसकी फरमाइश हुई वह लेमनेड और बर्फ था। असामियों के हाथों के तोते उड़ गए। यह पानी की बोतल इस वक्त वहाँ अमृत के दामों बिक सकती थी। मगर बेचारे देहाती अमीरों के चोंचले क्या जानें। मुजरिमों की तरह सिर झुकाए भौचक खड़े थे। चेहरों पर झेंप और शर्म थी। दिलों में धड़कन और भय। ईश्वर! बात बिगड़ गई है अब तुम्हीं सम्हालो।

बर्फ की ठंडक न मिली तो ठाकुर साहब की प्यास की आग और भी तेज हुई, गुस्सा भड़क उठा, कड़ककर बोले—मैं शैतान नहीं हूँ कि बकरों के खून से प्यास बुझाऊँ, मुझे ठंडी बर्फ चाहिए और प्यास तुम्हारे और तुम्हारी औरतों के आँसुओं से ही बुझेगी। एहसानफरामोश, नीच, मैंने तुम्हें जमीन दी, मकान दिए और हैसियत दी, और इसके बदले में तुम ये दे रहे हो कि मैं खड़ा पानी को तरसता हूँ! तुम इस काबिल नहीं हो कि तुम्हारे साथ कोई रियायत की जाय। कल शाम तक मैं तुममें से किसी आदमी की सूरत इस गाँव में न देखूँ वर्ना प्रलय हो जाएगी। तुम जानते हो कि मुझे अपना हुक्म दुहराने की आदत नहीं है। रात तुम्हारी है जो कुछ ले जा सको, ले जाओ। लेकिन शाम को मैं किसी की मनहूस सूरत न देखूँ। यह रोना और चीखना फिजूल है मेरा दिल पत्थर का है और कलेजा लोहे का, ओसुओं से नहीं पसीजता।

और ऐसा ही हुआ। दूसरी रात को सारे गाँव में कोई दीया जलानेवाला तक न रहा। फूलता-फलता गाँव भूत का डेरा बन गया।

:: 5 ::

बहुत दिनों तक यह घटना आसपास के मनचले किस्सागोइयों के लिए दिलचस्पियों का खजाना बनी रही। एक साहब ने उस पर अपनी कलम भी चलाई। बेचारे ठाकुर साहब ऐसे बदनाम हुए कि घर से निकलना मुश्किल हो गया। बहुत कोशिश की कि गाँव आबाद हो जाए लेकिन किसकी जान भारी थी कि इस अंधेर नगरी में कदम रखता जहाँ मोटापे की सजा फाँसी थी। कुछ मजूदरी-पेशा लोग किस्मत का जुआ खेलने आए मगर कुछ महीनों से ज्यादा न जम सके। उजड़ा हुआ गाँव खोया हुआ एतबार है जो बहुत मुश्किल से जमता है। आखिर जब कोई बस न चला तो ठाकुर साहब ने मजबूर होकर आराजी माफ करने का आम ऐलान कर दिया लेकिन इस रियायत ने रही-सही साख भी खो दी। इस तरह तीन साल गुजर जाने के बाद एक रोज वहाँ बंजारों का काफिला आया। शाम हो गई थी और

पूरब की तरफ से अँधेरे की लहर बढ़ती चली आती थी। बंजारों ने देखा तो सारा गाँव वीरान पड़ा हुआ है, जहाँ आदमियों के घरों में गिद्ध और गीदड़ रहते थे। इस तिलिस्म का भेद समझ में न आया। मकान मौजूद हैं जमीन उपजाऊ है, हरियाली से लहराते हुए खेत हैं और इन्सान का नाम नहीं! कोई और गाँव पास न था। वहीं पड़ाव डाल दिया। जब सुबह हुई, बैलों के गलों की घंटियों ने फिर अपना रजत-संगीत अलापना शुरू किया और काफिला गाँव से कुछ दूर निकल गया तो एक चरवाहे ने जोर-जबर्दस्ती की यह लंबी कहानी उन्हें सुनाई। दुनियाभर में घूमने-फिरने ने उन्हें मुश्किलों का आदी बना दिया था। आपस में कुछ मशवरा किया और फैसला हो गया। ठाकुर साहब की ड्योढ़ी पर जा पहुँचे और नजराने दाखिल कर दिए। गाँव फिर आबाद हुआ।

यह बंजारे बला के चीमड़, लोहे की-सी हिम्मत और इरादे के लोग थे जिनके आते ही गाँव में लक्ष्मी का राज हो गया। फिर घरों में से धुएँ के बादल उठे, कोल्हाड़ों ने फिर धुएँ और भाप की चादरें पहनीं, तुलसी के चबूतरे पर फिर से चिराग जले। रात को रंगीन तबियत नौजवानों की अलापे सुनाई देने लगीं। चरागाहों में फिर मवेशियों के गल्ले दिखाई दिए और किसी पेड़ के नीचे बैठे हुए चरवाहों की बाँसुरी की मद्धिम और रसीली आवाज दर्द और असर में डूबी हुई इस प्राकृतिक दृश्य में जादू का आकर्षण पैदा करने लगी।

भादों का महीना था। कपास के फूलों की सुर्ख और सफेद चिकनाई, तिल की ऊदी बहार और सन का शोख पीलापन अपने रूप का जलवा दिखाता था। किसानों की मड़ैयों और छप्परों पर भी फल-फूल की रंगीनी दिखाई देती थी। उस पर पानी की हलकी-हलकी फुहारें प्रकृति के सौंदर्य के लिए सिंगार करनेवाली का काम दे रही थीं। जिस तरह साधुओं के दिल सत्य की ज्योति से भरे होते है, उसी तरह सागर और तालाब साफ-शफ्लाक पानी से भरे थे। शायद राजा इन्द्र कैलाश की तरावटभरी ऊँचाइयों से उतरकर अब मैदानों में आनेवाले थे। इसलिए प्रकृति ने सौंदर्य और सिद्धियों और आशाओं के भी भण्डार खोल दिए थे। वकील साहब को भी सैर को तमन्ना ने गुदगुदाया, हमेशा की तरह अपने रईसाना ठाठ-बाट के साथ गाँव में आ पहुँचे। देखा तो संतोष और निश्चिन्तता के वरदान चारों तरफ स्पष्ट थे।

:: 6 ::

गाँववालों ने उनके शुभागमन का समाचार सुना, सलाम को हाजिर हुए। वकील साहब ने अच्छे-अच्छे कपड़े पहने, स्वाभिमान के साथ कदम मिलाते हुए देखा। उनसे बहुत मुस्कराकर मिले। फसल का हालचाल पूछा। बूढ़े हरदास ने एक ऐसे लहजे में जिससे पूरी जिम्मेदारी और चौधरापे की शान टपकती थी, जवाब दिया—हुजूर के कदमों की बरकत से सब चैन है। किसी तरह की तकलीफ नहीं। आपकी दी हुई नेमत खाते हैं और आपका जस गाते हैं। हमारे राजा और सरकार जो कुछ हैं आप हैं और आपके लिए जान तक हाजिर है।

ठाकुर साहब ने तेवर बदलकर कहा—मैं अपनी खुशामद सुनने का आदी नहीं हू।

बूढ़े हरदास के माथे पर बल पड़े, अभिमान को चोट लगी। बोला—मुझे भी खुशामद करने की आदत नहीं है।

ठाकुर साहब ने ऐंठकर जवाब दिया—तुम्हें रईसों से बात करने की तमीज नहीं। ताकत की तरह तुम्हारी अख भी बुढ़ापे की भेंट चढ़ गई।

हरदास ने अपने साथियों की तरफ देखा। गुस्से की गर्मी से सबकी ओखें फैली हुईं और धीरज की सर्दी से माथे सिकुड़े हुए थे। बोला—हम आपकी रैयत हैं लेकिन हमको अपनी आबरू प्यारी है और चाहे अपने जमींदार को अपना सिर दे दें, आबरू नहीं दे सकते।

हरदास के कई मनचले साथियों ने बुलंद आवाज में ताईद की—आबरू जान के पीछे है।

ठाकुर साहब के गुस्से की आग भड़क उठी और चेहरा लाल हो गया। वे जोर से बोले—तुम लोग जबान संभालकर बातें करो वर्ना जिस तरह गले में झोलियाँ लटकाए आए थे उसी तरह निकाल दिए जाओगे। मैं प्रद्युम्नसिंह हूँ जिसने तुम जैसे कितने ही हेकड़ों को इसी जगह कुचलवा डाला है। यह कहकर उन्होंने अपने रिसाले के सरदार अर्जुनसिंह को बुलाकर कहा—ठाकुर, अब इन चींटियों के पर निकल आए हैं, कल शाम तक इन लोगों से मेरा गाँव साफ हो जाए।

हरदास खड़ा हो गया। गुस्सा अब चिनगारी बनकर आखों से निकल रहा था। बोला—हमने इस गाँव को छोड़ने के लिए नहीं बसाया है। जब तक जिएंगे इसी गाँव में रहेंगे, यहीं पैदा होंगे और यहीं मरेंगे। आप बड़े आदमी हैं और बड़ों की समझ भी बड़ी होती है। हम लोग अक्खड़ गँवार हैं। नाहक गरीबों की जान के पीछे न पड़िए। खून-खराबा हो जाएगा। लेकिन आपको यही मंजूर है तो हमारी तरफ से आपके सिपाहियों को चुनौती है जब चाहे दिल से अरमान निकाल लें।

इतना कहकर ठाकुर साहब को सलाम किया और चल दिया। उसके साथी भी गर्व के साथ अकड़ते हुए चले। अर्जुनसिंह ने उनके तेवर देखे। समझ गया कि वह लोहे के चने हैं लेकिन शोहदों का सरदार था, कुछ अपने नाम की लाज थी। दूसरे दिन शाम के वक्त जब रात और दिन में मुठभेड़ हो रही थी, इन दोनों जमातों का सामना हुआ। फिर वह धौल-धप्पा हुआ कि जमीन धरा गई। जबानों ने मुँह के अन्दर वह मार्क दिखाए कि सूरज डर के मारे पच्छिम में जा छिपा। तब लाठियों ने सिर उठाया लेकिन इसके पहले कि वह डाक्टर साहब की दुआ और शुक्रिये की मुस्तहक हों, अर्जुनसिंह ने समझदारी से काम लिया। ताहम उनके चन्द आदमियों के लिए गुड़ और हल्दी पीने का सामान हो चुका था।

वकील साहब ने अपनी फौज की यह बुरी हालत देखी, किसी के कपड़े फटे हुए किसी के जिस्म पर गर्द जमी हुई, कोई हाँफते-हाँफते बेदम (खून बहुत कम नजर आया क्योंकि यह एक अनमोल चीज है और इसे डंडों की मार से बचा लिया गया) तो उन्होंने अर्जुनसिंह की पीठ ठोकी और उसकी बहादुरी और जांबाजी की खूब तारीफ की। रात को उनके सामने लड्डू और इमरतियों की ऐसी वर्षा हुई कि यह सब गर्द-गुबार धुल गया। सुबह को इस ने ठंडे-ठंडे घर की राह ली और कसम खा गए कि अब भूलकर भी इस गाँव का रुख न करेंगे।

तब ठाकुर साहब ने गाँव के आदमियों को चौपाल में तलब किया। उनके इशारे की देर थी। सब लोग इकट्ठे हो गए। अख्तियार और हुकूमत अगर घमंड की मसनद से उतर आएँ तो दुश्मनों को भी दोस्त बना सकती हैं। जब सब आदमी आ गए तो ठाकुर साहब एक-एक करके उनसे बगलगीर हुए और बोले—मैं ईश्वर का बहुत ऋणी हूँ कि मुझे इस गाँव के लिए जिन आदमियों की तलाश थी, वह लोग मिल गए। आपको मालूम है कि यह गाँव कई बार

उजड़ा और कई बार बसा। उसका कारण यही था कि वे लोग मेरी कसौटी पर पूरे न उतरते थे। मैं उनका दुश्मन नहीं था लेकिन मेरी दिली आरजू यह थी कि इस गाँव में वे लोग आबाद हों जो जुल्म का मर्दों की तरह सामना करें जो अपने अधिकारों और रियायतों की मर्दों की तरह हिफाजत करें, जो हुकूमत के गुलाम न हों जो रोब और अख्तियार की तेज निगाह देखकर बच्चों की तरह डर से सहम न जाएँ। मुझे इत्मीनान है कि बहुत नुकसान और शर्मिन्दगी और बदनामी के बाद मेरी तमन्नाएं पूरी हो गईं। मुझे इत्मीनान है कि आप उलटी हवाओं और ऊँची-ऊँची उठनेवाली लहरों का मुकाबला कामयाबी से करेंगे। मैं आज इस गाँव से अपना हाथ खींचता हूँ। आज से यह आपकी मिल्कियत है। आप ही इसके जमींदार और मालिक हैं। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि आप फूले और सरसब्ज हों।

इन शब्दों ने दिलों पर जादू का काम किया। लोग स्वामिभक्ति के आवेश से मस्त हो-होकर ठाकुर साहब के पैरों से लिपट गए और कहने लगे—हम आपके कदमों से जीते-जी जुदा न होंगे। आपका-सा कद्रदान और रिआया—परवर बुजुर्ग हम कहाँ पाएँगे। वीरों की भक्ति और सहानुभूति, वफादारी और एहसान का एक बड़ा दर्दनाक और असर पैदा करने वाला दृश्य आँखों के सामने पेश हो गया। लेकिन ठाकुर साहब अपने उदार निश्चय पर दृढ़ रहे और गो पचास साल से ज्यादा गुजर गए हैं लेकिन उन्हीं बंजारों के वारिस अभी तक मौजा साहबगंज के माफीदार हैं। औरतें अभी तक ठाकुर प्रद्युम्नसिंह की पूजा और मन्नतें करती हैं और गो अब इस मौजे के कई नौजवान दौलत और हुकूमत की बुलंदी पर पहुँच गए हैं लेकिन बूढ़े और अक्खड़ हरदास के नाम पर अब भी गर्व करते हैं और भादों सुदी एकादशी के दिन अब भी उसी मुबारक फतेह की यादगार में जश्न मनाए जाते हैं।

– जमाना, अक्टूबर,*1913*

अनाथ लड़की

सेठ पुरुषोत्तमदास पूना की सरस्वती पाठशाला का मुआयना करने के बाद बाहर निकले तो एक लड़की ने दौड़कर उनका दामन पकड़ लिया। सेठजी रुक गए और मुहब्बत से उसकी तरफ देखकर पूछा—तुम्हारा क्या नाम ?

लड़की ने जवाब दिया—रोहिणी।

सेठजी ने उसे गोद में उठा लिया और बोले—तुम्हें कुछ इनाम मिला?

लड़की ने उनकी तरफ बच्चों जैसी गम्भीरता से देखकर कहा—तुम चले जाते हो, ल उनाथ रोना आता है मुझे भी साथ लेते चलो।

सेठजी ने हँसकर कहा—मुझे बड़ी दूर जाना है, तुम कैसे चलोगी

रोहिणी ने प्यार से उनकी गर्दन में हाथ डाल

दिए और बोली—जहाँ तुम जाओगे वहीं मैं भी चलूँगी। मैं तुम्हारी बेटी दूंगी।

मदरसे के अफसर ने आगे बढ़कर कहा—इसका बाप सालभर हुआ नहीं रहा। माँ कपड़े सीती है बड़ी मुश्किल से गुजर होती है।

सेठजी के स्वभाव में करुणा बहुत थी। यह सुनकर उनकी आँखें भर आई। उस भोली प्रार्थना में वह दर्द था जो पत्थर-से दिल को पिघला सकता है। बेकसी और यतीमी को इससे ज्यादा दर्दनाक ढंग से जाहिर करना नामुमकिन था। उन्होंने सोचा—इस नन्हे-से दिल में न जाने क्या-क्या अरमान होंगे। और लड़कियाँ अपने खिलौने दिखाकर कहती होंगी यह मेरे बाप ने दिया है। वह अपने बाप के साथ मदरसे आती होंगी उसके साथ मेलों में जाती होंगी और उनकी दिलचस्पियों का जिक्र करती होंगी। यह सब बातें सुन-सुनकर इस भोली लड़की को भी ख्वाहिश होती होगी कि मेरे बाप होता। माँ की मुहब्बत में गहराई और आत्मिकता होती है जिसे बच्चे समझ नहीं सकते। बाप की मुहब्बत में खुशी और चाव होता है जिसे बच्चे समझ नहीं सकते।

सेठजी ने रोहिणी को प्यार से गले लगा लिया और बोले—अच्छा, मैं तुम्हें अपनी बेटी बनाऊँगा। लेकिन खूब जी लगाकर पढ़ना। अब छुट्टी का वक्त आ गया है मेरे साथ आओ, तुम्हारे घर पहुँचा दूँ।

यह कहकर उन्होंने रोहिणी को अपनी मोटरकार में बिठा लिया। रोहिणी ने बड़े इत्मीनान और बड़े गर्व से अपनी सहेलियों की तरफ देखा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें खुशी से चमक रही थीं और चेहरा चाँदनी रात की तरह खिला हुआ था।

:: 2 ::

सेठजी ने रोहिणी को बाजार की खूब सैर कराई और कुछ उसकी आँखे से, कुछ अपनी प संद से बहुत-सी चीजें खरीदीं यहाँ तक कि रोहिणी बातें करते-करते कुछ थक-सी गई और खामोश हो गई। उसने इतनी चीजें देखीं और इतनी बातें सुनीं कि उसका जी भर गया। शाम होते-होते रोहिणी के घर पहुँचे और मोटरकार से उतरकर रोहिणी को अब कुछ

आराम मिला। दरवाजा बद था। उसकी माँ किसी ग्राहक के घर कपड़े देने गई थी। रोहिणी ने अपने तोहफों को उलटना-पलटना शुरू किया—खूबसूरत रबड़ के खिलौने, चीनी की गुड़ियाँ जरा दबाने से चू-चू करने लगतीं और रोहिणी यह प्यारा संगीत सुनकर फूली न समाती थी। रेशमी कपड़े और रंग-बिरंगी साड़ियों के कई बंडल थे लेकिन मखमली बूटे की गुलकारियों ने उसे खूब लुभाया था। उसे उन चीजों के पाने की जितनी खुशी थी, उससे ज्यादा उन्हें अपनी सहेलियों को दिखाने की बेचैनी थी। सुन्दरी के जूते अच्छे सही लेकिन उनमें ऐसे फूल कहाँ हैं। ऐसी गुड़ियाँ उसने कभी देखी भी न होंगी। इन खयालों से उसके दिल में उमंग भर आई और वह अपनी मोहिनी आवाज में एक गीत गाने लगी। सेठजी दरवाजे पर खड़े इस पवित्र दृश्य का हार्दिक आनन्द उठा रहे थे। इतने में रोहिणी की माँ रुक्मिणी कपड़ों की पोटली लिये हुए आती दिखाई दी। रोहिणी ने खुशी से पागल होकर एक छलांग भरी और उसके पैरों से लिपट गई। रुक्मिणी का चेहरा पीला था, ओखों में हसरत और बेकसी छिपी हुई थी, गुप्त चिंता का सजीव चित्र मालूम होती थी, जिसके लिए जिन्दगी में कोई सहारा नहीं।

मगर रोहिणी को जब उसने गोद में उठाकर प्यार से चूमा तो जरा देर के लिए उसकी आँखों में उम्मीद और जिन्दगी की झलक दिखाई दी। मुरझाया हुआ फूल खिल गया। बोली—आज तू इतनी देर तक कहाँ रही, मैं तुझे ढूँढने पाठशाला गई थी।

रोहिणी ने हुमककर कहा—मैं मोटरकार पर बैठकर बाजार गई थी। वहाँ से बहुत अच्छी-अच्छी चीजें लाई हूँ। वह देखो कौन खड़ा है?

माँ ने सेठजी की तरफ ताका और लजाकर सिर झुका लिया।

बरामदे में पहुँचते ही रोहिणी माँ की गोद से उतरकर सेठजी के पास गई और अपनी माँ को यकीन दिलाने के लिए भोलेपन से बोली—क्यों तुम मेरे बाप हो न? सेठजी ने उसे प्यार करके कहा—हाँ, तुम मेरी प्यारी बेटी हो।

रोहिणी ने उनके मुँह की तरफ याचना-भरी आँखों से देखकर कहा—अब तुम रोज यहीं रहा करोगे?

सेठजी ने उसके बाल सुलझाकर जवाब दिया—मैं यहाँ रहूँगा तो काम कौन करेगा? मैं कभी-कभी तुम्हें देखने आया करूँगा, लेकिन वहाँ से तुम्हारे लिए अच्छी-अच्छी चीजें भेजूँगा।

रोहिणी कुछ उदास-सी हो गई। इतने में उसकी माँ ने मकान का दरवाजा खोला और बड़ी फुर्ती से मैले बिछावन और फटे हुए कपड़े समेटकर कोने में डाल दिए कि कहीं सेठजी की निगाह उन पर न पड़ जाए। यह स्वाभिमान स्त्रियों की खास अपनी चीज है।

रुक्मिणी अब इस सोच में पड़ी थी कि मैं इनकी क्या खातिर तवाजो करूँ। उसने सेठजी का नाम सुना था, उसका पति हमेशा उनकी बड़ाई किया करता था। वह उनकी दया और उदारता की चर्चाएँ अनेक बार सुन चुकी थी। वह उन्हें अपने मन का देवता समझा करती थी। उसे क्या उम्मीद थी कि कभी उसका घर भी उनके कदमों से रोशन होगा। लेकिन आज जब वह शुभ दिन संयोग से आया तो वह इस काबिल भी नहीं कि उन्हें बैठने के लिए एक मोड़ा दे सके। घर में पान और इलायची भी नहीं। वह अपने आँसुओं को किसी तरह न रोक सकी।

आखिर जब अँधेरा हो गया और पास के ठाकुरद्वारे से घण्टों और नगाड़ों की आवाजें आने लगीं तो उन्होंने जरा ऊँची आवाज में कहा—बाईजी, अब मैं जाता हूँ। मुझे अभी यहाँ बहुत काम करना है। मेरी रोहिणी को कोई तकलीफ न हो। मुझे जब मौका मिलेगा, उसे देखने आऊँगा। उसके पालने-पोसने का काम मेरा है और मैं उसे बहुत खुशी से पूरा करूँगा। उसके लिए अब तुम कोई फिक्र मत करो। मैंने उसका वजीफा बाँध दिया है और यह उसकी पहली किस्त है।

यह कहकर उन्होंने अपना खूबसूरत बटुआ निकाला और रुक्मिणी के सामने रख दिया। गरीब औरत की आँखों से आँसू जारी थे। उसका जी बरबस चाहता था कि उनके पैरों को पकड़कर खूब रोए। आज बहुत दिनों के बाद एक सच्चे हमदर्द की आवाज उसके कान में आई थी।

जब सेठजी चले तो उसने दोनों हाथों से प्रणाम किया। उसके हृदय की गहराइयों से प्रार्थना निकली—आपने एक बेबस पर दया की है ईश्वर आपको इसका बदला दे।

दूसरे दिन रोहिणी पाठशाला गई तो उसकी बांकी सज-धज आँखों में खुब जाती थी। उस्तानियों ने उसे बारी-बारी प्यार किया और उसकी सहेलियाँ उसकी एक-एक चीज को आश्चर्य से देखती और ललचाती थीं। अच्छे कपड़ों में कुछ स्वाभिमान का अनुभव होता है। आज रोहिणी वह गरीब लड़की न रही जो दूसरों की तरफ विवश नेत्रों से देखा करती थी। आज उसकी एक-एक क्रिया से शैशवोचित गर्व और चंचलता टपकती थी और उसकी जबान एक दम के लिए भी न रुकती थी। कभी मोटर की तेजी का जिक्र था, कभी बाजार की दिलचस्पियों का बयान, कभी अपनी गुड़ियों के कुशल-मंगल की चर्चा थी और कभी अपने बाप की मुहब्बत की दास्तान। दिल था कि उमंगों से भरा हुआ था।

एक महीने के बाद सेठ पुरुषोत्तमदास ने रोहिणी के लिए फिर तोहफे और रुपये रवाना किए। बेचारी विधवा को उनकी कृपा से जीविका की चिन्ता से छुट्टी मिली। वह भी रोहिणी के साथ पाठशाला आती और दोनों माँ-बेटी एक ही दरजे में साथ-साथ पड़ती लेकिन रोहिणी का नम्बर हमेशा माँ से अव्वल रहा। सेठजी जब पूना की तरफ से निकलते तो रोहिणी को देखने जरूर आते और उनका आगमन उसकी प्रसन्नता और मनोरंजन के लिए महीनों का सामान इकट्ठा कर देता।

इसी तरह कई साल गुजर गए और रोहिणी ने जवानी के सुहाने हरे-भरे मैदान में पैर रखा, जबकि बचपन की भोली-भाली अदाओं में एक खास मतलब और इरादों का दखल हो जाता है।

रोहिणी अब आन्तरिक और बाह्य सौन्दर्य में अपनी पाठशाला की नाक थी। हाव-भाव में आकर्षक, गम्भीरता, बातों में गीत का-सा खिंचाव और गीत का-सा आत्मिक रस था। कपड़ों में रंगीन सादगी, आँखों में लाज-संकोच, विचारों में पवित्रता। जवानी थी मगर घमण्ड और बनावट और चंचलता से मुक्ता। उसमें एक एकाग्रता थी जो ऊँचे इरादों से पैदा होती है। स्त्रियोचित उत्कर्ष की मंजिलें वह धीरे-धीरे तय करती चली जाती थी 1

सेठजी के बड़े बेटे नरोत्तमदास कई साल तक अमेरिका और जर्मनी की युनिवर्सिटियों की खाक छानने के बाद इंजीनियरिंग विभाग में कमाल हासिल करके वापस आए थे। अमेरिका के सबसे प्रतिष्ठित कॉलेज में उन्होंने सम्मान का पद प्राप्त किया था। अमेरिका के अखबार एक हिन्दोस्तानी नौजवान की इस शानदार कामयाबी पर चकित थे। उन्हीं का स्वागत करने के लिए बम्बई में एक बड़ा जलसा किया गया था। इस उत्सव में शरीक होने के लिए लोग दूर-दूर से आए थे। सरस्वती पाठशाला को भी निमन्त्रण मिला और रोहिणी को सेठानीजी ने विशेष रूप से आमन्त्रित किया। पाठशाला में हफ्तों तैयारियाँ हुईं। रोहिणी को एक दम के लिए भी चैन न था। यह पहला मौका था कि उसने अपने लिए बहुत अच्छे-अच्छे कपड़े बनवाए। रंगों के चुनाव में वह मिठास थी, काट-छाँट में वह फबन जिससे उसकी सुन्दरता चमक उठी। सेठानी कौशल्या देवी उसे लेने के लिए रेलवे स्टेशन पर मौजूद थीं। रोहिणी गाड़ी से उतरते ही उनके पैरों की तरफ झुकी लेकिन उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और इस तरह प्यार किया कि जैसे वह उनकी बेटी है। वह उसे बार-बार देखती थीं और आँखों से गर्व और प्रेम टपका पड़ता था।

इस जलसे के लिए ठीक समुन्दर के किनारे एक हरे-भरे सुहाने मैदान में एक लंबा-चौड़ा शामियाना लगाया गया था। एक तरफ आदमियों का समुद्र उमड़ा हुआ था, दूसरी तरफ समुद्र की लहरें उछल रही थीं गोया वह भी इस खुशी में शरीक थीं।

जब उपस्थित लोगों ने रोहिणी बाई के आने की खबर सुनी तो हजारों आदमी उसे देखने के लिए खड़े हो गए। यही तो वह लड़की है जिसने अबकी शास्त्री की परीक्षा पास की है। जरा उसके दर्शन करने चाहिए। अब भी इस देश की स्त्रियों में ऐसे रतन मौजूद हैं। भोले-भाले देशप्रेमियों में इस तरह की बातें होने लगीं। शहर की कई प्रतिष्ठित महिलाओं ने आकर रोहिणी को गले लगाया और आपस में उसके सौन्दर्य और उसके कपड़ों की चर्चा होने लगी।

आखिर मिस्टर पुरुषोत्तमदास तशरीफ लाए। हालर्घक वह बड़ा शिष्ट और गम्भीर उत्सव था लेकिन उस वक्त दर्शन की उत्कण्ठा पागलपन की हद तक जा पहुँची थी। एक भगदड़-सी मच गई। कुर्सियों की कतारें गड़बड़ हो गई। कोई कुर्सी पर खड़ा हुआ, कोई उसके रूत्थों पर। कुछ मनचले लोगों ने शामियाने की रस्सियाँ पकड़ी और उन पर जा लटके। कई मिनट तक यही तूफान मचा रहा। कहीं कुर्सियाँ टूटीं, कहीं कुर्सियाँ उलटीं कोई किसी के ऊपर गिरा, कोई नीचे। ज्यादा तेज लोगों में धौल-धष्पा होने लगा।

तब बीन की सुहानी आवाजें आने लगीं। रोहिणी ने अपनी मण्डली के साथ देश-प्रेम में डूबा हुआ गीत शुरू किया। सारे उपस्थित लोग बिलकुल शान्त थे और उस समय वह सुरीला राग, उसकी कोमलता और स्वच्छता, उसकी प्रभावशाली मधुरता, उसकी उत्साहभरी वाणी दिलों पर वह नशा-सा पैदा कर रही थी जिससे प्रेम की लहरें उठती हैं जो दिल से बुराइयों को मिटाता है और जिससे जिन्दगी की हमेशा याद रहनेवाली यादगारें पैदा हो जाती हैं। गीत बन्द होने पर तारीफ की एक आवाज न आई। वही तानें कानों में अब तक गूँज रही थीं।

गाने के बाद विभिन्न संस्थाओं की तरफ से अभिनन्दन पेश हुए और तब नरोत्तमदास लोगों को धन्यवाद देने के लिए खड़े हुए। लेकिन उनके भाषण से लोगों को थोड़ी निराशा

हुई। यों दोस्तों की मण्डली में उनकी बकता के आवेग और प्रवाह की कोई सीमा न थी लेकिन सार्वजनिक सभा के सामने खड़े होते ही शब्द और विचार दोनों ही उनसे बेवफाई कर जाते थे। उन्होंने बड़ी मुश्किल से धन्यवाद के कुछ शब्द कहे और तब अपनी योग्यता की लच्छित स्वीकृति के साथ अपनी जगह पर आ बैठे। कितने ही लोग उनकी योग्यता पर ज्ञानियों की तरह सिर हिलाने लगे।

अब जलसा खत्म होने का वक्त आया। वह रेशमी हार जो सरस्वती पाठशाला की ओर से भेजा गया था, मेज पर रखा हुआ था। उसे हीरो के गले में कौन डाले? प्रेसिडेंट ने महिलाओं की पंक्ति की ओर नजर दौड़ाई। चुकनेवाली आँख रोहिणी पर पड़ी और ठहर गई। उसकी छाती धड़ूकने लगी। लेकिन उत्सव के सभापति के आदेश का पालन आवश्यक था। वह सर झुकाए हुए मेज के पास आई और काँपते हुए हाथों से हार को उठा लिया। एक क्षण के लिए दोनों की आँखें मिलीं और रोहिणी ने नरोत्तमदास के गले में हार डाल दिया।

दूसरे दिन सरस्वती पाठशाला के मेहमान विदा हुए लेकिन कौशल्या देवी ने रोहिणी को न जाने दिया। बोलीं—अभी तुम्हें देखने से जी नहीं भरा, तुम्हें यहाँ एक हफ्ता रहना होगा। आखिर मैं भी तो तुम्हारी माँ हूँ। एक माँ से इतना प्यार और दूसरी माँ से इतना अलगाव!

रोहिणी कुछ जवाब न दे सकी।

यह सारा हफ्ता कौशल्या देवी ने उसकी विदाई की तैयारियों में खर्च किया। सातवें दिन उसे विदा करने के लिए स्टेशन तक आई। चलते वक्त उससे गले मिलीं और बहुत कोशिश करने पर भी आँसुओं को न रोक सकीं। नरोत्तमदास भी आए थे। उनका चेहरा उदास था। कौशल्या ने उनकी तरफ सहानुभूतिपूर्ण आँखों से देखकर कहा—मुझे यह तो खयाल ही न रहा, रोहिणी क्या यहाँ से पूना तक अकेली जाएगी? क्या हर्ज है तुम्हीं चले जाओ, शाम की गाड़ी से लौट आना।

नरोत्तमदास के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई, जो इन शब्दों में न छिप सकी-अच्छा, मैं ही चला जाऊँगा। वह इस फिक्र में थे कि देखें विदाई की बातचीत का मौका भी मिलता है या नहीं। अब वह खूब जी भरकर अपना दर्दे दिल सुनाएँगे और मुमकिन हुआ तो उस लाज-संकोच को, जो उदासीनता के परदे में छिपी हुई है मिटा देंगे।

:: 4 ::

रुक्मिणी को अब रोहिणी की शादी की फिक्र पैदा हुई। पड़ोस की औरतों में इसकी चर्चा होने लगी थी। लड़की इतनी सयानी हो गई है, अब क्या बुढ़ापे में ब्याह होगा? कई जगह से बात आई, उनमें कुछ बड़े प्रतिष्ठित घराने थे। लेकिन जब रुक्मिणी उन पैगामों को सेठजी के पास भेजती तो वे यही जवाब देते कि मैं खुद फिक्र में हूँ। रुक्मिणी को उनकी यह टाल-मटोल बुरी मालूम होती थी।

रोहिणी को बम्बई से लौटे महीनाभर हो चुका था कि एक दिन वह पाठशाला से लौटी तो उसे अपनी अम्मा की चारपाई पर एक खत पड़ा हुआ मिला। रोहिणी पढ़ने लगी, लिखा था—बहन, जब से मैंने तुम्हारी लडकी को बम्बई में देखा है मैं उस पर रीझ गई हूँ। अब उसके बगैर मुझे चैन नहीं हे। क्या मेरा भाग्य ऐसा होगा कि वह मेरी बहू बन सके? मैं

गरीब हूँ लेकिन मैंने सेठजी को राजी कर लिया है। तुम भी मेरी यह विनती कबूल करो। मैं तुम्हारी लड़की को चाहे फूलों की सेज पर न सुला सकूँ, लेकिन इस घर का एक-एक आदमी उसे आँखों की पुतली बनाकर रखेगा। अब रहा लड़का। माँ के मुँह से लड़के का बखान कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। लेकिन यह कह सकती हूँ कि परमात्मा ने यह जोड़ी अपने हाथों से बनाई है। सूरत में स्वभाव में विद्या में हर दृष्टि से वह रोहिणी के योग्य है। तुम जैसे चाहे अपना इत्मीनान कर सकती हो। जवाब जल्द देना और ज्यादा क्या लिखूँ। नीचे थोड़े से शब्दों में सेठजी ने उस पैगाम की सिफारिश की थी।

रोहिणी गालों पर हाथ रखकर सोचने लगी। नरोत्तमदास की तसवीर उसकी आखों के सामने आ खड़ी हुई। उनकी वह प्रेम की बातें जिनका सिलसिला बम्बई से पूना तक नहीं टूटा था, कानों में गूँजने लगीं। उसने एक ठण्डी साँस ली और उदास होकर चारपाई पर लेट गई।

:: 5 ::

सरस्वती पाठशाला में एक बार फिर सजावट और सफाई के दृश्य दिखाई दे रहे हैं। आज रोहिणी की शादी का शुभ दिन है। शाम का वक्त, वसना का सुहाना मौसम, पाठशाला के दरो-दीवार मुस्करा रहे हैं और हरा-भरा बगीचा फूला नहीं समाता।

चन्द्रमा अपनी बरात लेकर पूरब की तरफ से निकला। उसी वक्त मंगलाचरण का सुहाना राग उस रूपहली चाँदनी और हलके-हलके हवा के झोंकों में लहरें मारने लगा। दूल्हा आया, उसे देखते ही लोग हैरत में आ गए 1 यह नरोत्तमदास थे।

दूल्हा मण्डप के नीचे गया। रोहिणी की माँ अपने को रोक न सकी, वह उसी वक्त जाकर सेठजी के पैरों पर गिर पडी। रोहिणी की अस्त्रों से प्रेम और आनन्द के आँसू बहने लगे।

मण्डप के नीचे हवन-कुण्ड बना हुआ था। हवन शुरू हुआ, खुशबू की लपटें हवा में उठीं और सारा मैदान महक गया। लोगों के दिलो-दिमाग में ताजगी की उमंग पैदा हुई।

फिर संस्कार की बारी आई। दूल्हा और दुल्हन ने आपस में हमदर्दी, जिम्मेदारी और वफादारी के पवित्र शब्द अपनी जबानों से कहे। विवाह की वह मुबारक जंजीर गले में पड़ी जिसमें वजन है, सख्ती है पाबन्दियाँ हैं लेकिन वजन के साथ सुख और पाबन्दियों के साथ विश्वास है। दोनों दिलों में उस वक्त एक नई, बलवान, आत्मिक शक्ति की अनुभूति हो रही थी।

जब शादी की रस्में खत्म हो गई तो नाच-गाने की मजलिस का दौर आया। मोहक गीत गूँजने लगे। सेठजी थककर चूर हो गए थे। जरा दम लेने के लिए बगीचे में जाकर एक बेंच पर बैठ गए। ठंडी-ठंडी हवा आ रही थी। एक नशा-सा पैदा करनेवाली शान्ति चारों तरफ छाई हुई थी। उसी वक्त रोहिणी उनके पास आई और उनके पैरों से लिपट गई। सेठजी ने उसे उठाकर गले से लगा लिया और हँसकर बोले—क्यों अब तो तुम मेरी अपनी बेटी हो गईं?

–जमाना, जून,*1914*

कर्मों का फल

मुझे हमेशा आदमियों को परखने की सनक रही है और अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि यह अध्ययन जितना मनोरंजक, शिक्षाप्रद और उद्‌घाटनों से भरा हुआ है, उतना शायद और कोई अध्ययन न होगा। लेकिन अपने दोस्त लाला साईदयाल से बहुत अर्से तक दोस्ती और बेतकल्लुफी के सम्बन्ध रहने पर भी मुझे उनकी थाह न मिली। मुझे ऐसे दुर्बल शरीर में ज्ञानियों की-सी शान्ति और संतोष देखकर आश्चर्य होता था, जो एक नाजुक ' का पौधे की तरह मुसीबतों के झोंकों में भी अचल और अटल रहता था। यों वह बहुत ही मामूली दरजे का आदमी था जिसमें मानव कमजोरियों फल की कमी न थी। वह वादे बहुत करता था लेकिन उन्हें पूरा करने की जरूरत नहीं समझता था। वह मिथ्याभाषी न हो लेकिन सच्चा भी न था। बेमुरौवत न हो लेकिन उसकी मुरौवत छिपी रहती थी। उसे अपने कर्तव्य पर पाबन्द रखने के लिए दबाव और निगरानी की जरूरत थी, किफायतशारी के उसूलों से बेखबर, मेहनत से जी चुराने वाला, उसूलों का कमजोर, एक ढीला-ढाला मामूली आदमी था। लेकिन जब कोई मुसीबत सिर पर आ पड़ती तो उसके दिल में साहस और दृढ़ता की वह जबर्दस्त ताकत पैदा हो जाती थी जिसे शहीदों का गुण कह सकते हैं। उसके पास न दौलत थी न धार्मिक विश्वास, जो ईश्वर पर भरोसा करने और उसकी इच्छाओं के आगे सिर झुका देने का स्रोत है। एक छोटी-सी कपड़े की दुकान के सिवाय कोई जीविका न थी। ऐसी हालतों में उसकी हिम्मत और दृढ़ता का सोता कहाँ छिपा हुआ है, वहाँ तक मेरी अन्वेषण-दृष्टि नहीं पहुँचती थी।

:: 2 ::

बाप के मरते ही मुसीबतों ने उस पर छापा मारा। कुछ थोड़ा-सा कर्ज विरासत में मिला जिसमें बराबर बढ़ते रहने की आश्चर्यजनक शक्ति छिपी हुई थी। बेचारे ने अभी बरसी से छुटकारा नहीं पाया था कि महाजन ने नालिश की और अदालत के तिलिस्मी अहाते में पहुँचते ही यह छोटी-सी हस्ती इस तरह फूली जिस तरह मशक फूलती है। डिग्री हुई। जो कुछ जमा-जथा थी, बर्तन-भांडे, हाँडी-तवा, उसके गहरे पेट में समा गए। मकान भी न बचा। बेचारे मुसीबतों के मारे साईदयाल का अब कहीं ठिकाना न था। कौड़ी-कौड़ी को मुहताज, न कहीं घर, न बार। कई-कई दिन फाके से गुजर जाते। अपनी तो खैर उन्हें जरा भी फिक्र न थी लेकिन बीवी थी, दो-तीन बच्चे थे, उनके लिए तो कोई-न-कोई फिक्र करनी ही पड़ती थी। कुनबे का साथ और यह बेसरो-सामानी, बड़ा दर्दनाक दृश्य था। शहर से बाहर एक पेड़ की छाँह में यह आदमी अपनी मुसीबत के दिन काट रहा था। सारे दिन बाजारों की खाक छानता। आह, मैंने एक बार उसे रेलवे स्टेशन पर देखा। उसके सिर पर एक भारी बोझ था। उसका नाजुक, सुख-सुविधा में पला हुआ शरीर, पसीना-पसीना हो रहा था। पैर मुश्किल से उठते थे। दम फूल रहा था लेकिन चेहरे से मर्दाना हिम्मत और मजबूत इरादे की रोशनी टपकती थी। चेहरे से पूर्ण सन्तोष झलक रहा था। उसके चेहरे पर

ऐसा इत्मीनान था कि जैसे यही उसका बाप-दादों का पेशा है! मैं हैरत से उसका मुँह ताकता रह गया। दु ख में हमदर्दी दिखलाने की हिम्मत न हुई। कई महीने तक यही कैफियत रही। आखिरकार उसकी हिम्मत और सहनशक्ति उसे इस कठिन दुर्गम घाटी से बाहर निकाल लाई।

:: 3 ::

थोड़े ही दिनों के बाद मुसीबतों ने फिर उस पर हमला किया। ईश्वर ऐसा दिन दुश्मन को भी न दिखलाए। मैं एक महीने के लिए बम्बई चला गया था, वहाँ से लौटकर उससे मिलने गया। आह, वह दृश्य याद करके आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और दिल डर से काँप उठता है। सुबह का वक्त था। मैंने दरवाजे पर आवाज दी और हमेशा की तरह बेतकल्लुफ अंदर चला गया, मगर वहाँ साईदयाल का वह हँसमुख चेहरा, जिस पर मर्दाना हिम्मत की ताजगी झलकती थी, नजर न आया। मैं एक महीने के बाद उसके घर जाऊँ और वह आँखों से रोते लेकिन होंठों से हँसते दौडकर मेरे गले से लिपट न जाय! जरूर कोई आफत है। उसकी बीवी सिर झुकाए आई और मुझे उसके कमरे में ले गई। मेरा दिल चेत गया। साईदयाल एक चारपाई पर मैले-कुचैले कपड़े लपेटे आँखें बन्द किए पड़ा दर्द से कराह रहा था। जिस्म और बिछौने पर मक्खियों के गुच्छे के गुच्छे बैठे हुए थे। आहट पाते ही उसने मेरी तरफ देखा। मेरे जिगर के टुकड़े हो गए। हड्डियों का ढाँचा रह गया था। दुर्बलता की इससे ज्यादा सच्ची और करुण तसवीर नहीं हो सकती। उसकी बीवी ने मेरी तरफ निराशा-भरी आँखों से देखा। मेरी आँखों में भी आँसू भर आए। उस सिमटे हुए ढाँचे में बीमारी को भी मुश्किल से जगह मिलती होगी, जिन्दगी का क्या जिक्र! आखिर मैंने धीरे से पुकारा। आवाज सुनते ही वह बड़ी-बड़ी आँखें खुल गईं लेकिन उनमें पीड़ा और शोक के आँसू न थे संतोष और ईश्वर पर भरोसे की रोशनी थी। और वह पीला चेहरा! आह, वह गम्भीर संतोष का मौन चित्र, वह सन्तोषमय संकल्प की सजीव स्मृति। उसके पीलेपन में मर्दाना हिम्मत की लाली झलकती थी। मैं उसकी सूरत देखकर घबरा गया। क्या यह बुझते हुए चिराग की आखिरी झलक तो नहीं है ?

मेरी सहमी हुई सूरत देखकर वह मुस्कराया और बहुत धीमी आवाज में बोला-तुम ऐसे उदास क्यों हो, यह सब मेरे कर्मों का फल है।

:: 4 ::

मगर कुछ अजब बदकिस्मत आदमी था। मुसीबतों को उससे कुछ खास मुहब्बत थी। किसे उम्मीद थी कि वह उस प्राणघातक रोग से मुक्ति पाएगा। डाक्टरों ने भी जवाब दे दिया था। मौत के मुँह से निकल आया। मगर भविष्य का जरा भी ज्ञान होता तो सबसे पहले मैं उसे जहर दे देता। आह, उस शोकपूर्ण घटना को याद करके कलेजा मुँह को आता है। धिक्कार है इस जिन्दगी पर कि बाप अपनी आँखों से अपने इकलौते बेटे का शोक देखे!

कैसा हँसमुख, कैसा खूबसूरत, होनहार लड़का था, कैसा सुशील कैसा मधुरभाषी। जालिम मौत ने उसे छाँट लिया। प्लेग की दुहाई मची हुई थी। शाम को मिली निकली और सुबह को—कैसी मनहूस, अशुभ सुबह थी—वह जिन्दगी सवेरे के चिराग की तरह बुझ गई। मैं उस वक्त बच्चे के पास बैठा हुआ था और साईदयाल दीवार का सहारा लिये हुए खामोश आसमान की तरफ देखता था। मेरी और उसकी आँखों के सामने जालिम और बेरहम मौत ने उस बच्चे को हमारी गोद से छीन लिया। मैं रोते हुए साईदयाल के गले से लिपट गया। सारे घर में कुहराम मचा हुआ था। बेचारी माँ पछाड़ें खा रही थी, बहनें दौड़ दौड़कर भाई की लाश से लिपटती थीं। और जरा देर के लिए ईर्ष्या ने भी संवेदना के आगे रिपर झुका दिया था—मुहल्ले की औरतों को आरर बहाने के लिए दिल पर जोर डालने की जरूरत न थी।

जब मेरे आँसू थमे तो मैंने साईदयाल की तरफ देखा। आँखों में तो तू, भरे हुए थे—आह संतोष का आँखों पर कोई बस नहीं, लेकिन चेहरे पर मर्दाना दृढ़ता और समर्पण का रंग स्पष्ट था। इस दुःख की बाढ़ और तूफान में भी शान्ति की नैया उसके दिल को डूबने से बचाए हुए थी।

इस दृश्य ने मुझे चकित नहीं स्तम्भित कर दिया। सम्भावनाओं की सीमाएँ कितनी ही व्यापक हों ऐसी हृदयद्रावक स्थिति में होश-हवास और इत्मीनान को कायम रखना उन सीमाओं से परे है। लेकिन इस दृष्टि से साईदयाल मानव नहीं, अति-मानव था। मैंने रोते हुए कहा—भाई साहब, अब सन्तोष की परीक्षा का अवसर है। उसने दृढ़ता से उत्तर दिया- हाँ यह कर्मों का फल है।

मैं एक बार फिर भौचक होकर उसका मुँह ताकने लगा।

:: 5 ::

लेकिन साईदयाल का यह तपस्वियों जैसा धैर्य और ईश्वरेच्छा पर भरोसा अपनी ओखों से देखने पर भी मेरे दिल में सन्देह बाकी थे। मुमकिन है जब तक चोट ताजी है सब्र का बाँध कायम रहे। लेकिन उसकी बुनियादें हिल गई हैं उसमें दरारें पड़ गई हैं। वह अब ज्यादा देर तक दुःख और शोक की लहरों का मुकाबला नहीं कर सकता। क्या संसार की कोई दुर्घटना इतनी हृदयद्रावक, इतनी निर्मम, इतनी कठोर हो सकती है? संतोष और दृढ़ता और धैर्य और ईश्वर पर भरोसा, यह सब उस आँधी के सामने घास-फूस से ज्यादा नहीं। धार्मिक विश्वास तो क्या, अध्यात्म तक उसके सामने सिर झुका देता है। उसके झोंके आस्था और निष्ठा की जड़ें हिला देते हैं।

लेकिन मेरा अनुमान गलत निकला। साईदयाल ने धीरज को हाथ से न जाने दिया। वह बदम्बूर जिन्दगी के कामों में लग गया। दोस्तों की मुलाकातें और नदी के किनारे की सैर और तफरीह और मेलों की चहल-पहल, इन दिलचस्पियों में उसके दिल को खींचने को ताकत अब भी बाकी थी। मैं उसकी एक-एक क्रिया को, एक-एक बात को गौर से देखता और पड़ता। मैंने दोस्ती के नियम-कायदों को भुलाकर उसे उस हालत में देखा जहाँ उसके विचारों के सिवा और कोई न था। लेकिन उस हालत में भी उसके चेहरे पर वही पुरुषोचित

धैर्य था और शिकवे-शिकायत का एक शब्द भी उसकी जबान पर नहीं आया।

:: 6 ::

इसी बीच मेरी छोटी लड़की चन्द्रमुखी निमोनिया की भेंट चढ़ गई। दिन के धंधे से फुरसत पाकर जब मैं घर पर आता और उसे प्यार से गोद में उठा लेता तो मेरे हृदय को जो आनन्द और आत्मिक शक्ति मिलती थी, उसे शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता। उसकी अदाएँ सिर्फ दिल को लुभानेवाली नहीं गम को भुलानेवाली हैं। जिस वक्त वह हुमककर मेरी गोद में आती तो मुझे तीनों लोक की संपत्ति मिल जाती थी। उसकी शरारतें कितनी मनमोहक थीं। अब हुक्के में मजा नहीं रहा, कोई चिलम को गिरानेवाला नहीं! खाने में मजा नहीं आता, कोई थाली के पास बैठा हुआ उस पर हमला करनेवाला नहीं! मैं उसकी लाश को गोद में लिये बिलख-बिलख रो रहा था। यही जी चाहता था कि अपनी जिन्दगी का खातमा कर दूँ। यकायक मैंने साईदयाल को आते देखा। मैंने फौरन ओंसू पोंछ डाले और उस नन्ही-सी जान को जमीन पर लिटाकर बाहर निकल आया। उस धैर्य और संतोष के देवता ने मेरी तरफ संवेदना की आँखों से देखा और मेरे गले से लिपटकर रोने लगा। मैंने कभी उसे इस तरह चीखें मारकर रोते नहीं देखा। रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गईं, बेचैनी से बेसुध और बेहाल हो गया। यह वही आदमी है जिसका इकलौता बेटा मरा और माथे पर बल नहीं आया। यह कायापलट क्यों?

:: 7 ::

इस शोकपूर्ण घटना के कई दिन बाद जब कि दु खी दिल सँभलने लगा था, एक रोज हम दोनों नदी की सैर को गए। शाम का वक्त था। नदी कहीं सुनहरी, कहीं नीली-सी, कहीं काली, किसी थके हुए मुसाफिर की तरह धीरे-धीरे बह रही थी। हम दूर जाकर एक टीले पर बैठ गए लेकिन बातचीत करने को जी न चाहता था। नदी के मौन प्रवाह ने हमको भी अपने विचारों में डुबो दिया। नदी की लहरें विचारों की लहरों को पैदा कर देती हैं। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि प्यारी चन्द्रमुखी लहरों की गोद में बैठी मुस्करा रही है। मैं चौंक पड़ा और अपने ओसुओं को छिपाने के लिए नदी में मुँह धोने लगा। साईदयाल ने कहा—भाई साहब, दिल को मजबूत करो। इस तरह कुढ़ोगे तो जरूर बीमार हो जाओगे।

मैंने जवाब दिया—ईश्वर ने जितना संयम तुम्हें दिया है, उसमें से थोड़ा-सा मुझे भी दे दो मेरे दिल में इतनी ताकत कहाँ।

साईदयाल मुस्कराकर मेरी तरफ ताकने लगा।

मैंने उसी सिलसिले में कहा—किताबों में तो दृढ़ता और संतोष की बहुत-सी कहानियाँ पढ़ी हैं मगर सच मानो कि तुम जैसा दृढ़ कठिनाइयों में सीधा खड़ा रहनेवाला आदमी आज तक मेरी नजर से नहीं गुजरा। तुम जानते हो कि मुझे मानव-स्वभाव के अध्ययन का हमेशा से शौक है लेकिन मेरे अनुभव में तुम अपनी तरह के अकेले आदमी हो। मैं यह न मानूँगा कि

तुम्हारे दिल में दर्द और घुलावट नहीं है। उसे मैं अपनी आँखों देख चुका हूँ। फिर इस ज्ञानियों जैसे संतोष और शान्ति का रहस्य तुमने कहाँ छिपा रखा है? तुम्हें इस समय यह रहस्य मुझसे कहना पड़ेगा।

साईदयाल कुछ सोच-विचार में पड़ गया और जमीन की तरफ ताकते हुए बोला—यह कोई रहस्य नहीं, मेरे कर्मो का फल है।

यह वाक्य मैंने चौथी बार उसकी जबान से सुना और बोला—जिन कर्मों का फल ऐसा शक्तिदायक है, उन कमी की मुझे भी कुछ दीक्षा दो, मैं ऐसे फलों से क्यों वंचित रहूँ।

साईदयाल ने व्यथापूर्ण स्वर में कहा—ईश्वर न करे कि तुम ऐसा कर्म करो और तुम्हारी जिन्दगी पर उसका काला दाग लगे। मैंने जो कुछ किया है, वह मुझे ऐसा लज्जाजनक और ऐसा घृणित मालूम होता है कि उसकी मुझे जो कुछ सजा मिले मैं उसे खुशी के साथ झेलने को तैयार हूँ। आह! मैंने एक ऐसे पवित्र खानदान को, जहाँ मेरा विश्वास और मेरी प्रतिष्ठा थी, अपनी वासनाओं की गन्दगी में लिथेड़ा है एक ऐसे पवित्र हृदय को, जिसमें मुहब्बत का दर्द था, जो सौन्दर्यवाटिका की एक नई-नई खिली हुई कली थी जिसमें सरलता थी और सच्चाई थी, उस पवित्र हृदय में मैंने पाप और विश्वासघात का बीज हमेशा के लिए बो दिया। यह पाप है जो मुझसे हुआ है और उसका पल्ला उन मुसीबतों से बहुत भारी है जो मेरे ऊपर अब तक पड़ी हैं या आगे चलकर पड़ेगी। कोई सजा, कोई दुःख, कोई क्षति उसका प्रायश्चित्त नहीं कर सकती।

मैंने सपने में भी न सोचा था कि साईदयाल अपने विश्वासों में इतना दृढ़ है। पाप हर आदमी से होते हैं हमारा मानव जीवन पापों की एक लम्बी सूची है वह कौन-सा दामन है जिस पर यह काले दाग न हों 1 लेकिन कितने ऐसे आदमी हैं जो अपने कर्मों की सजाओं को इस तरह उदारतापूर्वक मुस्कराते हुए झेलने के लिए तैयार हों। हम आग में कूदते हैं लेकिन जलने के लिए तैयार नहीं होते।

मैं साईदयाल को हमेशा इज्जत की निगाह से देखता हूँ इन बातों को सुनकर मेरी नजरों में उसकी इज्जत तिगुनी हो गई। एक मामूली दुनियादार आदमी के सीने में एक फकीर का दिल छिपा हुआ था जिसमें ज्ञान की ज्योति चमकती थी। मैंने उसकी तरफ श्रद्धापूर्ण आँखों से देखा और उसके गले से लिपटकर बोला—साईदयाल अब तक मैं तुम्हें एक दृढ़ स्वभाव का आदमी समझता था लेकिन आज मालूम हुआ कि तुम पवित्र आत्माओं में हो, जिनका अस्तित्व संसार के लिए वरदान है। तुम ईश्वर के सच्चे भक्त हो और में तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाता हूँ।

– उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

अमृत

मेरी उठती जवानी थी जब मेरा दिल दर्द के मजे से परिचित हुआ। कुछ दिनों तक शायरी का अभ्यास करता रहा और धीरे-धीरे इस शौक ने तल्लीनता का रूप ले लिया। सारे सांसारिक सम्बन्धों से मुँह मोड़कर अपनी शायरी की दुनिया में आ बैठा और तीन ही साल की मश्क ने मेरी कल्पना के जौहर खोल दिए। कभी-कभी मेरी शायरी उस्तादों के मशहूर कलाम से टक्कर खा जाती थी। मेरी कलम ने किसी उस्ताद के सामने सर नहीं झुकाया। मेरी कल्पना एक अपने आप बढ़ने वाले पौधे की तरह छन्द और पिंगल की कैदों से आजाद बढ़ती रही और मेरे कलाम का ढंग बिलकुल निराला था। मैंने अपनी शायरी को फारस से बाहर निकालकर योरोप तक पहुँचा दिया। यह मेरा अपना रंग था। इस मैदान में न मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी था, न बराबरी करनेवाला। बावजूद इस शायरों जैसी तल्लीनता के मुझे मुशायरों की वाह-वाह और सुभानअल्लाह से नफरत थी। हाँ, काव्य-रसिकों से बिना अपना नाम बताए हुए अक्सर अपनी शायरों की अच्छाइयों और बुराइयों पर बहस किया करता। गो मुझे शायरी का दावा न था मगर धीरे-धीरे मेरी शोहरत होने लगी और जब मेरी मसनवी 'दुनियाए हुस्न' प्रकाशित हुई तो साहित्य की दुनिया में हलचल-सी मच गई।

पुराने शायरों ने काव्य-मर्मज्ञों की प्रशंसा-कृपणता में पोथे के पोथे रंग दिए हैं मगर मेरा अनुभव इसके बिलकुल विपरीत था। मुझे कभी-कभी यह खयाल सताया करता कि मेरे कद्रदानों की यह उदारता दूसरे कवियों की लेखनी की दरिद्रता का प्रमाण है। यह खयाल हौसला तोड़नेवाला था। बहरहाल, जो कुछ हुआ 'दुनियाए हुस्न' ने मुझे शायरी का बादशाह बना दिया। मेरा नाम हरेक जबान पर था। मेरी चर्चा हर एक अखबार में थी। शोहरत अपने साथ दौलत भी लाई। मुझे दिन-रात शेरो-शायरी के अलावा और कोई काम न था। अक्सर बैठे-बैठे रातें गुजर जातीं और जब कोई चुभता हुआ शेर कलम से निकल जाता तो मैं खुशी के मारे उछल पड़ता। मैं अब तक शादी-ब्याह की कैदों से आजाद था या यों कहिए कि मैं उसके उन मजों से अपरिचित था जिनमें रंज की तल्खी भी है और खुशी की नमकीनी भी। अक्सर पच्छिमी साहित्यकारों की तरह मेरा भी खयाल था कि साहित्य के उन्माद और सौन्दर्य के उन्माद में पुराना वैर है। मुझे अपनी जबान से कहते हुए शर्मिन्दा होना पड़ता है कि मुझे अपनी तबीयत पर भरोसा न था। जब कभी मेरी औखों में कोई मोहिनी सूरत खुब जाती तो मेरे दिल-दिमाग पर एक पागलपन-सा छा जाता। हफ्तों तक अपने को भूला हुआ-सा रहता। लिखने की तरफ तबीयत किसी तरह न झुकती। ऐसे कमजोर दिल में सिर्फ एक इश्क की जगह थी। इसी डर से मैं अपनी रंगीन तबीयत के खिलाफ आचरण शुद्ध रखने पर मजबूर था। कमल की एक पंखुड़ी, श्यामा के एक गीत, लहलहाते हुए एक मैदान में मेरे लिए जादू का-सा आकर्षण था मगर किसी औरत के दिलफरेब हुस्न को मैं चित्रकार या मूर्तिकार की बेलौस औंखों से नहीं देख सकता था। सुन्दर स्त्री मेरे लिए एक रंगीन, कातिल नागिन थी जिसे देखकर आँखें खुश होती हैं मगर दिल डर से सिमट जाता है।

खैर, 'दुनियाए हुस्न' को प्रकाशित हुए दो साल गुजर चुके थे। मेरी ख्याति बरसात की

उमड़ी हुई नदी की तरह बढ़ती चली जाती थी। ऐसा मालूम होता था कि जैसे मैंने साहित्य की दुनिया पर कोई वशीकरण कर दिया है। इसी दौरान में मैंने फुटकर शेर तो बहुत कहे मगर दावतों और अभिनन्दनपत्रों की भीड़ ने मार्मिक भावों को उभरने न दिया। प्रदर्शन और ख्याति एक राजनीतिज्ञ के लिए कोड़े का काम दे सकते हैं मगर शायर की तबीयत अकेले शान्ति से एक कोने में बैठकर ही अपना जौहर दिखलाती है। चुनांचे मैं इन रोज-ब-रोज बढ़ती हुई बेहूदा बातों से गला छुड़ाकर भागा और पहाड़ के एक कोने में जा छिपा। 'नैरंग' ने वहीं जन्म लिया।

:: 2 ::

'नैरंग' के शुरू करते ही मुझे एक आश्चर्यजनक और दिल तोड़नेवाला अनुभव हुआ। ईश्वर जाने क्यों मेरी अक्ल और मेरे चिन्तन पर एक पर्दा पड़ गया। घण्टों तबीयत पर जोर डालता मगर एक शेर भी ऐसा न निकलता कि दिल फड़क उठे। सूझते भी तो दरिद्र, पिटे हुए विषय, जिनसे मेरी आत्मा भागती थी। मैं अक्सर झुँझलाकर उठ बैठता, कागज फाड़ डालता और बड़ी बेदिली की हालत में सोचने लगता कि क्या मेरी काव्यशक्ति का अन्त हो गया, क्या मैंने वह खजाना जो प्रकृति ने मुझे सारी उम्र के लिए दिया था, इतनी जल्दी मिटा दिया? कहाँ वह हालत थी कि विषयों की बहुतायत और नाजुक खयालों की रवानी कलम को दम नहीं लेने देती थी। कल्पना का पंछी उड़ता तो आसमान का तारा बन जाता था और कहाँ अब यह पस्ती! यह करुण दरिद्रता! मगर इसका कारण क्या है? यह किस कसूर की सजा है? कारण और कार्य का दूसरा नाम दुनिया है। जब तक हमको क्यों का जवाब न मिले, दिल को किसी तरह सब्र नहीं होता, यहाँ तक कि मौत को भी इस क्यों का जवाब देना पड़ता है। आखिर मैंने एक डाक्टर से सलाह ली। उसने आम डाक्टरों की तरह आबहवा बदलने की सलाह दी। मेरी अक्ल में भी यह बात आई कि मुमकिन है नैनीताल की ठंडी आबहवा से शायरी की आग ठंडी पड़ गई हो। छः महीने तक लगातार घूमता-फिरता रहा। अनेक आकर्षक दृश्य देखे, मगर उनसे आत्मा पर वह शायराना कैफियत न छाती थी कि प्याला छलक पड़े और खामोश कल्पना खुद ब खुद चहकने लगे। मुझे अपना खोया हुआ लाल न मिला। अब मैं जिन्दगी से तंग था। जिन्दगी अब मुझे सूखे रेगिस्तान जैसी मालूम होती जहाँ कोई जान नहीं, ताजगी नहीं, दिलचस्पी नहीं। हरदम दिल पर एक मायूसी-सी छाई रहती और दिल खोया-खोया रहता। दिल में यह सवाल पैदा होता कि क्या वह चार दिन की चाँदनी खत्म हो गई और अँधेरा पाख आ गया? आदमी की संगत से बेजार, हमजिन्स की सूरत से नफरत, मैं एक गुमनाम कोने में पड़ा हुआ जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा था। पेड़ों की चोटियों पर बैठनेवाली, मीठे राग गानेवाली चिड़िया क्या पिंजरे में जिन्दा रह सकती है? मुमकिन है कि वह दाना खाए, पानी पिए मगर उसकी इस जिन्दगी और मौत में कोई फर्क नहीं है।

आखिर जब मुझे अपनी शायरी के लौटने की कोई उम्मीद न रही, तो मेरे दिल में यह इरादा पक्का हो गया कि अब मेरे लिए शायरी की दुनिया से मर जाना ही बेहतर होगा। मुर्दा तो हूँ ही, इस हालत में अपने को जिन्दा समझना बेवकूफी है। आखिर मैंने एक रोज

कुछ दैनिक पत्रों को अपने मरने की खबर दे दी। उसके छपते ही मुल्क में कोहराम मच गया, एक तहलका पड़ गया। उस वक्त मुझे अपनी लोकप्रियता का कुछ अंदाजा हुआ। यह आम पुकार थी कि शायरी की दुनिया की किश्ती मझधार में डूब गई। शायरी की महफिल उखड़ गई। पत्र-पत्रिकाओं में मेरे जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए जिनको पढ़कर मुझे उनके एडीटरों की आविष्कार बुद्धि का कायल होना पड़ा। न तो मैं किसी रईस का बेटा था और न मैंने रईसी की मसनद छोड़कर फकीरी अख्तियार की थी। उनकी कल्पना वास्तविकता पर छा गई थी। मेरे मित्रों में एक साहब ने, जिन्हें मुझसे आत्मीयता का दावा था, मुझे पीने-पिलाने का प्रेमी बना दिया था। वह जब कभी मुझसे मिलते, उन्हें मेरी आँखें नशे से लाल नजर आतीं। अगरचे इसी लेख में आगे चलकर उन्होंने मेरी इस बुरी आदत की बहुत उदार हृदयता से सफाई दी थी क्योंकि रूखा-सूखा आदमी ऐसी मस्ती के शेर नहीं कह सकता था। ताहम हैरत है कि उन्हें यह सरीहन गलत बात कहने की हिम्मत कैसे हुई।

खैर, इन गलत-बयानियों की तो मुझे परवाह न थी। अलबत्ता यह बड़ी फिक्र थी, फिक्र नहीं एक प्रबल जिज्ञासा थी कि मेरी शायरी पर लोगों की जबान से क्या फिता निकलता है। हमारी जिन्दगी के कारनामे की सच्ची दाद मरने के बाद ही मिलती है क्योंकि उस वक्त वह खुशामद और बुराइयों से पाक-साफ होती है। मरनेवाले की खुशी या रंज की कौन परवाह करता है। इसलिए मेरी कविता पर जितनी आलोचनाएँ निकली हैं उनको मैंने बहुत ही ठंडे दिल से पढ़ना शुरू किया। मगर कविता को समझनेवाली दृष्टि की व्यापकता और उसके मर्म को समझने वाली रुचि का चारों तरफ अकाल-सा मालूम होता था। अधिकांश जौहरियाँ ने एक-एक शेर को लेकर उनसे बहस की थी, और इसमें शक नहीं कि वे पाठक की हैसियत से उस शेर के पहलुओं को खूब समझते थे। मगर आलोचक का कहीं पता न था। नजर की गहराई गायब थी। समग्र कविता पर निगाह डालनेवाला, कवि के गहरे भावों तक पहुँचनेवाला कोई आलोचक न दिखाई दिया।

:: 3 ::

एक रोज मैं प्रेतों की दुनिया से निकलकर घूमता हुआ अजमेर की पब्लिक लाइब्रेरी में जा पहुँचा। दोपहर का वक्त था। मैंने मेज पर झुककर देखा कि कोई नई रचना हाथ आ जाए तो दिल बहलाऊँ। यकायक मेरी निगाह एक सुन्दर पत्र की ओर गई जिसका नाम था 'कलामे अख्तर'। जैसे भोला बच्चा खिलौने की तरफ लपकता है उसी तरह झपटकर मैंने उस किताब को उठा लिया। उसकी लेखिका मिस आयशा आरिफ थीं। दिलचस्पी और भी ज्यादा हुई। मैं इत्मीनान से बैठकर उस किताब को पढ़ने लगा। एक ही पन्ना पढ़ने के बाद दिलचस्पी ने बेताबी की सूरत अख्तियार की। फिर तो मैं बेसुधी की दुनिया में जा पहुँच गया। मेरे सामने गोया सूक्ष्म अर्थों की एक नदी लहरें मार रही थी। कल्पना की उठान, रुचि की स्वच्छता, भाषा की नर्मी, काव्य-दृष्टि की व्यापकता, किस-किस की तारीफ करूँ। उसकी एक-एक कल्पना ऐसी थी कि हृदय धन्य-धन्य कह उठता। मैं एक पैराग्राफ पढ़ता, फिर विचार की ताजगी से प्रभावित होकर एक लम्बी साँस लेता और तब सोचने लगता। इस किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना असम्भव था। यह औरत थी या सुरुचि की देवी। उसके इशारों से

मेरा कलाम बहुत कम बचा था मगर जहाँ उसने मुझे दाद दी थी वहाँ सच्चाई के मोती बरसा दिए थे। उसके एतराजों में हमदर्दी और प्रशंसा में भक्ति थी। शायर के कलाम को दोषों की दृष्टि से नहीं, खूबियों की दृष्टि से देखना चाहिए। उसने क्या नहीं किया, यह ठीक कसौटी नहीं। उसने क्या किया, यह ठीक कसौटी है। बस, यही जी चाहता था कि लेखिका के हाथ और कलम चूम लूँ। 'सफीर' भोपाल के दफ्तर से यह पत्रिका प्रकाशित हुई थी। मेरा पक्का इरादा हो गया। तीसरे दिन शाम के वक्त मैं मिस आयशा के खूबसूरत बंगले के सामने हरी-हरी घास पर टहल रहा था। मैं नौकरानी के साथ एक कमरे में दाखिल हुआ। उसकी सजावट बहुत सादी थी। पहली चीज जिस पर मेरी निगाह पड़ी वह मेरी तसवीर थी जो दीवार से लटक रही थी। सामने एक आईना रखा हुआ था। मैंने खुदा जाने क्यों उसमें अपनी सूरत देखी। मेरा चेहरा पीला और कुम्हलाया हुआ था, बाल उलझे हुए कपड़ों पर गर्द की एक मोटी तह जमी हुई, परेशानी की जिन्दा तसवीर खड़ी थी।

उस वक्त मुझे अपनी बुरी शक्ल पर सख्त शर्मिन्दगी हुई। मैं सुन्दर न सही मगर इस वक्त तो सचमुच चेहरे पर फटकार बरस रही थी। अपने लिबास के ठीक होने का यकीन हमें खुशी देता है। अपने फूहड़पन का जिस्म पर इतना असर नहीं होता जितना दिल पर। हम बुजदिल और बेहौसला हो जाते हैं।

मुझे मुश्किल से पाँच मिनट गुजरे होंगे कि मिस आयशा तशरीफ लाई। साँवला रंग था, चेहरा एक गम्भीर घुलावट से चमक रहा था। बड़ी-बड़ी नरगिसी आँखों से सदाचार की, संस्कृति की रोशनी झलकती थी। कद मझोले से कुछ कम। अंग-प्रत्यंग छरहरे, सुथरे ऐसी हलकी-फुलकी कि जैसे प्रकृति ने उसे इस भौतिक संसार के लिए नहीं, किसी काल्पनिक संसार के लिए सिरजा है। कोई चित्रकार कला की उससे अच्छी तसवीर नहीं खींच सकता था।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखा मगर देखते-देखते उसकी गर्दन झुक गई और उसके गालों पर लाज की एक हलकी-सी परछाई नाचती हुई मालूम हुई। जमीन से उठकर उसकी आँखें मेरी तसवीर की तरफ गईं और फिर सामने पर्दे की तरफ जा पहुँचीं। शायद उसकी आड़ में छिपना चाहती थीं।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखकर पूछा—आप स्वर्गीय अख्तर के दोस्तों में हैं?

मैंने सर नीचा किए हुए जवाब दिया—मैं ही बदनसीब अख्तर हूँ।

आयशा एक बेखुदी के आलम में कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई और मेरी तरफ हैरत से देखकर बोली—'दुनियाए हुस्न' के लिखनेवाले?

अंधविश्वास के सिवा और किसने इस दुनिया से चले जानेवाले को देखा है। आयशा ने मेरी तरफ कई बार शक से भरी हुई निगाहों से देखा। उनमें अब शर्म और हया की जगह के बजाय हैरत समाई हुई थी। मेरे कब से निकलकर भागने का तो उसे यकीन आ ही नहीं सकता था, शायद वह मुझे दीवाना समझ रही थी। उसने दिल में फैसला किया कि यह आदमी मरहूम शायर का कोई करीबी अजीज है। शक्ल जिस तरह मिल रही थी वह दोनों के एक खानदान के होने का सबूत थी। मुमकिन है कि भाई हो। इस अचानक सदमे से पागल हो गया है। शायद उसने मेरी किताब देखी होगी और हाल पूछने के लिए चला

आया। अचानक उसे खयाल गुजरा कि किसी ने अखबारों को मेरे मरने की झूठी खबर दे दी हो और मुझे उस खबर को काटने का मौका न मिला हो। इस खयाल से उसकी उलझन दूर हुई, बोली—अखबारों में आपके बारे में एक निहायत मनहूस खबर छप गई थी? मैंने जवाब दिया—वह खबर सही थी।

अगर पहले आयशा को मेरे दीवानेपन में कुछ शक था तो वह दूर हो गया। आखिर मैंने थोड़े लज्जों में अपनी दास्तान सुनाई और जब उसको यकीन हो गया कि 'दुनियाए हुस्न' का लिखने वाला अख्तर अपने इन्सानी चोले में है तो उसके चेहरे पर खुशी की एक हलकी सुर्खी दिखाई दी और यह हलका रंग बहुत जल्द खुद्दारी और रूप-गर्व के शोख रंग से मिलकर कुछ का कुछ हो गया। गालिबन वह शर्मिन्दा थी कि क्यों उसने अपनी कद्रदानी को हद से बाहर जाने दिया। कुछ देर की शर्मीली खामोशी के बाद उसने कहा—मुझे अफसोस है कि आपको ऐसी मनहूस खबर निकालने की जरूरत हुई।

मैंने जोश में भरकर जवाब दिया—आपके कलम की जबान से दाद पाने की कोई सूरत न थी। इस तनकीद के लिए मैं ऐसी-ऐसी कई मौतें मर सकता था।

मेरे इस बेधड़क अन्दाज ने आयशा की जबान को भी शिष्टाचार और संकोच की कैद से आजाद किया, मुस्कराकर बोली—मुझे बनावट पसन्द नहीं है। डॉक्टरों ने कुछ बतलाया नहीं? उसकी इस मुस्कराहट ने मुझे दिल्लगी करने पर आमादा किया, बोला—अब मसीह के सिवा इस मर्ज का इलाज और किसी के हाथ से नहीं हो सकता।

आयशा इशारा समझ गई, हँसकर बोली—मसीह चौथे आसमान पर रहते हैं।

मेरी हिम्मत ने अब और कदम बढ़ाए—रूहों की दुनिया से चौथा आसमान बहुत दूर नहीं है।

आयशा के लिखे हुए चेहरे से संजीदगी और अजनबियत का हलका रंग उड़ गया। ताहम, मेरे इन बेधड़क इशारों को हद से बढ़ते देखकर उसे मेरी जबान पर रोक लगाने के लिए किसी कदर खुद्दारी बरतनी पड़ी। जब मैं कोई घंटे भर के बाद उस कमरे से निकला तो बजाय इसके कि वह मेरी तरफ अपनी अंग्रेजी तहजीब के मुताबिक हाथ बढ़ाए उसने चोरी-चोरी मेरी तरफ देखा। फैला हुआ पानी जब सिमटकर किसी जगह से निकलता है तो उसका बहाव बहुत तेज और ताकत कई गुना ज्यादा हो जाती है। आयशा की उन निगाहों में अस्मत की तासीर थी। उनमें दिल मुस्कराता था और जज्बा नाचता था। आह, उनमें मेरे लिए दावत का एक पुरजोश पैगाम भरा हुआ था। जब मैं मुस्लिम होटल में पहुँचकर इन वाकयात पर गौर करने लगा तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि गो मैं ऊपर से देखने पर यहाँ अब तक अपरिचित था, लेकिन भीतरी तौर पर शायद मैं उसके दिल के कोने तक पहुँच चुका था।

:: 4 ::

जब मैं खाना खाकर पलंग पर लेटा तो बावजूद दो दिन रात-रातभर जागने के नींद आँखों से कोसों दूर थी। जज्बात की कशमकश में नींद कहाँ। आयशा की सूरत, उसकी खातिरदारियाँ और उसकी वह छिपी-छिपी निगाह दिल में एहसासों का तूफान-सा बरपा

कर रही थी। उस आखिरी निगाह ने दिल में तमन्नाओं की रूम-धूम मचा दी। वह आरजुएँ, जो बहुत अरसा हुआ, मर मिटी थीं फिर जाग उठीं और आरजुओं के साथ कल्पना ने भी मुँदी हुई आँखें खोल दीं।

दिल में जज्जात और कैफियत का एक नया बेचैन करनेवाला जोश महसूस हुआ। यही आरजुएँ, यही बेचैनियाँ और यही शोरिशें कल्पना के दीपक के लिए तेल हैं। जज्बात की हरारत ने कल्पना को गरमाया। मैं कलम लेकर बैठ गया और एक ऐसी नज्म लिखी जिसे मैं अपनी सबसे शानदार दौलत समझता हूँ।

मैं एक होटल में रह रहा था, मगर किसी न किसी हीले से दिन में कम से कम एक बार जरूर उसके दर्शन का आनन्द उठाता। गो आयशा ने कभी मेरे यहाँ तक आने की तकलीफ नहीं की तो भी मुझे यह यकीन करने के लिए शहादतों की जरूरत न थी कि वहाँ किसी कदर सरगर्मी से मेरा इन्तजार किया जाता था। मेरे कदमों की पहचानी हुई आहट पाते ही उसका चेहरा कमल की तरह खिल जाता था और आँखों से कामना की किरणें निकलने लगती थीं।

यहाँ छः महीने गुजर गए। इस जमाने को मेरी जिन्दगी की बहार समझना चाहिए। मुझे वह दिन भी याद है जब मैं आरजुओं और हसरतों के गम से आजाद था। मगर दरिया की शान्तिपूर्ण रवानी में थरकती हुई लहरों की बहार कहाँ। अब अगर मुहब्बत का दर्द था तो उसका प्राणदायी मजा भी था। अगर आरजुओं की घुलावट थी तो उनकी उमंग भी थी। आह, मेरी यह प्यासी आँखें उस रूप के स्रोत से किसी तरह तृप्त न होतीं। जब मैं अपनी नशे में डूबी हुई आँखों से उसे देखता तो मुझे एक आत्मिक तरावट-सी महसूस होती। मैं उसके दीदार के नशे से बेसुध-सा हो जाता और मेरी रचना-शक्ति का तो कुछ हद-हिसाब न था। ऐसा मालूम होता था कि जैसे दिल में मीठे भावों का सोता खुल गया था। अपनी कवित्व शक्ति पर खुद अचंभा होता था। कलम हाथ में ली और रचना का सोता-सा बह निकला। 'नैरंग' में ऊँची कल्पनाएँ न हों, बड़ी गूढ़ बातें न हों, मगर उसका एक-एक शेर प्रवाह और रस, गर्मी और घुलावट की दाद दे रहा है। यह उस दीपक का वरदान है, जो अब मेरे दिल में जल गया था और रोशनी दे रहा था। यह उस फूल की महक थी जो मेरे दिल में खिला हुआ था। मुहब्बत रूह की खुराक है। यह वह अमृत की बूँद है जो मरे हुए भावों को जिन्दा कर देती है। मुहब्बत आत्मिक वरदान है। यह जिन्दगी की सबसे पाक, सबसे ऊँची, सबसे मुबारक बरकत है। यही अक्सीर थी जिसकी अनजाने ही मुझे तलाश थी। वह रात कभी न भूलेगी जब आयशा दुल्हन बनी हुई मेरे घर में आई। 'नैरंग' उसी मुबारक जिन्दगी की यादगार है।'दुनियाए हुस्न' एक कली थी, 'नैरंग' खिला हुआ फूल है और उस कली को खिलानेवाली कौन-सी चीज है? वही, जिसकी मुझे अनजाने ही तलाश थी और जिसे मैं अब पा गया था।

– उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

अपनी करनी

आह, अभागा मैं! मेरे कर्मों के फल ने आज यह दिन दिखाए कि अपमान भी मेरे ऊपर हँसता है। और यह सब मैंने अपने हाथों किया। शैतान के सिर इलजाम क्यों दूँ, किस्मत को खरी-खोटी क्यों सुनाऊँ, होनी को क्यों रोऊँ। जो कुछ किया मैंने जानते और बूझते हुए किया। अभी एक साल गुजरा जब मैं भाग्यशाली था, प्रतिष्ठित था और समृद्धि मेरी चेरी थी।

दुनिया की नेमतें मेरे सामने हाथ बाँधे खड़ी थीं लेकिन आज बदनामी और कंगाली और शर्मिन्दगी मेरी दुर्दशा पर आँसू बहाती हैं। मैं ऊँचे खानदान का, बहुत पड़ा-लिखा आदमी था, फारसी का मुल्ला, संस्कृत का पण्डित, अंग्रेजी का ग्रेजुएट। अपने मुँह मियाँ मिहू क्या बनूँ लेकिन रूप भी मुझको मिला था, इतना कि दूसरे मुझसे ईर्ष्या कर सकते थे। गरज एक इन्सान को खुशी के साथ जिन्दगी बसर करने के लिए जितनी अच्छी चीजों की जरूरत हो सकती है वह सब मुझे हासिल थीं। सेहत का यह हाल कि मुझे कभी सरदर्द की भी शिकायत नहीं हुई। फिटन की सैर, दरिया की दिलफरेबियाँ, पहाड़ के सुन्दर दृश्य—उन खुशियों का जिक्र ही तकलीफदेह है। क्या मजे की जिन्दगी थी!

आह, यहाँ तक तो अपना दर्देदिल सुना सकता हूँ लेकिन इसके आगे फिर होंठों पर खामोशी की मुहर लगी हुई है। एक सती-साध्वी, पतिप्राणा स्त्री और दो गुलाब के फूल-से बच्चे इन्सान के लिए जिन खुशियों, आरजुओं, हौसलों और दिलफरेबियों का खजाना हो सकते हैं वह सब मुझे प्राप्त था। मैं इस योग्य नहीं कि उस पवित्र स्त्री का नाम जबान पर लाऊँ। मैं इस योग्य नहीं कि अपने को उन लड़कों का बाप कह सकूँ। मगर नसीब का कुछ ऐसा खेल था कि मैंने उन बिहिश्ती नेमतों की कद्र न की। जिस औरत ने मेरे हुक्म और अपनी इच्छा में कभी कोई भेद नहीं किया, जो मेरी सारी बुराइयों के बावजूद कभी शिकायत का एक हर्फ जबान पर नहीं लाई, जिसका गुस्सा कभी आँखों से आगे नहीं बढ़ने पाया—गुस्सा क्या था कुआर की बरखा थी, दो-चार हलकी-हलकी बूँदें पड़ी और फिर आसमान साफ हो गया—अपनी दीवानगी के नशे में मैंने उस देवी की कद्र न की। मैंने उसे जलाया, रुलाया, तड़पाया। मैंने उसके साथ दगा की। आह! जब मैं दो-दो बजे रात को घर लौटता था तो मुझे कैसे-कैसे बहाने सूझते थे, नित नए हीले गढ़ता था, शायद विद्यार्थीजीवन में जब बैण्ड के मजे मदरसे जाने की इजाजत न देते थे उस वक्त भी बुद्धि इतनी प्रखर न थी। और क्या उस क्षमा की देवी को मेरी बातों पर यकीन आता था? वह भोली थी मगर ऐसी नादान न थी। मेरी खुमारभरी औंखें और मेरे उथले भाव और मेरे झूठे प्रेम-प्रदर्शन का रहस्य क्या उससे छिपा रह सकता था? लेकिन उसकी रग-रग में शराफत भरी हुई थी, कोई कमीना खयाल उसकी जबान पर नहीं आ सकता था। वह उन बातों का जिक्र करके या अपने सन्देहों को खुलेआम दिखलाकर हमारे पवित्र संबंध में खिंचाव या बदमजगी पैदा करना बहुत अनुचित समझती थी। उसके विचार मुझे उसके माथे पर लिखे मालूम होते थे। उन बदमजगियों के मुकाबले में उसे जलना और रोसा ज्यादा पसन्द था, शायद वह समझती थी कि मेरा नशा खुद-ब-खुद उतर जाएगा। काश, इस शराफत के

बदले उसके स्वभाव में कुछ ओछापन और अनुदारता भी होती। काश, वह अपने अधिकारों को अपने हाथ में रखना जानती। काश, वह इतनी सीधी न होती। काश, वह अपने मन के भावों को छिपाने में इतनी कुशल न होती। काश, वह इतनी मक्कार न होती। लेकिन मेरी मक्कारी और उसकी मक्कारी में कितना अंतर था, मेरी मक्कारी हरामकारी थी, उसकी मक्कारी आत्मबलिदान।

एक रोज मैं अपने काम से फुरसत पाकर शाम के वक्त मनोरंजन के लिए आनन्दवाटिका में जा पहुँचा और संगमरमर के हौज पर बैठकर मछलियों का तमाशा देखने लगा। यकायक निगाह ऊपर उठी तो मैंने एक औरत को बेले की झाड़ियों में फूल चुनते देखा। उसके कपड़े मैले थे और जवानी की ताजगी और गर्व को छोड़कर उसके चेहरे में कोई खास बात न थी। उसने मेरी तरफ आँखें उठाईं और फिर अपने फूल चुनने में लग गई, गोया उसने कुछ देखा ही नहीं। उसके इस अन्दाज ने, चाहे वह उसकी सरलता ही क्यों न रही हो, मेरी वासना को और भी उद्दीप्त कर दिया। मेरे लिए यह एक नई बात थी कि कोई औरत इस तरह देखे कि जैसे उसने नहीं देखा। मैं उठा और धीरे-धीरे कभी जमीन और कभी आसमान की तरफ ताकते हुए बेले की झाड़ियों के पास जाकर खुद भी फूल चुनने लगा। इस ढिठाई का नतीजा यह हुआ कि वह मालिन की लड़की वहाँ से तेजी से इस बाग के दूसरे हिस्से में चली गई।

उस दिन से मालूम नहीं वह कौन-सा आकर्षण था जो मुझे रोज शाम के वक्त आनन्दवाटिका की तरफ खींच ले जाता। उसे मुहब्बत हरगिज नहीं कह सकते। अगर मुझे उस चखा भगवान न करे उस लड़की के बारे में कोई शोक-समाचार मिलता तो शायद मेरी आँखों से आँसू भी न निकलते, जोगिया धारण करने की तो चर्चा ही व्यर्थ है। मैं रोज जाता और नए-नए रूप धरकर जाता लेकिन जिस प्रकृति ने मुझे अच्छा रूप-रंग दिया था उसी ने मुझे वाचालता से वंचित भी कर रखा था। मैं रोज जाता और रोज लौट आता, प्रेम की मंजिल में एक कदम भी आगे न बढ़ पाता था। हाँ, इतना अलबत्ता हो गया कि उसे वह पहली-सी झिझक न रही।

आखिर इस शान्तिपूर्ण नीति को सफल न होते देखकर मैंने एक नई युक्ति सोची। एक रोज मैं अपने साथ अपने शैतान बुलडाग टामी को भी साथ लेता गया। जब शाम हो गई और वह मेरे धैर्य का नाश करनेवाली फूलों से आँचल भरकर अपने घर की ओर चली तो मैंने अपने बुलडाग को धीरे से इशारा कर दिया। बुलडाग उसकी तरफ बाज की तरह झपटा, फूलमती ने एक चीख मारी, दो-चार कदम दौड़ी और जमीन पर गिर पड़ी। अब मैं छड़ी हिलाता, बुलडाग की तरफ गुस्से भरी आँखों से देखता और हांय-हांय चिल्लाता हुआ दौड़ा और उसे जोर से दो-तीन डंडे लगाए। फिर मैंने बिखरे हुए फूलों को समेटा, सहमी हुई औरत का हाथ पकड़कर उसे बिठा दिया और बहुत लज्जित और दु: खी भाव से बोला—यह कितना बड़ा बदमाश है, अब इसे अपने साथ कभी न लाऊँगा। तुम्हें इसने काट तो नहीं लिया?

फूलमती ने चादर से सर को ढाँकते हुए कहा—तुम न आ जाते तो वह मुझे नोच डालता। मेरे तो जैसे मन-मन भर के पैर हो गए थे। मेरा कलेजा तो अ भी तक धड़क रहा है।

यह तीर लक्ष्य पर बैठा, खामोशी की मुहर टूट गई, बातचीत का सिलसिला कायम हुआ। बाँध में एक दरार हो जाने की देर थी, फिर तो मन की उमंगों ने खुद-ब-खुद काम करना

शुरू' किया। मैंने जैसे-जैसे जाल फैलाए, जैसे-जैसे स्वांग रचे, वह रंगीन तबीयत के लोग खूब जानते हैं। और यह सब क्यों? मुहब्बत से नहीं सिर्फ जरा देर दिल को खुश करने के लिए सिर्फ उसके भरे-पूरे शरीर और भोलेपन पर रीझकर। यों मैं बहुत नीच प्रकृति का आदमी नहीं हूँ। रूप-रंग में फूलमती का इन्दु से मुकाबला न था। वह सुंदरता के साँचे में ढली हुई थी। कवियों ने सौन्दर्य की जो कसौटियाँ बनाई हैं वह सब वहाँ दिखाई देती थीं। लेकिन पता नहीं क्यों मैंने फूलमती की घुसी हुई आँखों और फूले हुए गालों और मोटे-मोटे होंठों की तरफ अपने दिल का ज्यादा खिंचाव देखा। आना-जाना बढ़ा और महीनाभर भी गुजरने न पाया था कि मैं उसकी मुहब्बत के जाल में पूरी तरह फँस गया। मुझे अब घर की सादा जिन्दगी में कोई आनन्द न आता था। लेकिन दिल ज्यों-ज्यों घर से उचटता जाता था त्यों-त्यों मैं पत्नी के प्रति प्रेम का प्रदर्शन और भी अधिक करता था। मैं उसकी फरमाइशों का इन्तजार करता रहता और कभी उसका दिल दुखानेवाली कोई बात मेरी जबान पर न आती। शायद मैं अपनी आतरिक उदासीनता को शिष्टाचार के पर्दे में छिपाना चाहता था।

धीरे-धीरे दिल की यह कैफियत भी बदल गई और बीवी की तरफ से उदासीनता दिखाई देने लगी। घर में कपड़े नहीं हैं लेकिन मुझसे इतना न होता कि पूछ लूँ। सच यह है कि मुझे अब उसकी खातिरदारी करते हुए एक डर-सा मालूम होता था कि कहीं उसकी खामोशी की दीवार टूट न जाय और उसके मन के भाव जबान पर न आ जाएँ। यहाँ तक कि मैंने गिरस्ती की जरूरतों की तरफ से आँखें बन्द कर लीं। अब मेरा दिल और जान और रुपया-पैसा सब फूलमती के लिए था। मैं खुद कभी सुनार की दुकान पर न गया था लेकिन आजकल कोई मुझे पहर रात गए एक मशहूर सुनार के मकान पर बैठा हुआ देख सकता था। बजाज की दुकान में भी मुझे रुचि हो गई।

:: 2 ::

एक रोज शाम के वक्त रोज की तरह मैं आनन्दवाटिका में सैर कर रहा था और फूलमती सोलहों सिंगार किए मेरी सुनहरी-रूपहली भेंटों से लदी हुई, एक रेशमी साड़ी पहने बाग की क्यारियों में फूल तोड़ रही थी, बल्कि यों कहो कि अपनी चुटकियों में मेरे दिल को मसल रही थी। उसकी छोटी-छोटी आँखें उस वक्त हुस्न के नशे से फैल गई थीं और उनमें शोखी और मुस्कराहट की झलक नजर आती थी। अचानक महाराजा साहब भी अपने कुछ दोस्तों के साथ मोटर पर सवार आ पहुँचे। मैं उन्हें देखते ही अगवानी के लिए दौड़ा और आदाब बजा लाया। बेचारी फूलमती महाराजा साहब को पहचानती थी लेकिन उसे एक घने कुंज के अलावा और कोई छिपने की जगह न मिल सकी। महाराजा साहब चले तो हौज की तरफ लेकिन मेरा दुर्भाग्य उन्हें उसी क्यारी पर ले चला जिधर फूलमती छिपी हुई थर-थर काँप रही थी।

महाराजा साहब ने उसकी तरफ आश्चर्य से देखा और बोले—यह कौन औरत है? सब लोग मेरी ओर प्रश्नभरी आखों से देखने लगे और मुझे भी उस वक्त यही ठीक मालूम हुआ कि इसका जवाब मैं ही दूँ वर्ना फूलमती न जाने क्या आफत ढा दे। लापरवाही के अन्दाज से बोला—इसी बाग के माली की लड़की है, यहाँ फूल तोड़ने आई होगी।

फूलमती लज्जा और भय के मारे जमीन में धँसी जाती थी। महाराज साहब ने उसे सर से पाँव तक गौर से देखा और तब संदेहशील भाव से मेरी तरफ देखकर बोले—यह माली की लड़की है?

मैं इसका क्या जवाब देता। इसी बीच कम्बख्त दुर्जन माली भी अपनी फटी हुई पाग संभालता, हाथ में कुदाल लिये दौड़ता हुआ आया और सर को घुटनों से मिलाकर महाराज को प्रणाम किया। महाराज ने जरा तेज लहजे में पूछा-यह तेरी लड़की हे?

माली के होश उड़ गए काँपता हुआ बोला—हुजूर!

महाराज—तेरी तनख्वाह क्या है?

दुर्जन—हुजूर, पाँच रुपये।

महाराज—यह लड़की कुँवारी है या ब्याही?

दुर्जन—हुजूर, अ भी कुँवारी है।

महाराज ने गुस्से में कहा—या तो तू चोरी करता है या डाका मारता है वर्ना यह कभी नहीं हो सकता कि तेरी लड़की अमीरजादी बनकर रह सके। मुझे इसी वक्त इसका जवाब देना होगा वर्ना मैं तुझे पुलिस के सुपुर्द कर दूँगा। ऐसे चाल-चलन के आदमी को मैं अपने यहाँ नहीं रख सकता।

माली की तो घिग्घी बँध गई और मेरी यह हालत थी कि काटो तो बदन में लहू नहीं। दुनिया अँधेरी मालूम होती थी। मैं समझ गया कि आज मेरी शामत सर पर सवार है। वह मुझे जड से उखाड़कर दम लेगी। महाराजा साहब ने माली को जोर से डाँटकर पूछा—तू खामोश क्यों है, बोलता नहीं?

दुर्जन फूट-फूटकर रोने लगा। जब जरा आवाज सुधरी तो बोला—हुजूर, बाप-दादे से सरकार का नमक खाता हूँ, अब मेरे बुढापे पर दया कीजिए, यह सब मेरे फूटे नसीबों का फेर है धर्मावतार। इस छोकरी ने मेरी नाक कटा दी, कुल का नाम मिटा दिया। अब मैं कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं हूँ। इसको सब तरह से समझा-बुझाकर हार गए हुजूर, लेकिन मेरी बात सुनती ही नहीं तो क्या करूँ। हुजूर माई-बाप हैं, आपसे क्या पर्दा करूँ, उसे अब अमीरों के साथ रहना अच्छा लगता है और आजकल के रईसों और अमीरों को क्या कहूँ, दीनबन्धु सब जानते हैं।

महाराजा साहब ने जरा देर गौर करके पूछा—क्या उसका किसी सरकारी नौकर से संबंध है?

दुर्जन ने सर झुकाकर कहा—हुजूर।

महाराजा साहब—वह कौन आदमी है तुम्हें उसे बतलाना होगा।

दुर्जन—महाराज जब पूछेंगे बता दूँगा, साँच को आँच क्या।

मैंने तो समझा था कि शायद इसी वक्त पर्दाफाश हुआ जाता है लेकिन महाराजा साहब ने अपने दरबार के किसी मुलाजिम की इज्जत को इस तरह मिट्टी में मिलाना ठीक नहीं समझा। वे वहाँ से टहलते हुए मोटर पर बैठकर महल की तरफ चले।

:: 3 ::

इस मनहूस वाकये के एक हफ्ते बाद एक रोज मैं दरबार से लौटा तो मुझे अपने घर में से एक बूढ़ी औरत बाहर निकलती हुई दिखाई दी। उसे देखकर मैं ठिठका। उसके चेहरे पर वह बनावटी भोलापन था जो कुटनियों के चेहरे की खास बात है। मैंने उसे डाँटकर पूछा—तू कौन है, यहाँ क्यों आई है?

बुढ़िया ने दोनों हाथ उठाकर मेरी बलाएं लीं और बोली—बेटा, नाराज न हो, गरीब भिखारी हूँ? मालकिन का सुहाग भरपूर रहे उसे जैसा सुनती थी वैसा ही पाया। यह कहकर उसने जल्दी से कदम उठाए और बाहर चली गई। मेरे गुस्से का पारा चढ़ा, मैंने घर में जाकर पूछा—यह कौन औरत आई थी?

मेरी बीवी ने सर झुकाए हुए धीरे से जवाब दिया—क्या जानूँ, कोई भिखारिन थी।

मैंने कहा—भिखारिनों की सूरत ऐसी नहीं हुआ करती, यह तो मुझे कुटनी-सी नजर आती है। साफ-साफ बताओ उसके यहाँ आने का क्या मतलब था?

लेकिन बजाय इसके कि इन संदेहभरी बातों को सुनकर मेरी बीवी गर्व से सिर उठाए और मेरी तरफ उपेक्षाभरी आँखों से देखकर अपनी साफदिली का सुबूत दे, उसने सर झुकाए हुए जवाब दिया—मैं उसके पेट में थोड़े ही बैठी थी। भीख माँगने आई थी, भीख दे दी, किसी के दिल का हाल कोई क्या जाने!

उसके लहजे और अंदाज से पता चलता था कि वह जितना जबान से कहती है उससे बहुत ज्यादा उसके दिल में है। झूठा आरोप लगाने की कला में वह अभी बिलकुल कच्ची थी वर्ना तिरिया चरित्तर की थाह किसे मिलती है। मैं देख रहा था कि उसके हाथ-पाँव थरथरा रहे हैं। मैंने झपटकर उसका हाथ पकड़ा और उसके सर को ऊपर उठाकर बड़े गम्भीर क्रोध से बोला—इन्दु, तुम जानती हो कि मुझे तुम्हारा कितना एतबार है लेकिन अगर तुमने इसी वक्त सारी घटना सच-सच न बतला दी तो मैं नहीं कह सकता कि इसका नतीजा क्या होगा। तुम्हारा ढंग बतलाता है कि कुछ न कुछ दाल में काला जरूर है। यह खूब समझ रखी कि मैं अपनी इज्जत को तुम्हारी और अपनी जानों से ज्यादा अजीज समझता हूँ। मेरे लिए यह डूब मरने की जगह है कि मैं अपनी बीवी से इस तरह की बातें करूँ, उसकी ओर से मेरे दिल में संदेह पैदा हो। मुझे अब ज्यादा सब की गुंजाइश नहीं है। बोलो क्या बात है?

इन्दुमती मेरे पैरों पर गिर पड़ी और रोकर बोली—मेरा कुसूर माफ कर दो।

मैंने गरजकर कहा—वह कौन-सा कुसूर है?

इन्दुमती ने संभलकर जवाब दिया—तुम अपने दिल में इस वक्त जो खयाल कर रहे हो उसे एक पल के लिए भी वहाँ न रहने दो, वर्ना समझ लो कि आज ही इस जिंदगी का खात्मा है। मुझे नहीं मालूम था कि तुम मेरी तरफ से ऐसे खयाल रखते हो। मेरा परमात्मा जानता है कि तुमने मेरे ऊपर जो जुल्म किए हैं उन्हें मैंने किस तरह झेला है, और अब भी सब कुछ झेलने के लिए तैयार हूँ। मेरा सर तुम्हारे पैरों पर है, जिस तरह रखोगे, रहूँगी। लेकिन आज मुझे मालूम हुआ कि तुम जैसे खुद हो वैसा ही दूसरों को समझते हो। मुझसे भूल अवश्य हुई है लेकिन उस भूल की यह सजा नहीं कि तुम मुझ पर ऐसे सन्देह करो। मैंने उस औरत की बातों में आकर अपने घर का सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दिया। मैं समझती थी कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए लेकिन कुछ तो उस औरत की हमदर्दी और कुछ मेरे अंदर सुलगती हुई आग ने मुझसे यह भूल करवाई और इसके लिए तुम जो सजा दो वह मेरे

सर-आँखों पर।

मेरा गुस्सा जरा धीमा हुआ। बोला—तुमने उससे क्या कहा?

इन्दुमती ने जवाब दिया—घर का जो कुछ हाल है, तुम्हारी बेवफाई, तुम्हारी लापरवाही, तुम्हारा घर की जरूरतों की फिक्र न रखना। अपनी बेवकूफी को क्या कहूँ, मैंने उससे यहाँ तक कह दिया कि इधर तीन महीने से उन्होंने घर के लिए कुछ खर्च भी नहीं दिया और इसकी चोट मेरे गहनों पर पड़ी। तुम्हें शायद मालूम नहीं कि इन तीन महीनों में मेरे साढ़े चार सौ रुपये के जेवर बिक गए। न मालूम क्यों मैं उससे यह सब कुछ कह गई। जब इन्सान का दिल जलता है तो जबान तक उसकी आँच आ ही जाती है। मगर मुझसे जो कुछ खता हुई उससे कई गुनी सख्त सजा तुमने मुझे दी है मेरा बयान लेने का भी सब्र न हुआ। खैर, तुम्हारे दिल की कैफियत मुझे मालूम हो गई, तुम्हारा दिल मेरी तरफ से साफ नहीं है, तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं रहा वर्ना एक भिखारिन औरत के घर से निकलने पर तुम्हें ऐसे शुबहे क्यों होते।

मैं सर पर हाथ रखकर बैठ गया। मालूम हो गया कि तबाही के सामान पूरे हुए जाते हैं।

:: 4 ::

दूसरे दिन मैं ज्योंही दफ्तर पहुँचा चोबदार ने कहा—महाराजा साहब ने आपको याद किया है।

मैं तो अपनी किस्मत का फैसला पहले से ही किए बैठा था। मैं खूब समझ गया था कि वह बुढ़िया खुफिया पुलिस की कोई मुखबिर है जो मेरे घरेलू मामलों की जाँच के लिए तैनात हुई होगी। कल उसकी रिपोर्ट आई होगी और आज मेरी तलबी है। खौफ से सहमा हुआ लेकिन दिल को किसी तरह संभाले हुए कि जो कुछ सर पर पड़ेगी देखा जाएगा, अभी से क्यों जान दूँ, मैं महाराजा की खिदमत में पहुँचा। वह इस वक्त अपने पूजा के कमरे में अकेले बैठे हुए थे, कागजों का एक ढेर इधर-उधर फैला हुआ था और वह खुद किसी खयाल में डूबे हुए थे। मुझे देखते ही वह मेरी तरफ मुखातिब हुए, उनके चेहरे पर नाराजगी के लक्षण दिखाई दिए बोले—कुँवर श्यामसिंह, मुझे बहुत अफसोस है कि तुम्हारी बाबत मुझे जो बातें मालूम हुई हैं वह मुझे इस बात के लिए मजबूर करती हैं कि तुम्हारे साथ सख्ती का बर्ताव किया जाए। तुम मेरे पुराने वसीकादार हो और तुम्हें यह गौरव कई पीढ़ियों से प्राप्त है। तुम्हारे बुजुर्गों ने हमारे खानदान की जान लगाकर सेवाएँ की हैं और उन्हीं के सिले में यह वसीका दिया गया था लेकिन तुमने अपनी हरकतों से अपने को इस कृपा के योग्य नहीं रखा। तुम्हें इसलिए वसीका मिलता था कि तुम अपने खानदान की परवरिश करो, अपने लड़कों को इस योग्य बनाओ कि वह राज्य की कुछ खिदमत कर सकें, उन्हें शारीरिक और नैतिक शिक्षा दो ताकि तुम्हारी जात से रियासत की भलाई हो, न कि इसलिए कि तुम इस रुपये को बेहूदा ऐशपरस्ती और हरामकारी में खर्च करो। मुझे इस बात से बहुत ही तकलीफ होती है कि तुमने अब अपने बाल-बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी से भी अपने को मुका समझ लिया है। अगर तुम्हारा यही ढंग रहा तो यकीनन वसीकादारों का एक पुराना खानदान मिट जाएगा। इसलिए आज से हमने तुम्हारा नाम वसीकादारों की

फेहरिस्त से खारिज कर दिया और तुम्हारी जगह तुम्हारी .बीवी का नाम दर्ज किया गया। वह अपने लड़ुकों को पालने-पोसने की जिम्मेदार है। तुम्हारी बीवी का नाम रियासत के मालियों की फेहरिस्त में लिखा जाएगा, तुमने अपने को इसी के योग्य सिद्ध किया है और मुझे उम्मीद है कि यह तबादला तुम्हें नागवार न होगा। बस, जाओ और मुमकिन हो तो अपने किए पर पछता।

:: 5 ::

मुझे कुछ कहने का साहस न हुआ। मैंने बहुत धैर्यपूर्वक अपनी किस्मत का यह फैसला सुना और घर की तरफ चला। लेकिन दो ही चार कदम चला था कि अचानक खयाल आया किसके घर जा रहे हो, तुम्हारा घर अब कहाँ है? मैं उलटे कदम लौटा। जिस घर का मैं राजा था वहाँ दूसरों का आश्रित बनकर मुझसे नहीं रहा जाएगा और रहा भी जाए तो मुझे रहना नहीं चाहिए। मेरा आचरण निश्चय ही अनुचित था लेकिन मेरी नैतिक संवेदना अभी इतनी भोंथी न हुई थी। मैंने पक्का इरादा कर लिया कि इसी वक्त इस शहर से भाग जाना मुनासिब है वर्ना बात फैलते ही हमदर्दों और बुरा चेतनेवालों का एक जमघट हालचाल पूछने के लिए आ जाएगा, दूसरों की सूखी हमदर्दियाँ सुननी पड़ेगी जिनके पर्दे में खुशी झलकती होगी। एक बार, सिर्फ एक बार, मुझे फूलमती का खयाल आया। उसके कारण यह सब दुर्गत हो रही है, उससे तो मिल ही लूँ। मगर दिल ने रोका, क्या एक वैभवशाली आदमी की जो इज्जत होती थी वह अब मुझे हासिल हो सकती है? हरगिज नहीं। रूप की मण्डी में वफा और मुहब्बत के मुकाबले में रुपया-पैसा ज्यादा कीमती चीज है। मुमकिन है इस वक्त मुझ पर तरस खाकर या क्षणिक आवेश में आकर फूलमती मेरे साथ चलने पर आमादा हो जाए लेकिन उसे लेकर कहाँ जाऊँगा? पाँवों में बेड़ियाँ डालकर चलना तो और भी मुश्किल है। इस तरह सोच-विचारकर मैंने बम्बई की राह ली और अब दो साल से एक मिल में नौकर हूँ तनख्वाह सिर्फ इतनी है कि ज्यों-त्यों जिन्दगी का सिलसिला चलता रहे लेकिन ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ और इसी को यथेष्ट समझता हूँ। मैं एक बार गुपा रूप से अपने घर गया था। फूलमती ने एक दूसरे रईस से रूप का सौदा कर लिया है, लेकिन मेरी पत्नी ने अपने प्रबन्ध-कौशल से घर की हालत खूब संभाल ली है। मैंने अपने मकान को रात के समय लालसाभरी आँखों से देखा—दरवाजे पर दो लालटेनें जल रही थीं और बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे। हर तरफ सफाई और सुथरापन दिखाई देता था। मुझे कुछ अखबारों को देखने से मालूम हुआ कि महीनों तक मेरे पते-निशान के बारे में अखबारों में इश्तहार छपते रहे। लेकिन अब यह सूरत लेकर मैं वहाँ क्या जाऊँगा और यह कालिख लगा मुँह किसको दिखाऊँगा। अब तो मुझे इसी गिरी पड़ी हालत में जिन्दगी के दिन काटने हैं, चाहे रोकर काटूँ या हँसकर। मैं अपनी हरकतों पर अब बहुत शर्मिन्दा हूँ। अफसोस, मैंने उन नेमतों की कद्र न की उन्हें लात से ठोकर मारी, यह उसी की सजा है कि आज मुझे यह दिन देखना पड़ रहा है। मैं वह परवाना हूँ जिसकी खाक भी हवा के झोंकों से न बची।

–जमाना, सितम्बर-अक्टूबर, *1914*

गैरत की कटार

कितनी अफसोसनाक, कितनी दर्दभरी बात है कि वही औरत जो कभी हमारे पहलू में बसती थी उसी के पहलू में चुभने के लिए हमारा तेज खंजर बेचैन हो रहा है। जिसकी आँखें हमारे लिए अमृत के छलकते हुए प्याले थीं वही आँखें हमारे दिल में आग और तूफान पैदा करें! रूप उसी वक्त तक राहत और खुशी देता है जब तक उसके भीतर एक रूहानी नेमत होती है और जब तक उसके अंदर औरत की वफा की रूह हरकत कर रही हो वर्ना वह एक तकलीफ देनेवाली चीज है, जहर और बदबू से भरी हुई, इसी काबिल कि वह हमारी निगाहों से दूर रहे और पंजे और नाखून कटार क्य शिकार बने। एक जमाना वह था कि नईमा हैदर की आरजुओं की देवी थी, यह समझना मुश्किल था कि कौन तलबगार है और कौन उस तलब को पूरा करनेवाला। एक तरफ पूरी-पूरी दिलजोई थी, दूसरी तरफ पूरी-पूरी रजा। तब तकदीर ने पासा पलटा। गुली-बुलबुल में सुबह की हवा की शरारतें शुरू हुईं। शाम का वक्त था। आसमान पर लाली छाई हुई थी। नईमा उमंग और ताजगी और शौक से उमड़ी हुई कोठे पर आई। शफक की तरह उसका चेहरा भी उस वक्त खिला हुआ था। ऐन उसी वक्त वहाँ का सूबेदार नासिर अपने हवा की तरह तेज घोड़े पर सवार उधर से निकला। ऊपर निगाह उठी तो हुस्न का करिश्मा नजर आया कि जैसे चाँद शफक के हौज में नहाकर निकला है। तेज निगाह जिगर के पार हुई। कलेजा थामकर रह गया। अपने महल को लौटा, अधमरा, टूटा हुआ। मुसाहिबों ने हकीम की तलाश की और तब राह-रस्म पैदा हुई। फिर इश्क की दुश्वार मंजिलें तय हुई। वफा और हया ने बहुत बेरुखी दिखाई। मगर मुहब्बत के शिकवे और इश्क की कुफ्र तोड़नेवाली धमकियाँ आखिर जीतीं। अस्मत का खजाना लुट गया। उसके बाद वही हुआ जो हो सकता था। एक तरफ से बदगुमानी, दूसरी तरफ से बनावट और मक्कारी। मनमुटाव की नौबत आई, फिर एक-दूसरे के दिल को चोट पहुँचाना शुरू हुआ। यहाँ तक कि दिलों में मैल पड़ गई। एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए। नईमा ने नासिर की मुहब्बत की गोद में पनाह ली और आज एक महीने की बेचैन इन्तजारी के बाद हैदर अपने जच्चात के साथ नंगी तलवार पहलू में छिपाए अपने जिगर के भड़कते हुए शोलों को नईमा के खून से बुझाने के लिए आया हुआ है।

:: 2 ::

आधी रात का वक्त था और अंधेरी रात थी। जिस तरह आसमान के हरमसरा में हुस्न के सितारे जगमगा रहे थे उसी तरह नासिर का हरम भी हुस्न के दीपों से रोशन था। नासिर एक हफ्ते से किसी मोर्चे पर गया हुआ है इसलिए दरबान गाफिल हैं। उन्होंने हैदर को देखा मगर उनके मुँह सोने-चाँदी से बन्द थे। ख्वाजासराओं की निगाह पड़ी लेकिन वह पहले ही एहसान के बोझ से दब चुके थे। खवासों और कनीजों ने भी मतलब-भरी निगाहों से उसका स्वागत किया और हैदर बदला लेने के नशे में गुनहगार नईमा के सोने के कमरे में जा पहुँचा, जहाँ की हवा संदल और गुलाब से बसी हुई थी।

कमरे में एक मोमी चिरत जल रहा था और उसी की भेद-भरी रोशनी में आराम और तकल्लुफ की सजावटें नजर आती थीं जो सतीत्व जैसी अनमोल चीज के बदले में खरीदी गई थीं। वहीं वै भव और ऐश्वर्य की गोद में लेटी हुई नईमा सो रही थी।

हैदर ने एक बार नईमा को आँख भर देखा। वही मोहिनी सूरत थी, वही आकर्षक लावण्य और वही इच्छाओं को जगानेवाली ताजगी। वही युवती जिसे एक बार देखकर भूलना अस भव था।

हाँ, वही नईमा थी, वही गोरी बहिं जो कभी उसके गले का हार बनती थीं वही कसूरी में बसे हुए बाल जो कभी उसके कन्धों पर लहराते थे वही फूल जैसे गाल जो उसकी प्रेम-भरी आँखों के सामने लाल हो जाते थे। इन्हीं गोरी-गोरी कलाइयों में उसने अभी-अभी खिली हुई कलियों के कंगन पहनाए थे और जिन्हें वह वफा के कंगन समझा था। इसी गले में उसने फूलों के हार सजाए थे और उन्हें प्रेम का हार खयाल किया था। लेकिन उसे क्या मालूम था कि फूलों के हार और कलियों के कंगन के साथ वफा के कंगन और प्रेम के हार भी मुरझा जाएँगे।

हाँ, यह वही गुलाब के-से होंठ हैं जो कभी उसकी मुहब्बत में फूल की तरह खिल जाते थे, जिनसे मुहब्बत की सुहानी महक उड़ती थी और यह वही सोना है जिसमें कभी उसकी मुहब्बत और वफा का जलवा था, जो कभी उसकी मुहब्बत का घर था।

मगर जिस फूल में दिल की महक थी, उसमें दगा के काटे हैं।

:: 3 ::

हैदर ने तेज कटार पहलू से निकाली और दबे पाँव नईमा की तरफ आया, लेकिन उसके हाथ न उठ सके। जिसके साथ उम्रभर जिन्दगी की सैर की उसकी गर्दन पर छुरी चलाते हुए उसका हृदय द्रवित हो गया। उसकी आँखें भीग गईं, दिल में हसरत भरी यादगारों का एक तूफान-सा आ गया। तकदीर की क्या खूबी है कि जिस प्रेम का आरंभ ऐसा खुशी से भरपूर हो उसका अन्त इतना पीड़ाजनक हो। उसके पैर थरथराने लगे। लेकिन स्वाभिमान ने ललकारा, दीवार पर लटकी हुई तसवीरें उसकी इस कमजोरी पर मुस्कराई।

मगर कमजोर इरादा हमेशा सवाल और दलील की आड़ लिया करता है। हैदर के दिल में खयाल पैदा हुआ, क्या इस मुहब्बत के बाग को उजाड़ने का इल्जाम मेरे ऊपर नहीं है? जिस वक्त बदगुमानियों के अंखुए निकले, अगर मैंने तानों और धिक्कारों के बजाय मुहब्बत से काम लिया होता तो आज यह दिन न आता। मेरे ही जुल्मों ने मुहब्बत और वफा की जड़ काटी। औरत कमजोर होती है, किसी सहारे के बगैर नहीं रह सकती। जिस औरत ने मुहब्बत के मजे उठाए हों और उल्फत की नाजबरदारियाँ देखी हों वह तानों और जिल्लतों की आँच क्या सह सकती है? लेकिन फिर गैरत ने उकसाया कि जैसे वह धुँ धला चिराग भी उसकी कमजोरियों पर हँसने लगा।

स्वाभिमान और तर्क में सवाल-जवाब हो रहा था कि अचानक नईमा ने करवट बदली और अंगड़ाई ली। हैदर ने फौरन तलवार उठाई, जान के खतरे में आगा-पीछा कहाँ। दिल ने फैसला कर लिया, तलवार अपना काम करनेवाली ही थी कि नईमा ने ओखें खोल दीं। मौत

की कटार सिर पर नजर आई। वह घबराकर उठ बैठी। हैदर को देखा, परिस्थिति समझ में आ गई। बोली—हैदर!

:: 4 ::

हैदर ने अपनी झेंप को गुस्से के पर्दे में छिपाकर कहा—हाँ, मैं हूँ हैदर।

नईमा सिर झुकाकर हसरतभरे ढंग से बोली-तुम्हारे हाथों में यह चमकती हुई तलवार देखकर मेरा कलेजा थरथरा रहा है। तुम्हीं ने मुझे नाजबरदारियों का आदी बना दिया है। जरा देर के लिए इस कटार को मेरी अस्त्रों से छिपा लो। मैं जानती हूँ कि तुम मेरे खून के प्यासे हो, लेकिन मुझे न मालूम था कि तुम इतने बेरहम और संगदिल हो। मैंने तुमसे दगा की है, तुम्हारी खतावार हूँ लेकिन हैदर, यकीन मानो, अगर मुझे चन्द आखिरी बातें कहने का मौका न मिलता तो शायद मेरी रूह को दोजख में भी यही आरजू रहती। मौत की सजा से पहले अपने घर वालों से आखिरी मुलाकात की इजाजत होती है 1 क्या तुम मेरे लिए इतनी रियायत के भी रवादार न थे? माना कि अब तुम मेरे कोई नहीं हो मगर किसी वक्त थे और तुम चाहे अपने दिल में समझते हो कि मैं सब कुछ भूल गई लेकिन मैं मुहब्बत को इतनी भूल जानेवाली नहीं हूँ। अपने ही दिल से फैसला करो। तुम मेरी बेवफाइयाँ चाहे भूल जाओ लेकिन मेरी मुहब्बत की दिल तोड़नेवाली यादगारें नहीं मिटा सकते। मेरी आखिरी बातें सुन लो और इस नापाक जिन्दगी का किस्सा पाक करो। मैं साफ-साफ कहती हूँ इस आखिरी वक्त में क्यों डरूँ। मेरी जो कुछ दुर्गत हुई है उसके जिम्मेदार तुम हो। नाराज न हो। अगर तुम्हारा खयाल है कि मैं यहाँ फूलों की सेज पर सोती हूँ तो वह गलत है। मैंने औरत की शर्म खोकर उसकी कद्र जानी है। मैं हसीन हूँ नाजुक हूँ दुनिया की नेमतें मेरे लिए हाजिर हैं नासिर मेरी इच्छा का गुलाम है लेकिन मेरे दिल से यह खयाल कभी दूर नहीं होता कि वह सिर्फ मेरे हुस्न और अदा का बंदा है। मेरी इज्जत उसके दिल में कभी हो भी नहीं सकती। क्या तुम जानते हो कि यहाँ खवासों और दूसरी बीवियों के मतलब-भरे इशारे मेरे खून और जिगर को नहीं जलाते। ओक्, मैंने अस्मत खोकर अस्मत की कद्र जानी है लेकिन मैं कह चुकी हूँ और फिर कहती हूँ कि इसके तुम जिम्मेदार हो।

हैदर ने पहलू बदलकर पूछा—क्योंकर?

नईमा ने उसी अंदाज से जवाब दिया—तुमने मुझे बीवी बनाकर नहीं, माशूक बनाकर रखा। तुमने मुझे नाजबरदारियों का आदी बनाया लेकिन फर्ज का सबक नहीं पढ़ाया। तुमने कभी न अपनी बातों से न कामों से मुझे यह खयाल करने का मौका दिया कि इस मुहब्बत की बुनियाद फर्ज पर है। तुमने मुझे हमेशा हुस्न और मस्तियों के तिलिस्म में फँसा रखा और मुझे ख्वाहिशों का गुलाम बना दिया। किसी किश्ती पर अगर फर्ज का मल्लाह न हो तो फिर उसे दरिया में डूब जाने के सिवा और कोई चारा नहीं। लेकिन अब बातों से क्या हासिल, अब तो तुम्हारी गैरत की कटार मेरे खून की प्यासी है और यह लो मेरा सिर उसके सामने झुका हुआ है। हाँ, मेरी एक आखिरी तमन्ना है, अगर तुम्हारी इजाजत पाऊँ तो कहूँ।

यह कहते-कहते नईमा की आँखों में औंसुओं की बाढ़ आ गई और हैदर की गैरत उसके सामने न ठहर सकी। उदास स्वर में बोला—क्या कहती हो?

नईमा ने कहा—अच्छा, इजाजत दी है तो इनकार न करना। मुझे एक बार फिर उन अच्छे दिनों की याद ताजा कर लेने दो जब मौत की कटार नहीं मुहब्बत के तीर जिगर को छेदा करते थे, एक बार फिर मुझे अपनी मुहब्बत की बाहों में ले लो। मेरी आखिरी विनती है, एक बार फिर अपने हाथों को मेरी गर्दन का हार बना दो। भूल जाओ कि मैंने तुम्हारे साथ दगा की है, भूल जाओ कि यह जिस्म गंदा और नापाक है, मुझे मुहब्बत से गले लगा लो और यह मुझे दे दो। तुम्हारे हाथों में यह अच्छी नहीं मालूम होती। तुम्हारे हाथ मेरे ऊपर न उठेंगे। देखो कि एक कमजोर औरत किस तरह गैरत की कटार को अपने जिगर में रख लेती है।

यह कहकर नईमा ने हैदर के कमजोर हाथों से वह चमकती हुई तलवार छीन ली और उसके सीने से लिपट गई। हैदर झिझका लेकिन वह सिर्फ ऊपरी झिझक थी। अभिमान और प्रतिशोध-भावना की दीवार टूट गई। आलिंगन-पाश में बँध गए और दोनों की आँखें उमड़ आई।

नईमा के चेहरे पर एक सुहानी, प्राणदायिनी मुस्कराहट दिखाई दी और मतवाली आँखों में खुशी की लाली झलकने लगी। बोली—आज कैसा मुबारक दिन है कि दिल की सब आरजुएँ पूरी होती जाती हैं लेकिन यह कम्बख्त आरजुएँ कभी पूरी नहीं होतीं। इस सीने से लिपटकर मुहब्बत की शराब के बगैर नहीं रहा जाता। तुमने मुझे कितनी बार प्रेम के प्याले पिलाए हैं। उस सुराही और उस प्याले की याद नहीं भूलती। आज एक बार फिर उल्फत की शराब के दौर चलने दो। मौत की शराब से पहले उल्फत की शराब पिला दो। एक बार फिर मेरे हाथों से प्याला ले लो। मेरी तरफ उन्हीं प्यार की निगाहों से देखकर, जो कभी आँखों से न उतरती थीं, पी जाओ। मरती हूँ तो खुशी से मरूँ।

नईमा ने अगर सतीत्व खोकर सतीत्व का मूल्य जाना था, तो हैदर ने भी प्रेम खोकर प्रेम का मूल्य जाना था। उस पर इस समय एक मदहोशी छाई हुई थी। लज्जा और याचना और झुका हुआ सिर, यह गुस्से और प्रतिशोध के जानी दुश्मन हैं और एक औरत के नाजुक हाथों में तो उनकी काट तेज तलवार को मात कर देती है। अंगूरी शराब के दौर चले और हैदर ने मस्त होकर प्याले खाली करने शुरू किए। उसके जी में बार-बार आता था कि नईमा के पैरों पर सिर रख दूँ और उस उजड़े हुए आशियाने को आबाद कर दूँ। फिर मस्ती की कैफियत पैदा हुई और अपनी बातों पर और अपने कामों पर उसे अख्तियार न रहा। वह रोया, गिड़गिड़ाया, मिन्नतें कीं यहाँ तक कि उन दगा के प्यालों ने उसका सिर झुका दिया।

:: 5 ::

हैदर कई घंटे तक बेसुध पड़ा रहा। वह चौंका तो रात बहुत कम बाकी रह गई थी। उसने उठना चाहा लेकिन उसके हाथ-पैर रेशम की डोरियों से मजबूत बँधे हुए थे। उसने भौचक होकर इधर-उधर देखा। नईमा उसके सामने वही तेज कटार लिये खड़ी थी। उसके चेहरे पर एक कातिलों-जैसी मुस्कराहट की लाली थी। फर्जी माशूक के खूनीपन और खंजरबाजी के तराने वह बहुत बार गा चुका था मगर इस वक्त उसे इस नजारे से शायराना लुत्फ उठाने का जीवट न था। जान का खतरा, नशे के लिए तुर्शी से भी ज्यादा कातिल है। घबराकर

बोला-नईमा!

नईमा ने तेज लहजे में कहा—हाँ, मैं हूँ नईमा।

हैदर गुस्से से बोला—क्या फिर दगा का वार किया?

नईमा ने जवाब दिया—जब वह मर्द जिसे खुदा ने बहादुरी और कूवत और हौसला दिया है, दगा का वार करता है तो उसे मुझसे यह सवाल करने का कोई हक नहीं। दगा और फरेब औरतों के हथियार हैं क्योंकि औरत कमजोर होती है। लेकिन तुमकी मालूम हो गया होगा कि औरत के नाजुक हाथों में ये ही थयार कैसी काट करते हैं। यह देखो यह वही आबदार शमशीर है जिसे तुम गैरत की कटार कहते थे। अब यह गैरत की कटार मेरे जिगर में नहीं, तुम्हारे जिगर में चुभेगी। हैदर, इन्सान थोड़ा खोकर बहुत कुछ सीखता है। तुमने इज्जत और आबरू सब कुछ खोकर भी कुछ न सीखा। तुम मर्द थे। नासिर से तुम्हारी होड़ थी। तुम्हें उसके मुकाबले में अपनी तलवार के जौहर दिखाना था लेकिन तुमने निराला ढंग अख्तियार किया और एक बेकस औरत पर दया का वार करना चाहा और अब तुम उसी औरत के सामने बिना हाथ-पैर के पड़े हुए हो। तुम्हारी जान बिलकुल मेरी मुट्ठी में है। मैं एक लमहे में उसे मसल सकती हूँ और अगर मैं ऐसा करूँ तो तुम्हें मेरा शुक्रगुजार होना चाहिए क्योंकि एक मर्द के लिए गैरत की मौत बेगैरती की जिन्दगी से अच्छी है। लेकिन मैं तुम्हारे ऊपर रहम करूँगी। मैं तुम्हारे साथ फैयाजी का बर्ताव करूँगी क्योंकि तुम गैरत की मौत पाने के हकदार नहीं हो। जो गैरत चंद मीठी बातों और एक प्याला शराब के हाथों बिक जाए वह असली गैरत नहीं है। हैदर, तुम कितने बेवकूफ हो, क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि जिस औरत ने 'अपनी अस्मत जैसी अनमोल चीज देकर यह ऐश और तकल्लुफ पाया, वह जिन्दा रहकर इन नेमतों का सुख लूटना चाहती है। जब तुम सब कुछ खोकर जिंदगी से तंग नहीं हो तो मैं सब कुछ पाकर क्यों मौत की ख्वाहिश करूँ? अब रात बहुत कम रह गई है। यहाँ से जान लेकर भागो वर्ना मेरी सिफारिश भी तुम्हें नासिर के गुस्से की आग से न बचा सकेगी। तुम्हारी यह गैरत की कटार मेरे कब्जे में रहेगी और तुम्हें याद दिलाती रहेगी कि तुमने इज्जत के साथ गैरत भी खो दी।

–जमाना, जुलाई, *1916*

घमंड का पुतला

शाम हो गई थी। मैं सरयू नदी के किनारे अपने कैम्प में बैठा हुआ नदी के मजे ले रहा था कि मेरे फुटबॉल ने दबे पाँव पास आकर मुझे सलाम किया कि जैसे वह मुझसे कुछ कहना चाहता है।

फुटबॉल के नाम से जिस प्राणी का जिक्र किया गया वह मेरा अर्दली था। उसे सिर्फ एक नजर देखने से यकीन हो जाता था कि यह नाम उसके लिए पूरी तरह उचित है। वह सिर से . पैर तक आदमी की शक्ल में एक गेंद था। लंबाई-चौड़ाई बराबर। उसका भारी-भरकम पेट, जिसने उस दायरे को बनाने में खास हिस्सा लिया था, एक लम्बे कमरबन्द में लिपटा रहता था, शायद इसलिए कि वह इन्तहा से आगे न बढ़ जाए। जिस वक्त वह तेजी से चलता था बल्कि यों कहिए कि लुढ़कता था तो साफ मालूम होता था कि कोई फुटबॉल ठोकर खाकर लुढ़कता चला आता है। मैंने उसकी तरफ देखकर पूछा-क्या कहते हो?

इस पर फुटबॉल ने ऐसी रोनी सूरत बनाई कि जैसे कहीं से पिटकर आया है और बोला-हुजूर, अभी तक यहाँ रसद का कोई इंतजाम नहीं हुआ। जमींदार साहब कहते हैं कि मैं किसी का नौकर नहीं हूँ।

मैंने इस निगाह से देखा किजैसे मैं और ज्यादा नहीं सुनना चाहता। यह असंभव था कि एक मजिस्ट्रेट की शान में जमींदार से ऐसी गुस्ताखी होती। यह मेरे हाकिमाना गुस्से को भड़काने की एक बदतमीज कोशिश थी। मैंने पूछा—जमींदार कौन है?

फुटबॉल की बाँछें खिल गई, बोला—क्या कहूँ र कुँअर सज्जनसिंह। हुजूर, बड़ा ढीठ आदमी है। रात होने आई है और अभी तक हुजूर के सलाम को भी नहीं आया। घोडों के सामने न घास है न दाना। लश्कर के सब आदमी भूखे बैठे हुए हैं। मिट्टी का एक बर्तन भी नहीं भेजा।

मुझे जमींदारों से रात-दिन साबका रहता था मगर यह शिकायत कभी सुनने में नहीं आई थी। इसके विपरीत वह मेरी खातिर-तवाजो में देसी जांफिशानी से काम लेते थे जो उनके स्वाभिमान के लिए ठीक न थी। उनमें दिल खोलकर आतिथ्य-सत्कार करने का भाव तनिक भी न होता था। न उसमें शिष्टाचार था, न वैभव का प्रदर्शन जो ऐब है। इसके बजाय वहाँ बेजा रसूख की फिक्र और स्वार्थ की हवस साफ दिखाई देती थी और इस रसूख बनाने की कीमत काव्योचित अतिशयोक्ति के साथ उन गरीबों से वसूल की जाती थी जिनका बेकसी के सिवा और कोई हाथ पकड़नेवाला नहीं। उनके बात करने के ढंग में वह मुलायमियत और आजिजी बरती जाती थी, जिसका स्वाभिमान से बैर है और अक्सर ऐसे मौके आते थे, जब इन खातिरदारियों से तंग होकर दिल चाहता था कि काश, इन खुशामदी आदमियों की सूरत न देखती पड़ती।

मगर आज अपने फुटबॉल की जबान से यह कैफियत सुनकर मेरी जो हालत हुई उसने साबित कर दिया कि रोज-रोज की खातिरदारियों और मीठी-मीठी बातों ने मुझ पर असर किए बिना नहीं छोड़ा था। मैं यह हुक्म देनेवाला ही था कि कुँअर सज्जनसिंह को हाजिर करो कि यकायक मुझे खयाल आया, इन मुफाखोरे चपरासियों के कहने पर एक प्रतिष्ठित

आदमी को अपमानित करना न्याय नहीं है। मैंने अर्दली से कहा—बनियों के पास जाओ, नकद दाम देकर चीजें लाओ और याद रखो कि मेरे पास कोई शिकायत न आए।

अर्दली दिल में मुझे कोसता हुआ चला गया।

मगर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब वहाँ एक हफ्ते तक रहने पर भी कुँअर साहब से मेरी भेंट न हुई। अपने आदमियों और लश्करवालों की जबान से कुँअर साहब की ढिठाई, घमंड और हेकड़ी की कहानियाँ रोज सुना करता। और मेरे दुनिया देखे हुए पेशकार ने ऐसे अतिथि-सत्कार-शून्य गाँव में पड़ाव डालने के लिए मुझे कई बार इशारों से समझाने-बुझाने की कोशिश की। गालिबन मैं पहला आदमी था जिससे यह भूल हुई थी और अगर मैंने जिले के नच्यो के बदले लश्करवालों से अपने दौरे का प्रोग्राम बनाने में मदद ली होती तो शायद इस अप्रिय अनुभव की नौबत न आती। लेकिन कुछ अजब बात थी कि कुँअर साहब को बुरा-भला कहना मुझ पर उल्टा असर डालता था। यहाँ तक कि मुझे उस आदमी से मुलाकात करने की इच्छा पैदा हुई जो सर्वशक्तिमान अफसरों से इतना ज्यादा अलग-अलग रह सकता है।

:: 2 ::

सुबह का वक्त था, मैं गढ़ी में गया। नीचे सरयू नदी लहरें मार रही थी। उस पार साखू का जंगल था। मीलों तक बादामी रेत, उस पर खरबूजे और तरबूज की क्यारियाँ थीं। पीले-पीले फूलों से लहराती हुईं। बगुलों और मुर्गाबियों के गोल-के-गोल बैठे हुए थे। सूर्य देवता ने जंगलों से सिर निकाला, लहरें जगमगाई, पानी में तारे निकले। बड़ा सुहाना, आत्मिक उल्लास देनेवाला दृश्य था।

मैंने खबर करवाई और कुँअर साहब के दीवानखाने में दाखिल हुआ। लंबा-चौड़ा कमरा था। फर्श बिछा हुआ था। सामने मसनद पर एक बहुत लंबा-तड़ंगा आदमी बैठा था। सर के बाल मुड़े हुए गले में रुदाक्ष की एक माला, लाल-लाल आँखें ऊँचा माथा—पुरुषोचित अभिमान की इससे अच्छी तसवीर नहीं हो सकती। चेहरे से रोबदाब बरसता था।

कुँअर साहब ने मेरे सलाम को इस अंदाज से लिया कि जैसे वह इसके आदी हैं। मसनद से उठकर उन्होंने बहुत बड़प्पन के ढंग से मेरी अगवानी की, खैरियत पूछी और इस तकलीफ के लिए मेरा शुक्रिया अदा करने के बाद इतर और पान से मेरी तवाजो की। तब वह मुझे अपनी उस गढ़ी की सैर कराने चले जिसने किसी जमाने में जरूर आसफुद्दौला को जिच किया होगा मगर इस वक्त बहुत टूटी-फूटी हालत में थी। यहाँ के एक-एक रोड़े पर कुँअर साहब को नाज था। उनके खानदानी बड़प्पन और रोबदाब का जिक्र उनकी जबान से सुनकर विश्वास न करना असंभव था। उनको बयान करने का ढंग यकीन को मजबूर करता था और वे उन कहानियों के सिर्फ पासबान ही न थे, बल्कि वह उनके ईमान का हिस्सा थीं और जहाँ तक उनकी शक्ति में था, उन्होंने अपनी आन निभाने में कभी कसर नहीं की।

कुँअर सज्जनसिंह खानदानी रईस थे। उनकी वंश-परंपरा यहाँ-वहाँ टूटती हुई अंत में किसी महात्मा ऋषि से जाकर मिल जाती थी। उन्हें तपस्या और भक्ति और योग का कोई दावा न था लेकिन इसका गर्व उन्हें अवश्य था कि वे एक ऋषि की संतान हैं। पुरखों के

जंगली कारनामे भी उनके लिए गर्व का कुछ कम कारण न थे। इतिहास में उनका कहीं जिक्र न हो मगर खानदान भाट ने उन्हें अमर बनाने में कोई कसर नहीं रखी थी और अगर शब्दों में कुछ ताकत है तो यह गढ़ी रोहतास या कालिंजर के किलों से भी आगे बड़ी हुई थी। कम-से-कम प्राचीनता और बर्बादी के बाह्य लक्षणों में तो उसकी मिसाल मुश्किल से मिल सकती थी, क्योंकि पुराने जमाने में चाहे उसने मुहासरों और सुरंगों को हेच समझा हो लेकिन इस वक्त वह चींटियों और दीमकों के हमलों का भी सामना न कर सकती थी।

कुँअर सज्जनसिंह से मेरी भेंट बहुत संक्षिप्त थी लेकिन इस दिलचस्प आदमी ने मुझे हमेशा के लिए अपना भक्त बना लिया। बड़ा समझदार, मामले को समझनेवाला, दूरदर्शी आदमी था। आखिर मुझे उसका बिन पैसों का गुलाम बनना था।

:: 3 ::

बरसात में सरयू नदी इस जोर-शोर से चढ़ी कि हजारों गाँव बरबाद हो गए बड़े-बड़े तनावर दरख्त तिनकों की तरह बहते चले जाते थे। चारपाइयों पर सोते हुए बच्चे और औरतें खूंटे पर बँधे हुए गाय और बैल, उनकी गरजती हुई लहरों में समा गए। खेतों में नाव चलती थी।

शहर में उड़ती हुई खबरें पहुँचीं। सहायता के प्रस्ताव पास हुए। सैकड़ों ने सहानुभूति और शोक के अरजेण्ट तार जिले के बड़े साहब की सेवा में भेजे। टाउन हॉल में कौमी हमदर्दी की पुरशोर सदाएं उठीं और उस हंगामे में बाढ़-पीड़ितों की दर्दभरी पुकारें दब गईं।

सरकार के कानों में फरियाद पहुँची। एक जाँच कमीशन तैनात किया गया। जमींदारों को हुक्म हुआ कि वे कमीशन के सामने अपने नुकसानों को विस्तार से बताएँ और उसके सबूत दें। शिवरामपुर के महाराजा साहब को इस कमीशन का सभापति बनाया गया। जमींदारों में रेल पेल शुरू हुई। नसीब जागे। नुकसान के तखमीने का फैसला करने में काव्य-बुद्धि से काम लेना पड़ा। सुबह से शाम तक कमीशन के सामने एक जमघट रहता। आनरेबुल महाराजा साहब को साँस लेने की फुरसत न थी। दलील और शहादत का काम बात बनाने और खुशामद से लिया जाता था। महीनों यही कैफियत रही। नदी किनारे के सभी जमींदार अपने नुकसान की फरियादें पेश कर गए। अगर कमीशन से किसी को कोई फायदा नहीं पहुँचा तो वह कुँअर सज्जनसिंह थे। उनके सारे मौजे सरयू के किनारे पर थे और सब तबाह हो गए थे गढ़ी की दीवारें भी उसके हमलों से न बच सकी थीं, मगर उनकी जबान ने खुशामद करना सीखा ही न था और यहाँ उसके बगैर रसाई मुश्किल थी। चुनांचे वह कमीशन के सामने न आ सके। मियाद खत्म होने पर कमीशन ने रिपोर्ट पेश की, बाढ़ में डूबे हुए इलाकों में लगान की आम माफी हो गई। रिपोर्ट के मुताबिक सिर्फ सज्जनसिंह वह भाग्यशाली जमींदार थे जिनका कोई नुकसान नहीं हुआ था। कुँअर साहब ने रिपोर्ट सुनी, मगर माथे पर बल न आया। उनके असामी गढ़ी सहन में जमा थे यह हुक्म सुना तो रोने-धोने लगे। तब कुँअर साहब उठे और बुलंद आवाज में बोले—मेरे इलाके में भी माफी है। एक कौड़ी लगान न लिया जाए। मैंने यह वाकया सुना और खुद ब-खुद मेरी आँखों से आँसू टपक पड़े। बेशक यह वह आदमी है जो हुकूमत और अख्तियार के तूफान में जड़ से उखड़

जाए मगर झुकेगा नहीं।

:: 4 ::

वह दिन भी याद रहेगा जब अयोध्या में हमारे जादू-सा करनेवाले कवि शंकर का राष्ट्र की ओर से बधाई देने के लिए शानदार जलसा हुआ। हमारा गौरव, हमारा जोशीला शंकर यूरोप और अमरीका पर अपने काव्य का जादू करके वापस आया था। अपने कमालों पर घमंड करनेवाले यूरोप ने उसकी पूजा की थी। उसकी भावनाओं ने ब्राउनिंग और शेली के प्रेमियों को भी अपनी वफा का पाबंद न रहने दिया। उसकी जीवन-सुधा से यूरोप के प्यासे जी उठे। सारे सभ्य संसार ने उसकी कल्पना की उड़ान के आगे सिर झुका दिए। उसने भारत को यूरोप की निगाहों में अगर ज्यादा नहीं तो यूनान और रोम के पहलू में बिठा दिया था।

जब तक वह यूरोप में रहा, दैनिक अखबारों के पन्ने उसकी चर्चा से भरे रहते थे। यूनिवर्सिटियों और विद्वानों की सभाओं ने उस पर उपाधियों की मूसलाधार वर्षा कर दी थी। सम्मान का वह पदक जो यूरोपवालों का प्यारा सपना और जिंदा आरजू है वह पदक हमारे प्यारे जिन्दादिल शंकर के सीने पर शोभा दे रहा था और उसकी वापसी के बाद आज उन्हीं राष्ट्रीय भावनाओं के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हिन्दोस्तान के दिल और दिमाग अयोध्या में जमा थे।

इसी अयोध्या की गोद में श्री रामचन्द्र खेलते थे और यहीं उन्होंने वाल्मीकि की जादूभरी लेखनी की प्रशंसा की थी। उसी अयोध्या में हम अपने मीठे कवि शंकर पर अपनी मुहब्बत के फूल चढ़ाने आए थे।

इस राष्ट्रीय कर्तव्य में सरकारी हुक्काम भी बड़ी उदारतापूर्वक हमारे साथ सम्मिलित थे। शंकर ने शिमला और दार्जिलिंग के फरिश्तों को भी अयोध्या में खींच लिया था। अयोध्या को बहुत इंतजार के बाद यह दिन देखना नसीब हुआ।

जिस वक्त शंकर ने उस विराट पण्डाल में पैर रखा, हमारे हृदय राष्ट्रीय गौरव और नशे से मतवाले हो गए। ऐसा महसूस होता था कि हम उस वक्त किसी अधिक पवित्र, अधिक प्रकाशवान दुनिया के बसनेवाले हैं। एक क्षण के लिए—अफसोस है कि सिर्फ एक क्षण के लिए—अपनी गिरावट और बर्बादी का खयाल हमारे दिलों से दूर हो गया। जय-जय की आवाजों ने हमें इस तरह मस्त कर दिया जैसे महुअर नाग को मस्त कर देता है।

एड्रेस पढ़ने का गौरव मुझको प्राप्त हुआ था। सारे पण्डाल में खामोशी छाई हुई थी। जिस वक्त मेरी जबान से यह शब्द निकले—ऐ राष्ट्र के नेता! ऐ हमारे आत्मिक गुरु! हम सच्ची मुहब्बत से तुम्हें बधाई देते हैं और सच्ची श्रद्धा से तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाते हैं'....यकामक मेरी निगाह उठी और मैंने एक हृष्ट-पुष्ट हैकल आदमी को ताल्लुकेदारों की कतार से उठकर बाहर जाते देखा। यह कुँअर सज्जनसिंह थे।

मुझे कुँअर साहब की यह बेमौका हरकत, जिसे अशिष्टता समझने में कोई बाधा नहीं है, बुरी मालूम हुई। हजारों आँखें उनकी तरफ हैरत से उठीं।

जलसे के खत्म होते ही मैंने पहला काम जो किया वह कुंअर साहब से इस चीज के बारे में जवाब-तलब करना था।

मैंने पूछा—क्यों साहब, आपके पास इस बेमौका हरकत का क्या जवाब है? सज्जनसिंह ने गम्भीरता से जवाब दिया—आप सुनना चाहें तो जवाब दूँ।"“शौक से फरमाइए।”

“अच्छा तो सुनिए। मैं शंकर की कविता का प्रेमी हूँ शंकर की इज्जत करता हूँ शंकर पर गर्व करता हूँ? शंकर को अपने और अपनी कौम के ऊपर एहसान करनेवाला समझता हूँ मगर इसके साथ ही उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानने या उनके चरणों में सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हूँ।”

मैं आश्चर्य से उसका मुँह तकता रह गया। यह आदमी नहीं घमंड का पुतला है। देखें यह सर कभी झुकता है या नहीं।

:: 5 ::

पूरनमासी का पूरा चाँद सरयू के सुनहरे फर्श पर नाचता था और लहरें खुशी से गले मिल-मिलकर गाती थीं। फागुन का महीना था, पेड़ों में कोंपलें निकली थीं और कोयल कूकने लगी थी।

मैं अपना दौरा खत्म करके सदर लौटता था। रास्ते में कुँअर सज्जनसिंह से मिलने का चाव मुझे उनके घर तक ले गया जँहा अब मैं बड़ी बेतकल्लुफी से जाता-आता था।

मैं शाम के वक्त नदी की सैर को चला। वह प्राणदायिनी हवा, वह उड़ती हुई लहरें वह गहरी निस्तब्धता—सारा दृश्य एक आकर्षक सुहाना सपना था। चाँद के चमकते हुए गीत से जिस तरह लहरें झूम रही थीं, उसी तरह मीठी चिन्ताओं से दिल उमड़ा आता था।

मुझे ऊँचे कगार पर एक पेड़ के नीचे कुछ रोशनी दिखाई दी। मैं ऊपर चढ़ा। वहाँ बरगद की घनी छाया में एक धूनी जल रही थी। उसके सामने एक साधू पैर फैलाए बरगद की एक मोटी जटा के सहारे लेटे हुए थे। उनका चमकता हुआ चेहरा आग की चमक को लजाता था। नीले तालाब में कमल खिला हुआ था।

उनके पैरों के पास एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था। उसकी पीठ मेरी तरफ थी। वह उस साधू के पैरों पर अपना सिर रखे हुए था, पैरों को चूमता था और आँखों से लगाता था। साधू अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रखे हुए थे कि जैसे वासना धैर्य और संतोष के चल में आश्रय ढूँढ रही हो। भोला लड़का माँ-बाप की गोद में आ बैठा था।

यकायक वह झुका हुआ सर उठा और मेरी निगाह उसके चेहरे पर पड़ी। मुझे सकता-सा हो गया। यह कुँअर सज्जनसिंह थे। वह सर जो झुकना न जानता था, इस वक्त जमीन चूम रहा था।

वह माथा जो एक ऊँचे मनसबदार के सामने न झुका, जो एक प्रतापी वै भवशाली महाराजा के सामने न झुका, जो एक बड़े देशप्रेमी कवि और दार्शनिक के सामने न झुका, इस वक्त एक साधू के कदमों पर गिरा हुआ था। घमंड, वैराग्य के सामने सिर झुकाए खड़ा था।

मेरे दिल में इस दृश्य से भक्ति का एक आवेश पैदा हुआ। आँखों के सामने से एक परदा-सा हटा और कुँअर सज्जनसिंह का आत्मिक रूार दिखाई दिया। मैं कुँअर साहब की तरफ चला। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर अपने पास बिठाना चाहा लेकिन मैं उनके पैरों से लिपट

गया और बोला—मेरे दोस्त, मैं आज तक तुम्हारी आत्मा के बडप्पन से बिलकुल बेखबर था। आज तुमने मेरे हृदय पर उसको अंकित कर दिया कि वै भव और प्रताप, कमाल और शोहरत यह सब घटिया चीजें हैं भौतिक चीजें हैं। वासनाओं में लिपटे हुए लोग इस योग्य नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सिर झुकाएँ। वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही वे महान गुण हैं जिनकी डयोढ़ी पर बड़े बड़े वैभवशाली और प्रतापी लोगों के सिर भी झुक जाते हैं। यही वह ताकत है जो वै भव और प्रताप को, घमंड की शराब के मतवालों को और जड़ाऊ मुकुट को अपने पैरों पर गिरा सकती है। ३ तपस्या के एकान्त में बैठनेवाली आत्माओ तुम धन्य हो कि घमंड के पुतले भी तुम्हारे पैरों की धूल को माथे पर चढ़ाते हैं।

कुँअर सज्जनसिंह ने मुझे छाती से लगाकर कहा—मिस्टर वागले आज आपने मुझे सच्चे गर्व का रूप दिखा दिया और मैं कह सकता हूँ कि सच्चा गर्व सच्ची प्रार्थना से कम नहीं। विश्वास मानिए मुझे इस वक्त ऐसा मालूम होता है कि गर्व में भी आत्मिकता को पाया जा सकता है। आज मेरे सिर में गर्व का जो नशा है, वह कभी नहीं था।

–जमाना अगस्त *1916*

विजय

शाहजादा मसरूर की शादी मलका मखमूर से हुई और दोनों आराम से जिंदगी बसर करने लगे। मसरूर ढोर चराता, खेत जोतता, मखमूर खाना पकाती और चरखा चलाती। दोनों तालाब के किनारे बैठे हुए मछलियों का तैरना देखते लहरों से खेलते बगीचे में जाकर चिड़ियों के चहचहे सुनते और फूलों के हार बनाते। न कोई फिक्र थी, न कोई चिन्ता।

लेकिन बहुत दिन न गुजरने पाए थे कि उनके जीवन में एक परिवर्तन आया। दरबार के सदस्यों में बुलहवस खां नाम का एक फसादी आदमी था। शाह मसरूर ने उसे नजरबन्द कर रखा था। वह धीरे-धीरे मलका मखमूर के मिजाज में इतना दाखिल हो गया कि मलका उसके मशवरे के बगैर कोई काम न करती। उसने मलका के लिए एक हवाई जहाज बनाया जो महज इशारे से चलता था। एक सेकेण्ड में हजारों मील रोज जाता और देखते-देखते ऊपर की दुनिया की खबर लाता। मलका उस जहाज पर बैठकर यूरोप और अमरीका की सैर करती। बुलहवस उससे कहता, साम्राज्य को फैलाना बादशाहों का पहला कर्त्तव्य है। इस लंबी-चौड़ी दुनिया पर कब्जा कीजिए व्यापार के साधन बढ़ाइए छिपी हुई दौलत निकालिए फौजें खड़ी कीजिए उनके लिए अस्त्र-शस्त्र जुटाइए। दुनिया हौसलामन्दों के लिए है। उन्हीं के कारनामे, उन्हीं की जीतें याद की जाती हैं। मलका उसकी बातों को खूब कान लगाकर सुनती। उसके दिल में हौसले का जोश उमड़ने लगता। यहाँ तक कि अपना सरल संतोषी जीवन उसे रूखा-फीका मालूम होने लगा।

मगर शाह मसरूर संतोष का पुतला था। उसकी जिंदगी के वह मुबारक लमहे होते थे जब वह एकांत के कुंज में चुपचाप बैठकर जीवन और उसके कारणों पर विचार करता और उसकी विराटता और आश्चर्यों को देखकर श्रद्धा के भाव से चीख उठता-आह! मेरी हस्ती कितनी नाचीज है! उसे मलका के मंसूबों और हौसलों से जरा भी दिलचस्पी न थी। नतीजा यह हुआ कि आपस के प्यार और सच्चाई की जगह संदेह पैदा हो गए। दरबारियों में गिरोह बनने लगे। जीवन का संतोष विदा हो गया। मसरूर को इन सब परेशानियों के लिए जो उसकी सभ्यता के रास्ते में बाधक होती थीं धीरज न था। वह एक दिन उठा और सलनत मलका के सुपुर्द करके एक पहाड़ी इलाके में जा छिपा। सारा दरबार नई उमंगों से मतवाला हो रहा था। किसी ने बादशाह को रोकने की कोशिश न की। महीनों-वर्षो हो गए किसी को उनकी खबर न मिली।

:: 2 ::

मलका मखमूर ने एक बड़ी फौज खड़ी की और बुलहवस खां को चढ़ाइयों पर रवाना किया। उसने इलाके पर इलाके और मुल्क पर मुल्क जीतने शुरू किए। सोने-चाँदी और हीरे-जवाहरात के अंबार हवाई जहाजों पर लदकर राजधानी को आने लगे।

लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि इन रोज-ब-रोज बढ़ती हुई तरक्कियों से मुल्क के अंदरूनी मामलों में उपद्रव खड़े होने लगे। वह सूबे जो अब तक हुक्म के ताबेदार थे,

बगावत के खडे खड़े करने लगे। कर्णसिंह बुन्देला एक फौज लेकर चढ़ आया। मगर अजब फौज थी, न कोई हरबे-हथियार, न तोपें सिपाहियों के हाथों में बंदूक और तीर-तुपुक के बजाय बरबत-तम्बूरे और सारंगियाँ, बेले सितार और ताउस थे। तोपों की घनगरज सदाओं के बदले तबले और मृदंग की कुमुक थी। बमगोलों की जगह जल-तरंग ऑर्गन और आर्केस्ट्रा था। मलका मखमूर ने समझा, आन की आन में इस फौज को तितर-बितर करती हूँ। लेकिन ज्योंही उसकी फौज कर्णसिंह के मुकाबले में रवाना हुई, लुभावने, आत्मा को शांति पहुँचानेवाले स्वरों की वह बाढ़ आई, मीठी और सुहाने गानों की वह बौछार हुई कि मलका की सेना पत्थर की मूरतों की तरह आत्मविस्मृत होकर खड़ी रह गई। एक क्षण में सिपाहियों की आँखें नशे में डूबने लगीं और वह तालियाँ बजा-बजाकर नाचने लगे सिर हिला-हिलाकर उछलने लगे फिर सब के सब बेजान लाश की तरह गिर पड़े। और सिर्फ सिपाही नहीं, राजधानी में भी जिसके कानों में यह आवाजें गई वह बेहोश हो गया। सारे शहर में कोई जिंदा आदमी नजर न आता था। ऐसा मालूम होता था कि पत्थर की मूरतों का तिलिस्म है। मलका अपने जहाज पर बैठी यह करिश्मा देख रही थी। उसने जहाज नीचे उतारा कि देखूँ क्या माजरा है? पर उन आवाजों के कान में पहुँचते ही उसकी भी वही दशा हो गई। वह हवाई जहाज पर नाचने लगी और बेहोश होकर गिर पड़ी। जब कर्णसिंह शाही महल के करीब जा पहुँचा और गाने बंद हो गए तो मलका की आँखें खुलीं जैसे किसी का नशा टूट जाए। उसने कहा-मैं वही गाने सुरंगे, वही राग, वही अलाप, वह लु भानेवाले गीत। हाय, वह आवाजें कहाँ गई कुछ परवाह नहीं मेरा राज जाए पाट जाए मैं वही राग सुनूँगी।

सिपाहियों का नशा भी टूटा। उन्होंने उसके स्वर में स्वर मिलाकर कहा—हम वही गीत सुनेंगे वही प्यारे-प्यारे मोहक राग। बला से हम गिरफ्तार होंगे गुलामी की बेड़ियाँ पहनेंगे आजादी से हाथ धोएंगे पर वही राग, वही तराने, वही तानें वही धुनें।

:: 3 ::

सूबेदार लोचनदास को जब कर्णसिंह की विजय का हाल मालूम हुआ तो उसने भी विद्रोह करने की ठानी। अपनी फौज लेकर राजधानी पर चढ़ दौड़ा। मलका ने अबकी जान-तोड़ मुकाबला करने की ठानी। सिपाहियों को खूब ललकारा और उन्हें लोचनदास के मुकाबले में खड़ा किया मगर बाहरी हमलावर फौज! न कहीं सवार न कहीं प्यादे, न तोप, न बन्दूक, न हरबे न हथियार। सिपाहियों की जगह सुंदर नर्तकियों के गोल थे और थियेटर के ऐक्टर। सवारों की जगह भांडों और बहुरूपियों के गोल। मोर्चों की जगह तीतरों और बटेरों के जोड़ छूटे हुए थे तो बंदूक की जगह सर्कस और बाइसकोप के खेमे पड़े थे। कहीं हीरे-जवाहरात अपनी आब-ताब दिखा रहे थे। कहीं तरह-तरह के चरिन्दों-परिन्दों की नुमाइश खुली हुई थी। मैदान के एक हिस्से में धरती की अजीब-अजीब चीजें झरने और बर्फिस्तानी चोटियाँ और बर्फ के पहाड़, पेरिस का बाजार, लंदन का एक्सचेंज या सटन की मंडियाँ अफ्रीका के जंगल, सहारा के रेगिस्तान, जापान के गुलकारियाँ, चीन के दरियाई शहर, दक्षिण अमरीका के आदमखोर, काफ की परियाँ, लैपलैंड के सुमूरमोश इन्सान और ऐसे सैकड़ों

विचित्र और आकर्षक दृश्य चलते-फिरते दिखाई पड़ते थे। मलका की फौज यह नजारा देखते ही बेसुध होकर उसकी तरफ दौड़ी। किसी को सर-पैर का खयाल न रहा। लोगों ने बन्दूकें फेंक दीं तलवारें और किरचें उतार फेंकी और बेतहाशा इन दृश्यों के चारों तरफ जमा हो गए। कोई नाचनेवालियों की मीठी अदाओं और नाजुक चलन पर दिल दे बैठा, कोई थयेटर के तमाशों पर रीझा। कुछ लोग तीतरों और बटेरों के जोड़े देखने लगे और सब के सब चित्रलिखित-से मन्त्रमुग्ध खड़े गए। मलका अपने हवाई जहाज पर बैठी कभी थियेटर की तरफ जाती, कभी सर्कस की तरफ दौड़ती, यहाँ तक कि वह भी बेहोश हो गई।

लोचनदास जब विजय करता हुआ शाही महल में दाखिल हो गया तो मलका की आँखें खुलीं। उसने कहा-हाय, वह तमाशे कहाँ गए वह सुन्दर-सुन्दर दृश्य, वह लु भावने दृश्य कहाँ गायब हो गए! मेरा राज जाए पाट जाए लेकिन मैं यह सैर जरूर देखूँगी। मुझे आज मालूम हुआ है कि जिन्दगी में क्या-क्या मजे हैं!

सिपाही भी जागे। उन्होंने एक स्वर से कहा—हम वही सैर और तमाशे देखेंगे, हमें लड़ाई-भिड़ाई से कुछ मतलब नहीं हमको आजादी की परवाह नहीं हम गुलाम होकर रहेंगे पैरों में बेड़ियाँ पहनेंगे पर इन दिलफरेबियों के बगैर नहीं रह सकेंगे।

:: 4 ::

मलका मखमूर को अपनी सल्तनत का हाल देखकर बहुत दुःख होता। वह सोचती, क्या इसी तरह सारा देश मेरे हाथ से निकल जाएगा? अगर शाह मसरूर ने यों किनारा न कर लिया होता तो सलनत की यह हालत कभी न होती। क्या उन्हें यह कैफियतें मालूम न होंगी। यहाँ से दम-दम की खबरें उनके पास जाती हैं मगर जरा भी जुम्बिश नहीं करते। कितने बेरहम हैं। खैर, जो कुछ सर पर आएगी सह लूंगी पर उनकी मिन्नत न करूँगी।

लेकिन जब वह उन आकर्षक गानों को सुनती और दृश्यों को देखती तो यह दुखदायी विचार भूल जाते, उसे अपनी जिंदगी बहुत आनन्द की मालूम होती।

बुलहवस खां ने लिखा—मैं दुश्मनों से घिर गया हूँ नफरत अली और कीन खां और ज्वालासिंह ने चारों तरफ से हमला शुरू कर दिया है। जब तक और कुमुक न आए मैं मजबूर हूँ। पर मलका की फौज यह सैर और गाने छोड़कर जाने पर राजी न होती थी।

इतने में दो सूबेदारों ने फिर बगावत की। मिर्जा शमीम और रसराज सिंह दोनों एक होकर राजधानी पर चढ़े। मलका की फौज में अब न लज्जा थी, न वीरता, गाने-बजाने और सैर-तमाशे ने उन्हें आरामतलब बना दिया था। बड़ी मुश्किलों से सज-सजाकर मैदान में निकले। दुश्मन की फौज इंतजार करती खड़ी थी लेकिन न किसी के पास तलवार थी न बंदूक, सिपाहियों के हाथों में फूलों के खुशनुमा गुलदस्ते थे किसी के हाथ में इत्र की शीशियाँ, किसी के हाथ गुलाब के फौवारे, कहीं लवेण्डर की बोतलें कहीं मुरक वगैरह की बहार—सारा मैदान अत्तार की दुकान बना हुआ था। दूसरी तरफ रसराज की सेना थी। उनके सिपाहियों के हाथों में सोने के तश्त थे जरबफ्त के खानपोशों से ढके हुए किसी में बर्फी और मलाई थी, किसी में कोरमे और कबाब, किसी में खुबानी और अंगूर, कहीं कश्मीर की नेमतें सजी हुई थीं कहीं इटली की चटनियों की बहार थी और कहीं पुर्तगाल

और फ्रांस की शराबें शीशियों में महक रही थीं।

मलका की फौज यह संजीवनी सुगंध सूँघते ही मतवाली हो गई। लोगों ने ही थयार फेंक दिए और इन स्वादिष्ट पदार्थों की ओर दौड़े, कोई हलुए पर गिरा, कोई मलाई पर टूटा, किसी ने कोरमे और कबाब पर हाथ बढ़ाए कोई खुबानी और अंगूर चखने लगा, कोई कश्मीरी मुरब्बों पर लपका, सारी फौज भखमंगों की तरह हाथ फैलाए यह नेमतें माँगती थीं और बेहद चाव से खाती थी। एक-एक कौर के लिए एक चमचा फीरीनी के लिए शराब के एक प्याले के लिए खुशामदें करते थे, नाकें रगड़ते थे सिजदे करते थे। यहाँ तक कि सारी फौज पर एक नशा छा गया, बेदम होकर गिर पड़ी। मलका भी इटली के मुरब्बों के सामने दामन फैला-फैलाकर मिन्नतें करती थी और कहती थी कि सिर्फ एक लुकमा और एक प्याला दो और मेरा राज लो, पाट लो, मेरा सब कुछ ले लो लेकिन मुझे जी भरकर खा-पी लेने दो। यहाँ तक कि वह भी बेहोश होकर गिर पडी।

:: 5 ::

मलका की हालत अब बेहद दर्दनाक थी। उसकी सल्लनत का एक छोटा-सा हिस्सा दुश्मनों के हाथ से बचा हुआ था। उसे एक दम के लिए भी इस गुलामी से नजात न मिलती। कभी कर्णसिंह के दरबार में हाजिर होती, कभी मिर्जा शमीम की खुशामद करती, इसके बगैर उसे चैन न आता। हाँ, जब कभी इस मुसाहिबी उघैर जिल्लत से उसकी तबीयत थक जाती तो वह अकेले बैठकर घंटों रोती और चाहती कि जाकर शाह मसरूर को मना लाऊँ। उसे यकीन था कि उनके आते ही बागी काफूर हो जाएँगे पर एक ही क्षण में उसकी तबीयत बदल जाती। उसे अब किसी हालत पर चैन न आता था।

अभी तक बुलहवस खां की स्वामिभक्ति में फर्क न आया था। लेकिन जब उसने सल्लनत की यह कमजोरी देखी तो वह पी बगावत कर बैठा। उसकी आजमाई हुई फौज के मुकाबले में मलका की फौज क्या ठहरती, पहले ही हमले में कदम उखड़ गए। मलका खुद गिरफ्तार हो गई। बुलहवस खां ने उसे एक तिलिस्माती कैदखाने में बन्द कर दिया। सेवक से स्वामी बन बैठा।

यह कैदखाना इतना लंबा-चौड़ा था कि कोई कैदी कितना ही भागने की कोशिश करे उसकी चहारदीवारी से बाहर नहीं निकल सकता था। वहाँ संतरी और पहरेदार न थे लेकिन वहाँ की हवा में एक खिंचाव था। मलका के पैरों में न बेड़ियाँ थीं न हाथों में हथकड़ियाँ लेकिन शरीर का अंग-प्रत्यंग तारों से बँधा हुआ था। वह अपनी इच्छा से हिल भी न सकती थी। वह अब दिन के दिन बैठी हुई जमीन पर मिट्टी के घरौंदे बनाया करती और समझती यह. महल है। तरह-तरह के स्वांग भरती और समझती दुनिया मुझे देखकर लट्टू हुई जाती है। पत्थर के टुकड़ों से अपना शरीर गूँ ध लेती और समझती कि अब हूरें भी मेरे सामने मात हैं। वह दरख्तों से पूछती, मैं कितनी खूबसूरत हूँ? शाखों पर बैठी हुई चिड़ियों से पूछती, हीरे-जवाहरात का ऐसा गुलूबन्द तुमने देखा है? मिट्टी के ठीकरों का अम्बार लगाती है और आसमान से पूछती, इतनी दौलत तुमने देखी है?

मालूम नहीं, इस हालत में कितने दिन गुजर गए। मिर्जा शमीम, लोचनदास वगैरह

हरदम उसे घेरे रहते थे। शायद वह उससे डरते थे। ऐसा न हो, यह शाह मसरूर को कोई संदेशा भेज दे। कैद में भी उस पर भरोसा न था। यहाँ तक कि मलका की तबीयत इस कैद से बेजार हो गई, वह निकल भागने की तदबीरें सोचने लगी।

इसी हालत में एक दिन मलका बैठी सोच रही थी, मैं क्या थी क्या हो गई? जो मेरे इशारों के गुलाम थे वह अब मेरे मालिक हैं मुझे जिस कल चाहते हैं बिठाते हैं जहाँ चाहते हैं, घुमाते हैं। अफसोस मैंने शाह मसरूर का कहना न माना, यह उसी की सजा है। काश, एक बार मुझे किसी तरह इस कैद से छुटकारा मिल जाता तो मैं चलकर उनके पैरों पर सिर रख देती और कहती, लौंडी की खता माफ कीजिए। मैं खून के आँसू रोती और उन्हें मना लाती और फिर कभी उनके हुक्म से इनकार न करती। मैंने इस नमकहराम बुलहवस खां की बातों में पड़कर उन्हें निर्वासित कर दिया, मेरी अक्ल कहाँ चली गई थी।

यह सोचते-सोचते मलका रोने लगी कि यकायक उसने देखा, सामने एक खिले हुए मुखड़ेवाला, गम्भीर पुरुष सादा कपड़े पहने खड़ा है। मलका ने आश्चर्यचकित होकर पूछा —आप कौन हैं? यहाँ मैंने आपको कभी नहीं देखा।

पुरुष—हाँ, इस कैदखाने में में बहुत कम आता हूँ। मेरा काम है कि जब कैदियों की तबीयत यहाँ से बेजार हो तो उन्हें यहाँ से निकलने में मदद दूँ।

मलका—आपका नाम?

पुरुष—संतोख सिंह।

मलका—आप मुझे इस कैद से छुटकारा दिला सकते हैं?

संतोख—हाँ, मेरा तो काम ही यह है, लेकिन मेरी हिदायतों पर चलना पड़ेगा।

मलका—मैं आपके हुक्म से जौ भर भी इधर-उधर न करूँगी। खुदा के लिए मुझे यहाँ से जल्द से जल्द ले चलिए मैं मरते दम तक आपकी शुक्रगुजार रहूँगी। संतोख-आप कहाँ चलना चाहती हैं?

मलका—मैं शाह मसरूर के पास जाना चाहती हूँ। आपको मालूम है वह आजकल कहाँ हैं।

संतोख—हाँ, मालूम है मैं उनका नौकर हूँ। उन्हीं की तरफ से मैं इस काम पर तैनात हूँ?

मलका—तो खुदा के वास्ते मुझे जल्द ले चलिए मुझे अब यहाँ एक घड़ी रहना जी पर भारी हो रहा है।

संतोख—अच्छा, तो यह रेशमी कपड़े और यह जवाहरात और सोने के जेवर उतारकर फेंक दो। बुलहवस ने इन्हीं जंजीरों से तुम्हें जकड़ दिया है। मोटे से मोटा कपड़ा जो मिल सके पहन लो। इन मिट्टी के घरौंदों को गिरा दो। इतर और गुलाब की शीशियाँ, साबुन की बट्टियाँ और यह पाउडर के डिब्बे सब फेंक दो।

मलका ने शीशियाँ और पाउडर के टिन तड़ाक पटक दिए सोने के जेवरों को उतारकर फेंक दिए कि इतने में बुलहवस खां थाई मारकर रोता हुआ आकर खड़ा हुआ और हाथ बाँधकर कहने लगा—दोनों जहानों की मलका, मैं आपका नाचीज गुलाम हूँ आप मुझसे नाराज हैं?

मलका ने बदला लेने के अपने जोश में मिट्टी के घरौंदों को पैरों से ठुकरा दिया। ठीकरों के अंबार को ठोकरें मारकर बिखेर दिया। बुलहवस के शरीर का एक-एक अंग कट-कटकर

गिरने लगा। वह बेदम होकर जमीन पर गिर पड़ा और दम के दम में जहनुम रसीद हुआ। संतोखसिंह ने मलका से कहा—देखा तुमने? इस दुश्मन को तुम कितना डरावना समझती थीं आन की आन में खाक में मिल गया।

मलका—काश, मुझे यह हिकमत मालूम होती तो मैं कभी की आजाद हो जाती। लेकिन अभी और भी तो कितने ही दुश्मन हैं।

संतोख—उनको मारना इससे भी आसान है। चलो कर्णसिंह के पास, ज्योंही वह अपना सुर अलापने लगे और मीठी-मीठी बातें करने लगे कानों पर हाथ रख लो, देखो, अदृश्य के पर्दे से फिर क्या चीज सामने आती है।

मलका कर्णसिंह के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही चारों तरफ से ध्रुपद और तिल्लाने के वार होने लगे। पियानो बजने लगे। मलका ने दोनों कान बन्द कर लिये। कर्णसिंह के दरबार में आग का शोला उठने लगा। सारे दरबारी जलने लगे। कर्णसिंह दौड़ा हुआ आया और बड़े विनयपूर्वक मलका के पैरों पर गिरकर बोला—हुजूर, अपने इस हमेशा के गुलाम पर रहम करें। कानों पर से हाथ हटा लें वर्ना इस गरीब की जान पर बन जाएगी। अब कभी हुजूर की शान में यह गुस्ताखी न होगी।

मलका ने कहा—अच्छा, जा तेरी जौ-बख्याई की। अब कभी बगावत न करना वर्ना जान से हाथ धोएगा।

कर्णसिंह ने संतोखसिंह की तरफ प्रलय की आँखों से देखकर सिर्फ इतना कहा —'जालिम, तुझे मौत भी नहीं आई' और बेतहाशा गिरता-पड़ता भागा। संतोखसिंह ने मलका से कहा—देखा तुमने, इनको मारना कितना आसान था? अब चलो लोचनदास के पास। ज्योंही वह अपने करिश्मे दिखाने लगे दोनों आँखें बंद कर लेना।

मलका लोचनदास के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही लोचन ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना शुरू किया। ड़ामे होने लगे नर्तकों ने थरकना शुरू किया। लालो-जमुर्रद की कश्तियाँ सामने आने लगीं लेकिन मलका ने दोनों आँखें बंद कर लीं।

आन की आन में वह ड़ामे और सर्कस और नाचनेवालों के गिरोह खाक में मिल गए। लोचनदास के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं निराशापूर्ण धैर्य के साथ चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा—यह तमाशा देखो यह पेरिस के कहवेखाने, यह मिस एलिन का नाच है। देखो, अंग्रेज रईस उस पर कितनी उदारता से सोने और हीरे-जवाहरात निछावर कर रहे हैं। जिसने यह सैर-तमाशे न देखे उसकी जिंदगी मौत से बदतर। लेकिन मलका ने आँखें न खोलीं।

तब लोचनदास बदहवास और घबराया हुआ, वेद के दरख्त की तरह काँपता हुआ मलका के सामने आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला—हुजूर, आँखें खोलें। अपने इस गुलाम पर रहम करें नहीं तो मेरी जान पर बन जाएगी। गुलाम की गुस्ताखियाँ माफ फरमाएँ। अब यह बेअदबी न होगी।

मलका ने कहा—अच्छा जा, तेरी जा-बखरी की लेकिन खबरदार. अब सर न उठाना, नहीं तो जहम्मुम रसीद कर दूँगी।

लोचनदास यह सुनते ही गिरता-पड़ता जान लेकर भगा। पीछे फिरकर भी न देखा। संतोखसिंह ने मलका से कहा—अब चलो मिर्जा शमीम और रसराज के पास। वहाँ एक

हाथ से नाक बंद कर लेना और दूसरे हाथ से खानों के तश्त को जमीन पर गिरा देना।

मलका रसराज और शमीम के दरबार में पहुँची। उन्होंने जो संतोख को मलका के साथ देखा तो होश उड गए। मिर्जा शमीम ने कस्तूरी और केसर की लपटें उड़ाना शुरू कीं। रसराज स्वादिष्ट खानों के तश्त सजा-सजाकर मलका के सामने लाने लगा और उनकी तारीफ करने लगा—यह पुर्तगाल की तीन औच दी हुई शराब है इसे पिए तो जुड़ा जवान हो जाए। यह फ्रांस का शैम्पेन है इसे पिए तो मुर्दा जिंदा हो जाए। यह मथुरा के पेड़े हैं इन्हें खाए तो स्वर्ग की नेमतों को भूल जाए।

लेकिन मलका ने एक हाथ से नाक बंद कर ली और दूसरे हाथ से उन तश्तों को जमीन पर गिरा दिया और बोतलों को ठोकरें मार-मारकर चूर कर दिया। ज्यों-ज्यों उसकी ठोकरें पड़ती थीं दरबार के दरबारी चीख-चीखकर भागते थे। आखिर मिर्जा शमीम और रसराज दोनों परेशान और बेहाल, सर से खून जारी, अंग-अंग टूटा हुआ, आकर मलका के सामने खडे हो गए और गिड़गिड़ाकर बोले—हुजूर, गुलामों पर रहम करें। हुजूर की शान में जो गुस्ताखियाँ हुई हैं उन्हें मुआफ फरमाएँ, अब फिर ऐसी बेअदबी न होगी।

मलका ने कहा—रसराज को मैं जान से मारना चाहती हूँ। उसके कारण मुझे जलील होना पड़ा।

लेकिन संतोखसिंह ने मना किया—नहीं इसे जान से न मारिए। इस तरह का सेवक मिलना कठिन है। यह आपके सब सूबेदार अपने काम में यकता हैं। सिर्फ इन्हें काबू में रखने की जरूरत है।

मलका ने कहा—अच्छा जाओ, तुम दोनों की भी जा-बागी की लेकिन खबरदार अब कभी उपद्रव मत खड़ा करना वर्ना तुम जानोगे।

दोनों गिरते पड़ते भागे और दम के दम में नजरों से ओझल हो गए।

मलका की रिआया और फौज ने भेंटें दीं। घर-घर शादियाने बजने लगे। चारों बागी सूबेदार शहरपनाह के पास छापा मारने की घात में बैठ गए लेकिन संतोखसिंह जब रिआया और फौज को मसजिद में शुक्रिये की नमाज अदा करने के लिए ले गया तो बागियों को कोई उम्मीद न रही वह निराश होकर चले गए।

जब इन कामों से फुसत हुई तो मलका ने संतोखसिंह से कहा—मेरे पास अल्फाज नहीं हैं और न अल्फाज में इतनी ताकत है कि मैं आपके एहसानों का शुक्रिया अदा कर सकूँ। आपने मुझे गुलामी से छुटकारा दिया, मैं आखिरी दम तक आपका जस गाऊंगी। अब शाह मसरूर के पास मुझे ले चलिए मैं उनकी सेवा करके अपनी उम्र बसर करना चाहती हूँ। उनसे मुँह मोड़कर मैंने बहुत जिल्लत और मुसीबत झेली। अब कभी उनके कदमों से जुदा न हूँगी।

संतोखसिंह—हाँ-हाँ चलिए मैं तैयार हूँ लेकिन मंजिल सख्त है। घबराना मत।

मलका ने हवाई जहाज मँगवाया। पर संतोखसिंह ने कहा—वहाँ हवाई जहाज का गुजर नहीं है, पैदल चलना पड़ेगा। मलका ने मजबूर होकर हवाई जहाज वापस कर दिया और अकेले अपने स्वामी को मनाने चली।

वह दिनभर भूखी-प्यासी पैदल चलती रही। आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा। प्यास से गले में कांटे पड़ने लगे। काँटों से पैर छलनी हो गए। उसने अपने मार्गदर्शक से पूछा—अभी कितनी दूर है?

संतोख—अभी बहुत दूर है। चुपचाप चली आओ। यहाँ बातें करने से मंजिल छोटी हो जाती है।

रात हुई, आसमान पर बादल छा गए। सामने एक नदी पड़ी किश्ती का पता न था। मलका ने पूछा—किश्ती कहाँ है?

संतोख ने कहा—नदी में चलना पड़ेगा, यहाँ किश्ती कहाँ है।

मलका को डर मालूम हुआ लेकिन वह जान पर खेलकर दरिया में चल पड़ी। मालूम हुआ कि सिर्फ आँख का धोखा था। वह रेतीली जमीन थी। सारी रात संतोखसिंह ने एक क्षण के लिए भी दम न लिया। जब भोर का तारा निकल आया तो मलका ने रोकर कहा—अभी कितनी दूर है, मैं तो मरी जाती हूँ।

संतोखसिंह ने जवाब दिया—चुपचाप चली आओ।

मलका ने हिम्मत करके फिर कदम बढ़ाए। उसने पक्का इरादा कर लिया था कि रास्ते में मर ही क्यों न जाऊँ पर नाकाम न लौटूँगी। उस कैद से बचने के लिए वह कड़ी से कड़ी मुसीबतें झेलने को तैयार थी।

सूरज निकला, सामने एक पहाड़ नजर आया जिसकी चोटियाँ आसमान में घुसी हुई थीं। संतोखसिंह ने पूछा—इसी पहाड़ी की सबसे ऊँची चोटी पर शाह मसरूर मिलेंगे चढ़ सकोगी?

मलका ने धीरज से कहा—हाँ, चढ़ने की कोशिश करूँगी।

बादशाह से भेंट होने की उम्मीद ने उसके बेजान पैरों में पर लगा दिए। वह तेजी से कदम उठाकर पहाड़ पर चढ़ने लगी। पहाड़ के बीचों-बीच आते-आते वह थककर बैठ गई, उसे गश आ गया। मालूम हुआ कि दम निकल रहा है। उसने निराश आँखों से अपने मित्र को देखा। संतोखसिंह ने कहा—एक दफा और हिम्मत करो, दिल में खुदा की याद करो। मलका ने खुदा की याद की। उसकी आँखें खुल गईं। वह फुर्ती से उठी और एक ही हल्ले में चोटी पर जा पहुँची। उसने एक ठंडी साँस ली। वहाँ शुद्ध हवा में साँस लेते ही मलका को शरीर में एक नई जिन्दगी का अनुभव हुआ। उसका चेहरा दमकने लगा। ऐसा मालूम होने लगा कि मैं चबाएं तो हवा में उड़ सकती हूँ। उसने खुश्। होकर संतोखसिंह की तरफ देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गई। शरीर वही था, पर चेहरा शाह मसरूर का था। मलका ने फिर उसकी तरफ अचरज की आँखों से देखा। संतोखसिंह के शरीर पर से एक बादल का पर्दा हट गया और मलका को वहाँ शाह मसरूर खड़े नजर आए—वही हलका पीला कुर्ता, वही गेरुए रंग की तहमद। उनके मुखमंडल से तेज की कांति बरस रही थी, माथा तारों की तरह चमक रहा था। मलका उनके पैरों पर गिर पड़ी। शाह मसरूर ने उसे सीने से लगा लिया।

–जमाना, अप्रैल, *1918*

वफा का खंजर

जयगढ़ और विजयगढ़ दो बहुत ही हरे-भरे सुसंस्कृत, दूर-दूर तक फैले हुए मजबूत राज्य थे। दोनों ही में विद्या और कला खूब उन्नत थी। दोनों का धर्म एक, रहन-सहन एक, रस्म-रिवाज एक, दर्शन एक, तरक्की का उसूल एक, जीवन का मानदंड एक और जबान में भी नाममात्र का ही अंतर था। जयगढ़ के कवियों की कविताओं पर विजयगढ़ वाले सर धुनते और विजयगढ़ी दार्शनिकों के विचार जयगढ़ के लिए धर्म की तरह थे। जयगढ़ी सुंदरियों से विजयगढ़ के घर-बार रोशन होते थे और विजयगढ़ की देवियाँ जयगढ़ में पुजती थीं। तब भी दोनों राज्यों में हमेशा ठनी रहती थी। ठनी ही नहीं रहती थी, बल्कि आपसी फूट और ईर्ष्या-द्वेष का बाजार बुरी तरह गर्म रहता और दोनों ही हमेशा एक-दूसरे के खिलाफ खंजर उठाए रहते थे। जयगढ़ में अगर कोई देश का सुधार किया जाता तो विजयगढ़ में शोर मच जाता कि हमारी जिंदगी खतरे में है। इसी तरह विजयगढ़ में कोई व्यापारिक उन्नति दिखाई देती तो जयगढ़ में शोर मच जाता था। जयगढ़ अगर रेलवे की कोई नई शाख निकालता तो विजयगढ़ उसे अपने लिए काला साँप समझता और विजयगढ़ में कोई नया जहाज तैयार होता तो जयगढ़ को वह खून पीनेवाला घड़ियाल नजर आता था। अगर यह बदगुमानियाँ अनपढ़ो या साधारण लोगों में पैदा होतीं तो एक बात थी, मजे की बात यह थी कि राग-द्वेष, विद्या और जागृति, वैभव और प्रताप की धरती में पैदा होता था। अशिक्षा और जड़ता की जमीन उनके लिए ठीक न थी। खास सोच-विचार और नियम-व्यवस्था के उपजाऊ क्षेत्र में तो इस बीज का बढ़ना कल्पना की शक्ति को भी मात कर देता था। नन्हा-सा बीज पलक मारते भर में ऊँचा-पूरा दरख्त हो जाता। कूचे और बाजारों में रोने-पीटने की सदाएं गूँजने लगतीं, देश की सभाओं में एक भूचाल-सा आ जाता, अखबारों के दिल जलानेवाले शब्द राज्य में हलचल मचा देते, कहीं से आवाज आ जाती-जयगढ़, प्यारे जयगढ़, पवित्र जयगढ़ के लिए यह कठिन परीक्षा का अवसर है। दुश्मन ने जो शिक्षा की व्यवस्था तैयार की है, वह हमारे लिए मृत्यु का संदेश है। अब जरूरत और बहुत सख्त जरूरत है कि हम हिम्मत बाँधे और साबित कर दें कि जयगढ़, अमर जयगढ़ इन हमलों से अपनी प्राणरक्षा कर सकता है। नहीं, उनका मुँहतोड़ जवाब दे सकता है। अगर हम इस वक्त न जागे तो जयगढ़, प्यारा जयगढ़ हस्ती के परदे से हमेशा के लिए मिट जाएगा और इतिहास भी उसे भुला देगा!

दूसरी तरफ से आवाज आती—विजयगढ़ के बेखबर सोनेवालो, हमारे मेहरबान पड़ोसियों ने अपने अखबारों की जबान बंद करने के लिए जो नए कायदे लागू किए हैं उन पर नाराजगी का इजहार करना हमारा फर्ज है। उनकी मंशा इसके सिवा और कुछ नहीं है कि वहाँ के मुआमलों से हमको बेखबर रखा जाए और इस अँधेरे के परदे में हमारे ऊपर भावे किए जाएँ. हमारे गलों पर फेरने के लिए नए-नए हथियार तैयार किए जाएँ और आखिरकार हमारा नाम-निशान मिटा दिया जाए। लेकिन हम अपने दोस्तों को जता देना अपना फर्ज समझते हैं कि अगर उन्हें शरारत के हथियारों की ईजाद में कमाल है तो हमें भी उनकी काट करने में कमाल है। अगर शैतान उनका मददगार है तो हमको भी ईश्वर की

सहायता प्राप्त है और अगर अब तक हमारे दोस्तों को मालूम नहीं है तो अब होना चाहिए कि ईश्वर की सहायता हमेशा शैतान को दबा देती है।

:: 2 ::

जयगढ़ बाकमाल कलावंतों का अखाड़ा था। शीरीं बाई इस अखाड़े की सब्ज परी थी. उसकी कला की दूर--दूर ख्याति थी। वह संगीत की रानी थी, जिसकी ड्योढ़ी पर बड़े बड़े नामवर आकर सर झुकाते थे। चारों तरफ विजय का डंका बजाकर उसने विजयगढ़ की ओर प्रस्थान किया, जिससे अब तक उसे अपनी प्रशंसा का कर न मिला था। उसके आते ही विजयगढ़ में एक इंकलाब-सा हो गया। रोग-द्वेष और अनुचित गर्व हवा से उड़नेवाली सूखी पत्तियों की तरह तितर-बितर हो गए। सौंदर्य और राग-रंग के बाजार में धूल उड़ने लगी, थियेटरों और नृत्यशालाओं में वीरानी छा गई। ऐसा मालूम होता था कि जैसे सारी सृष्टि पर जादू छा गया है। शाम होते ही विजयगढ़ के धनी-धोरी, जवान-बूढ़े शीरीं बाई की मजलिस की तरफ दौड़ते थे। सारा देश शीरीं की भक्ति के नशे में डूब गया।

विजयगढ के सचेत क्षेत्रों में देशवासियों के इस पागलपन से एक बेचैनी की हालत पैदा हुई, सिर्फ यही नहीं कि उनके देश की दौलत बर्बाद हो रही थी, बल्कि उनका राष्ट्रीय अभिमान और तेज भी घूल में मिला जाता था। जयगढ़ की एक मामूली नाचनेवाली, चाहे वह कितनी ही मीठी अदाओंवाली क्यों न हो, विजयगढ़ के मनोरंजन का केंद्र बन जाए, यह बहुत बड़ा अन्याय था। आपस में मशवरे हुए और देश के पुरोहितों की तरफ से देश के मंत्रियों की सेवा में इस खास उद्देश्य से एक शिष्टमंडल उपस्थित हुआ। विजयगढ़ के आमोद-प्रमोद के कर्ताओं की ओर से भी आवेदन-पत्र पेश होने लगे। अखबारों ने राष्ट्रीय अपमान और दुर्भाग्य के तराने छेड़े। साधारण लोगों के हलकों में सवालों की बौछार होने लगी, यहाँ तक कि वजीर मजबूर हो गए, शीरीं बाई के नाम शाही फरमान पहुँचा—चूँकि तुम्हारे रहने से देश में उपद्रव होने की आशंका है इसलिए तुम फौरन विजयगढ़ से चली जाओ। मगर यह हुक्म अंतर्राष्ट्रीय संबंधों, आपसी इकरारनामे और सभ्यता के नियमों के सरासर खिलाफ था। जयगढ़ के राजदूत ने, जो विजयगढ़ में नियुक्त था, इस आदेश पर आपत्ति की और शीरीं बाई ने आखिरकार उनको मानने से इनकार किया क्योंकि इससे उसकी आजादी और खुद्दारी और उसके देश के अधिकारों और अभिमान पर चोट लगती थी।

:: 3 ::

जयगढ़ के कूचे और बाजार खामोश थे। सैर की जगहें खाली। तफरीह और तमाशे बंद। शाही महल के लंबे-चौड़े सहन और जनता के हरे-भरे मैदानों में आदमियों की भीड़ थी, मगर उनकी जबानें बन्द थीं और आँखें लाल। चेहरे का भाव कठोर और क्षुब्ध, त्योरियाँ चढ़ी हुईं, माथे पर शिकन, उमड़ी हुई काली घटा थी, डरावनी, खामोश और बाढ़ को अपने

दामन में छिपाए हुए।

मगर आम लोगों में एक बड़ा हंगामा मचा हुआ था, कोई सुलह का हामी था, कोई लड़ाई की माँग करता था, कोई समझौते की सलाह दिया करता था, कोई कहता था कि छानबीन करने के लिए कमीशन बैठाओ। मामला नाजुक था, मौका तंग, तो भी आपसी बहस-मुबाहसों, बदगुमानियों और एक-दूसरे पर हमलों का बाजार गर्म था। आधी रात गुजर गई मगर कोई फैसला न हो सका 1 पूँजी की संगठित शक्ति, उसकी पहुँच और रोब-दाब फैसले की जबान बंद किए हुए था।

तीन पहर रात जा चुकी थी। हवा नींद से मतवाली होकर अंगडाइयाँ ले रही थी और दरख्तों की आँखें झपकी जाती थी। आकाश के दीपक भी झलमलाने लगे थे, दरबारी कभी दीवारों की तरफ ताकते थे, कभी छत की तरफ। लेकिन कोई उपाय न सूझता था।

अचानक बाहर से आवाज आई-युद्ध युद्ध! सारा शहर इस बुलंद नारे से गूँज उठा। दीवारों ने अपनी खामोश जबान से जवाब दिया—युद्ध! युद्ध!

यह अदृष्ट से आनेवाली एक पुकार थी जिसने उस ठहराव में हरकत पैदा कर दी थी। अब ठहरी हुई चीजों में खलबली पैदा हो गई। दरबारी गोया गफलत की नींद से चौंक पड़े। जैसे कोई भूली हुई बात याद आते ही उछल पड़े। युद्धमंत्री सैयद असकरी ने फरमाया—क्या अब भी लोगों को लड़ाई का ऐलान करने में हिचकिचाहट है? आम लोगों की जबान खुदा का हुक्म है और उसकी पुकार अभी आपके कानों में आई, उसको पूरा करना हमारा फर्ज है। हमने आज इस लंबी बैठक में यह साबित किया है कि हम जबान के धनी हैं पर जबान तलवार है, ढाल नहीं। हमें इस वक्त ढाल की जरूरत है, आइए हम अपने सीनों को ढाल बना लें और साबित कर दें कि हममें अभी वह जौहर बाकी है जिसने हमारे बुजुर्गों का नाम रोशन किया। कौमी गैरत जिंदगी की रूह है। वह नफे और नुकसान से ऊपर है। वह हुण्डी और रोकड़, वसूल और बाकी, तेजी और मंदी की पाबंदियों से आजाद है। सारी खानों की छिपी हुई दौलत सारी दुनिया की मण्डियों, सारी दुनिया के उद्योग-धन्धे उसके पासंग हैं। उसे बचाइए वर्ना आपका यह सारा निजाम तितर-बितर हो जाएगा, शीराजा बिखर जाएगा, आप मिट जाएँगे। पैसेवालों से हमारा सवाल है—क्या अब भी आपको जंग के ऐलान में हिचकिचाहट है?

बाहर से सैकड़ों आवाजें आईं—जंग! जंग!

एक सेठ साहब ने फरमाया—आप जंग के लिए तैयार हैं

असकरी—हमेशा से ज्यादा।

ख्वाजा साहब—आपको फतह का यकीन है?

असकरी—पूरा यकीन है।

दूर-पास से 'जंग-जंग' की गरजती हुई आवाजों का ताँता बँध गया कि जैसे हिमालय के किसी अथाह खड्ड से हथौड़ों की झनकार आ रही हो। शहर काँप उठा, जमीन थर्राने लगी, हथियार बँटने लगे। दरबारियों ने एकमत से लड़ाई का फेसला किया। गैरत जो न कर सकती थी वह अवाम के नारे ने कर दिखाया।

:: 4 ::

आज से तीस साल पहले एक जबर्दस्त इन्क़लाब ने जयगढ़ को हिला डाला था। वर्षों तक आपसी लड़ाइयों का दौर रहा; हजारों खानदान मिट गए। सैकड़ों कस्बे वीरान हो गए। बाप, बेटे के खून का प्यासा था। भाई, भाई की जान का गाहक। जब आखिरकार आजादी की फतेह हुई तो उसने ताज के फिदाइयों को चुन-चुनकर मारा। मुलक के कैदखाने देशभक्तों से भर उठे। उन्हीं जांबाजों में एक मिर्जा मंसूर भी था। उसे कन्नौज के किले में कैद किया गया जिसके तीन तरफ ऊँची दीवारें थीं और एक तरफ गंगा नदी। मंसूर को सारे दिन हथौड़े चलाने पड़ते। सिर्फ शाम को आध घण्टे के लिए नमाज की छुट्टी मिलती थी। उस वक्त मैसूर गंगा के किनारे आ बैठता और देश-भाइयों की हालत पर रोता। वह सारी राष्ट्रीय और सामाजिक व्यवस्था जो उसके विचार में राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग थी इस हंगामे की बाढ़ में नष्ट हो रही थी। वह एक ठण्डी आह भरकर कहता—जयगढ़, अब तेरा खुदा ही रखवाला है तूने खाक को अक्सीर बनाया और अक्सीर को खाक। तूने खानदान की इज्जत को, अदब और इखलाक को, इल्मो—कमाल को मिटा दिया, बर्बाद कर दिया। अब तेरी बागडोर हमारे हाथ में नहीं है। चरवाहे तेरे रखवाले और बनिए तेरे दरबारी हैं। मगर देख लेना, यह हवा है, और चरवाहे और साहूकार एक दिन तुझे खून के आँसू रुलाएं। धन और वै भव अपना ढंग न छोड़ेगा, हुकूमत अपना रंग न बदलेगी, लोग चाहे बदल जाएँ लेकिन निजाम वही रहेगा। यह तेरे नए शुभचिन्तक जो इस वक्त विनय और सत्य और न्याय की मूर्तियाँ बने हुए हैं एक दिन वै भव के नशे में मतवाले होंगे। उनकी सख्तियाँ ताज की सख्तियों से कहीं ज्यादा सखा होंगी और उनके जुल्म इससे कहीं ज्यादा तेज!

इन्हीं खयालों में डूबे हुए मंसूर को अपने वतन की याद आ जाती। घर का नक्शा आँखों में खिंच जाता, मासूम बच्चे असकरी की प्यारी-प्यारी सूरत ओखों में फिर जाती जिसे तकदीर ने माँ के लाड़-प्यार से वंचित कर दिया था। तब मैसूर एक ठ पडी आह खींचकर उठ खड़ा होता और अपने बेटे से मिलने की पागल इच्छा में उसका जी चाहता कि गंगा में कूदकर पार निकल जाऊं।

धीरे-धीरे इस इच्छा ने इरादे की सूरत अख्तियार की। गंगा उमड़ी हुई थी ओर-छोर का कहीं पता न था। तेज और गरजती हुई लहरें दौड़ते हुए पहाड़ों के समान थीं। पाट देखकर सर में चक्कर-सा आ जाता था। मैसूर ने सोचा, नदी उतरने दूँ। लेकिन नदी उतरने के बदले भयानक रोग की तरह बढ़ती जाती थी यहाँ तक कि मंसूर को फिर धीरज न रहा, एक दिन वह रात को उठा और उस पुरशोर लहरों से भरे हुए अँधेरे में कूद पड़ा।

मंसूर सारी रात लहरों के साथ लड़ता-भिड़ता रहा, जैसे कोई नन्हीं-सी चिड़िया तूफान में थपेड़े खा रही हो, कभी उसकी गोद में छिपा हुआ, कभी एक रेले में दस कदम आगे कभी एक धक्के में दस कदम पीछे। जिन्दगी पानी की लिखावट की जिन्दा मिसाल! जब वह नदी के पार हुआ तो एक बेजान लाश था, सिर्फ साँस बाकी थी और साँस के साथ मिलने की इच्छा।

इसके तीसरे दिन मंसूर विजयगढ़ जा पहुँचा। एक गोद में असकरी था और दूसरे हाथ में गरीबी का एक छोटा-सा बुकचा। वहाँ उसने अपना नाम मिर्जा जलाल बताया। हुलिया भी

बदल लिया था, हट्टा-कट्टा सजीला जवान था, चेहरे पर शराफत और कुलीनता की कांति झलकती थी नौकरी के लिए किसी और सिफारिश की जरूरत न थी। सिपाहियों में दाखिल हो गया और पाँच ही साल में अपनी खिदमतों और भरोसे के बदौलत मन्दीर के सरहदी पहाड़ी किले का सूबेदार बना दिया गया।

लेकिन मिर्जा जलाल को वतन की याद हमेशा सताया करती। वह असकरी को गोद में ले लेता और कोट पर चढ़कर उसे जयगढ़ की वह मुस्कराती हुई चरागाहों और मतवाले झरने और सु थरी बस्तियाँ दिखाता जिनके कंगूरे किले से नजर आते। उस वक्त बेअख्तियार उसके जिगर से एक सर्द आह निकल जाती और आँखें डबडबा आतीं। वह असकरी को गले लगा लेता और कहता—बेटा, वह तुम्हारा देश है। वही तुम्हारा और तुम्हारे बुजुर्गों का घोंसला है। तुमसे हो सके तो उसके एक कोने में बैठे हुए अपनी उम्र खत्म कर देना, मगर कभी उसकी आन में बट्टा न लगाना। कभी उससे दगा मत करना क्योंकि तुम उसी की मिट्टी और पानी से पैदा हुए हो और तुम्हारे बुजुर्गो की पाक रूहें अब भी वहाँ मंडरा रही हैं। इस तरह बचपने से ही असकरी के दिल पर देश की सेवा और प्रेम अंकित हो गया था। वह जवान हुआ, तो जयगढ़ पर जान देता था। उसकी शान-शौकत पर निसार उसके रीब-दाब की माला जपने वाला। उसकी बेहतरी को आगे बढ़ाने के लिए हर वक्त तैयार। उसके झण्डे को नई अछूती धरती में गाड़ने का इच्छुक। बीस साल का सजीला जवान था, इरादा मजबूत, हौसले बुलंद, हिम्मत बड़ी, फौलादी जिस्म, आकर जयगढ़ की फौज में दाखिल हो गया और इस वक्त जयगढ़ को फौज का चमकता सूरज बना हुआ था।

:: 5 ::

जयगढ़ ने अल्टीमेटम दे दिया। अगर चौबीस घण्टों के अंदर शीरीं बाई जयगढ़ न पहुँची तो उसकी अगवानी के लिए जयगढ़ की फौज रवाना होगी।

विजयगढ़ ने जवाब दिया—जयगढ़ की फौज आए हम उसकी अगवानी के लिए हाजिर हैं। शीरीं बाई जब तक यहाँ की अदालत से हुक्म-उदूली की सजा न पा ले वह रिहा नहीं हो सकतीं और जयगढ़ को हमारे अन्दरूनी मामलों में दखल देने का कोई हक नहीं।

असकरी ने मुँहमाँगी मुराद पाई। खुफिया तौर पर एक दूत मिर्जा जलाल के पास रवाना किया और खत में लिखा—

'आज विजयगढ़ से हमारी जंग छिड़ गई, अब खुदा ने चाहा तो दुनिया जयगढ़ की तलवार का लोहा मान जाएगी। मैसूर का बेटा असकरी फतेह के दरबार का एक अदना दरबारी बन सकेगा और शायद मेरी वह दिली तमन्ना भी पूरी हो जो हमेशा मेरी रूह को तड़पाया करती है। शायद मैं मिर्जा मैसूर को फिर जयगढ़ की रियासत में एक ऊँची जगह पर बैठे हुए देख सकूँ। हम मन्दीर से न बोलेंगे और आप भी हमें न छेड़िएगा लेकिन अगर खुदा न खारा कोई मुसीबत आ ही पड़े तो आप मेरी यह मुहर जिस सिपाही या अफसर को दिखा देंगे वह आपकी इज्जत करेगा और आपको मे। कैम्प में पहुँचा देगा। मुझे यकीन है अगर जरूरत पड़े तो उस जयगढ़ के लिए जो आपके लिए इतना प्यारा है और उस असकरी की खातिर जो आपके जिगर का टुकड़ा है आप थोड़ी-सी तकलीफ से (मुमकिन है वह

रूहानी तकलीफ हो) दरेग न फरमाएँगे।

इसके तीसरे दिन जयगढ़ की फौज ने विजयगढ़ पर हमला किया और मन्दीर से पाँच मील के फासले पर दोनों फौजों का मुकाबला हुआ। विजयगढ़ को अपने हवाई जहाजों जहरीले गड्डों और दूर तक मार करने वाली तोपों का घमंड था। जयगढ़ को अपनी फौज की बहादुरी, जीवट समझदारी और बुद्धि का भरोसा। विजयगढ़ की फौज नियम और अनुशासन की गुलाम थी, जयगढ़ वाले जिम्मेदारी और तमीज के कायल।

एक महीने तक दिन-रात मार-काट के मार्के होते रहे। हमेशा आग और गोलों और जहरीली हवाओं का तूफान उठा रहता। इन्सान थक जाता था, पर कलें अथक थीं। जयगढ़ियों के हौसले पस्त हो गए बार-बार हार-पर-हार खाई। असकरी को मालूम हुआ कि जिम्मेदारी फतेह में चाहे करिश्मे कर दिखाए पर शिकस्त में मैदान हुक्म की पाबन्दी ही के हाथ रहता है।

जयगढ़ के अखबारों ने मंत्रियों पर हमले शुरू किए। असकरी सारी कौम की लानत-मलामत का निशाना बन गया। वही असकरी जिस पर जयगढ़ फिदा होता था, सबकी नजरों का काँटा हो गया। अनाथ बच्चों के औसू विधवाओं की आहे घायलों की चीख-पुकार व्यापारियों की तबाही, राष्ट्र का अपमान—इन सबका कारण वही एक व्यक्ति असकरी था। कौम की अगुआई सोने का राजसिंहासन भले हो पर फूलों की सेज वह हरगिज नहीं।

अब जयगढ़ की जान बचने की इसके सिवा और कोई सूरत न थी कि किसी तरह विरोधी सेना का संबंध मन्दीर के किले से काट दिया जाय, जो लड़ाई और रसद के सामान और यातायात के साधनों का केंद्र था। लड़ाई कठिन थी, बहुत खतरनाक, सफलता की आशा बहुत कम, असफलता की आशंका जी पर भारी। कामयाबी अगर सूखे धान का पानी थी तो नाकामी उसकी आग। मगर छुटकारे की और कोई दूसरी तदबीर न थी। असकरी ने मिर्जा जलाल को लिखा—

"प्यारे अब्बाजान, आपने पिछले खत में मैंने जिस जरूरत का इशारा किया था, बदकिस्मती से वह जरूरत आ पड़ी। आपका प्यारा जयगढ़ भेड़ियों के पंजे में फँसा हुआ है और आपका प्यारा असकरी नाउम्मीदी के भँवर में, दोनों आपकी तरफ आस लगाए ताक रहे हैं। आज हमारी आखिरी कोशिश है, हम मुखालिफ फौज को मन्दीर के किले से अलग करना चाहते हैं। आधी रात के बाद यह मार्का शुरू होगा। आपसे सिर्फ इतनी दरख्वास्त है कि अगर हम सर हथेली पर लेकर किले के सामने तक पहुँच सकें, तो हमें लोहे के दरवाजे से सर टकराकर वापस न होना पड़े। वर्ना आप अपनी कौम की इज्जत और अपने बेटे की लाश को उसी जगह पर तड़पते देखेंगे और जयगढ़ आपको कभी मुआफ न करेगा। उससे आपको कितनी ही तकलीफ क्यों न पहुँची हो मगर आप उसके हकों से सुबुकदोश नहीं हो सकते।"

शाम हो चुकी थी, मैदाने जंग ऐसा नजर आता था कि जैसे जंगल आग से जल गया हो। विजयगढ़ी फौज एक रोज मार्क के बाद खन्दकों में आ रही थी। घायल मन्दीर के किले के अस्पताल में पहुंचाए जा रहे थे तोपें थककर चुप हो गई थीं और बद्धके जरा दम ले रही थीं। उसी वक्त जयगढ़ी फौज का एक अफसर विजगाड़ी वर्दी पहने हुए असकरी के खेमे से निकला, थकी हुई तोपें सर झुकाए हुए हवाई जहाज, घोड़ों की लाशें, औंधी पड़ी हुई

हवागाड़ियाँ और सजीव मगर टूटे-फूटे किले, उसके लिए पर्दे का काम करने लगे। उनकी आड़ में छिपता हुआ वह विजगाड़ी घायलों की कतार में जा पहुँचा और चुपचाप जमीन पर लेट गया।

:: 6 ::

आधी रात गुजर चुकी थी। मन्दौर का किलेदार मिर्जा जलाल किले की दीवार पर बैठा हुआ मैदाने जंग का तमाशा देखा रहा था और सोचता था कि असकरी को मुझे खत लिखने की हिम्मत क्योंकर हुई। उसे समझना चाहिए था कि जिस शख्स ने अपने उसूलों पर अपनी जिंदगी न्योछावर कर दी, देश से निकाला गया और गुलामी का तीक गर्दन में डाला वह अई अपनी जिंदगी के आखिरी दौर में ऐसा कोई काम न करेगा, जिससे उसको बट्टा लगे। अपने उसूलों को न तोड़ेगा। खुदा के दरबार में वतन और वतनवाले और बेटा एक भी साथ न देगा। अपने भले-बुरे की सजा या इनाम आप ही भुगतना पड़ेगा। हिसाब के रोज उसे कोई न बचा सकेगा।

'तौबा! जयगढ़ियों से फिर वही बेवकूफी हुई। खामखाह गोलेबारी से दुश्मनों को खबर कर देने की क्या जरूरत थी? अब इधर से भी जवाब दिया जाएगा और हजारों जानें जाया होंगी। रात के अचानक हमले के माने तो यह हैं कि दुश्मन सर पर आ जाय और कानोकान खबर न हो, चौतरफा खलबली पड़ जाय। माना कि मौजूदा हालात में अपनी हरकतों को पोशीदा रखना मुश्किल है। इसका इलाज अँधेरे के खन्दक से करना चाहिए था। मगर आज शायद उनकी गोलेबारी मामूल से ज्यादा तेज है। विजयगढ़ की कतारों और तमाम मोर्चेबन्दियों को चीरकर बजाहिर उनका यहाँ तक आना तो मुहाल मालूम होता था, लेकिन अगर मान लो आ ही जाएँ तो मुझे क्या करना चाहिए। इस मसले को तय क्यों न कर लूँ? खूब, इसमें तय करने की बात ही क्या है? मेरा रास्ता साफ है। मैं विजयगढ का नमक खाता हूँ। मैं जब बेघरबार, परेशान और अपने देश से निकाला हुआ था तो विजयगढ़ ने मुझे अपने दामन में पनाह दी और मेरी खिदमतों का मुनासिब लिहाज किया। उसकी बदौलत तीस साल तक मेरी जिन्दगी नेकनामी और इज्जत से गुजरी। उससे दगा करना हद दर्जे की नमकहरामी है। ऐसा गुनाह जिसकी कोई सजा नहीं! वह ऊपर शोर हो रहा है। हवाई जहाज होंगे वह गोला गिरा, मगर खैरियत हुई, नीचे कोई नहीं था।

'मगर क्या दगा हर एक हालत में गुनाह है? देसी हालतें भी तो हैं जब दगा वफा से भी ज्यादा अच्छी हो जाती है। अपने दुश्मन से दगा करना क्या गुनाह है? अपनी कौम के दुश्मन से दगा करना क्या गुनाह है? कितने ही काम जो जाती हैसियत से ऐसे होते हैं कि उन्हें माफ नहीं किया जा सकता, कौमी हैसियत से नेक काम हो जाते हैं। वही बेगुनाह का खून जो जाती हैसियत से सख्त से सख्त सजा के काबिल है, मजहबी हैसियत से शहादत का दर्जा पाता है और कौमी हैसियत से देशप्रेम का। कितनी बेरहमियाँ और जुल्म, कितनी दगाएँ और चालबाजियाँ, कौमी और मजहबी नुको-निगाह से सिर्फ ठीक ही नहीं, फर्जों में दाखिल हो जाती हैं। हाल की यूरोप की बड़ी लड़ाई में इसकी कितनी ही मिसालें मिल सकती हैं। दुनिया का इतिहास ऐसी दगाओं से भरा पड़ा है। इस नए दौर में भले और बुरे

का जाती एहसास कौमी मसलहत के सामने कोई हकीकत नहीं रखता। कौमियत ने जात को मिटा दिया है। मुमकिन है यही खुदा की मंशा हो। और उसके दरबार में भी हमारे कारनामे कौम की कसौटी ही पर परखे जाएँ। यह मसला इतना आसान नहीं है जितना मैं समझा था।

'फिर आसमान में शोर हुआ मगर शायद यह इधर हवाई जहाज हैं। आज जयगढ़वाले बड़े दमखम से लड़ रहे हैं। इधर वाले दबते नजर आते हैं। आज यकीनन मैदान उन्हीं के हाथ रहेगा। जान पर खेले हुए हैं। जयगढ़ी वीरों की बहादुरी मायूसी ही में खूब खुलती है। उनकी हार जीत से भी ज्यादा शानदार होती है। बेशक, असकरी दाँव-पेच का उस्ताद है, किस खूबसूरती से अपनी फौज का रुख किले के दरवाजे की तरफ फेर दिया। मगर सखा गलती कर रहे हैं। अपने हाथों अपनी कब खोद रहे हैं। सामने का मैदान दुश्मन के सिए खाली किए देते हैं। वह चाहे तो बिला रोक-टोक आगे बढ़ सकता है और सुबह तक जयगढ़ की सरजमीन में दाखिल हो सकता है। जयगढ़ियों के लिए वापसी या तो गैरमुमकिन है या निहायत खतरनाक। किले का दरवाजा बहुत मजबूत है 1 दीवारों की संधियों से उन पर बेशुमार बंदूकों के निशाने पड़ेंगे। उनका इस आग में एक घण्टा भी ठहरना मुमकिन नहीं है। क्या इतने देशवासियों की जानें सिर्फ एक उसूल पर, सिर्फ हिसाब के दिन के डर पर, सिर्फ अपने इखलाकी एहसास पर कुर्बान कर दूँ? और महज जानें ही क्यों? इस फौज की तबाही जयगढ़ की तबाही है। कल जयगढ़ की पाक सरजमीन दुश्मन के जीत के नवकारों से गूँज उठेगी। मेरी माँएँ बहनें और बेटियाँ हया को जलाकर खाक कर देनेवाली हरकतों का शिकार होंगी। सारे मुल्क में कल्ल और तबाही के हंगामे बरपा होंगे। पुरानी अदावत और झगड़ों के शोले भड़केंगे। कब्रिस्तान में सोई हुई रूहें दुश्मन के कदमों से पामाल होंगी। वह इमारतें जो हमारे पिछले बड़प्पन की जिंदा निशानियाँ हैं वह यादगारें जो हमारे बुजुर्गो की देन हैं जो हमारे कारनामों के इतिहास, कमालों का खजाना और हमारी मेहनतों की रौशन गवाहियाँ हैं जिनकी सजावट और खूबी को दुनिया की कौमें स्पर्द्धा की आँखों से देखती हैं वह अर्द्ध-बर्बर, असभ्य लश्करियों का पड़ाव बनेंगी और उनकी तबाही के जोश का शिकार। क्या अपनी कौम को इन तबाहियों का निशाना बनने दूँ? महज इसलिए कि वफा का मेरा उसूल न टूटे?

उफ्, यह किले में जहरीली गैस कहाँ से आ गई! किसी जयगढ़ी जहाज की हरकत होगी! सर में चक्कर-सा आ रहा है। यहाँ से कुमुक भेजी जा रही है। किले की दीवार के सूराखों में भी तोपें चढ़ाई जा रही हैं। जयगढ़वाले किले के सामने आ गए। एक धावे में वह हुमायूं दरवाजे तक आ पहुँचेंगे। विजयगढ़वाले इस बाढ़ को अब नहीं रोक सकते। जयगढ़वालों के सामने कौन ठहर सकता है? या अल्लाह, किसी तरह दरवाजा खुद-ब-खुद खुल जाता, कोई जयगढ़ी हवाबाज मुझसे जबर्दस्ती कुंजी छीन लेता, मुझे मार डालता। आह, मेरे इतने अजीज हमवतन प्यारे भाई आन की आन में खाक में मिल जाएँगे और मैं बेबस हूँ! हाथों में जंजीर है, पैरों में बेड़ियाँ। एक-एक रोआँ रस्सियों से जकड़ा हुआ है। क्यों न इस जंजीर को तोड़ दूँ इन बेडियों के टुकड़े टुकड़े कर दूँ और दरवाजे के दोनों बाजू अपने अजीज फतेह करनेवालों की अगवानी के लिए खोल दूँ। माना कि यह गुनाह है पर यह मौका गुनाह से डरने का नहीं। जहनुम के आग उगलनेवाले साँप और खून पीनेवाले जानवर और लपकते

हुए शोले मेरी रूह को जलाएं, तड़पाएँ कोई बात नहीं। अगर महज मेरी रूह की तबाही, मेरी कौम और वतन को मौत के गड्ढे से बचा सके तो वह मुबारक है। विजयगढ़ ने ज्यादती की है उसने महज जयगढ़ को जलील करने के लिए सिर्फ उसको भड़काने के लिए शीरीं बाई को शहर-निकाले का हुक्म जारी किया जो सरासर बेजा था। हाय, अफसोस मैंने उसी वक्त इस्तीफा क्यों न दे दिया और गुलामी की इस कैद से क्यों न निकल गया।

हाय गजब, जयगढ़ी फौज खन्दकों तक पहुँच गई, या खुदा! इन जांबाजों पर रहम कर, इनकी मदद कर। कलदार तोपों से कैसे गोले बरस रहे हैं गोया आसमान के बेशुमार तारे टूटे पड़ते हैं। अल्लाह की पनाह, हुमायूं दरवाजे पर गोलों की कैसी चोटें पड़ रही हैं। कान के परदे फटे जाते हैं। काश, दरवाजा टूट जाता! हाय मेरा असकरी, मेरे जिगर का टुकड़ा, वह घोड़े पर सवार आ रहा है। कैसा बहादुर, कैसा जांबाज, कैसी पक्की हिम्मतवाला! आह, मुझ अभागे कलाके को मौत क्यों नहीं आ जाती! मेरे सर पर कोई गोला क्यों नहीं आ गिरता! हाय, जिस पौधे को अपने जिगर के खून से पाला, जो मेरी पतझड़ जैसी जिंदगी का सदाबहार फूल था, जो मेरी अँधेरी रात का चिराग, मेरी जिंदगी की उम्मीद, मेरी हस्ती का दारोमदार, मेरी आरजू का इनाहा था, वह मेरी आँखों के सामने आग के भँवर में पड़ा हुआ है और मैं हिल नहीं सकता। इस कातिल जंजीर को क्योंकर तोड़ दूँ। इस बागी दिल को क्योंकर समझाऊँ? मुझे मुँह में कालिख लगाना मंजूर है, मुझे जहम्मुम की मुसीबतें झेलना मंजूर है, मैं सारी दुनिया के गुनाहों का बोझ अपने सर पर लेने को तैयार हूँ सिर्फ इस वक्त मुझे गुनाह करने की, वफा के पैमाने को तोड़ने की, नमकहराम बनने की तौफीक दे! एक लमहे के लिए मुझे शैतान के हवाले कर दे, मैं नमकहराम बनूँगा, दगाबाज बनूँगा पर कीमफरोश नहीं बन सकता!

आह, जालिम सुरंगें उड़ाने की तैयारी कर रहे हैं। सिपहसालार ने हुक्म दे दिया। वह तीन आदमी तहखाने की तरफ चले। जिगर काँप रहा है जिस्म काँप रहा है। यह आखिरी मौका है। एक लमहा और, बस फिर अँधेरा है और तबाही। हाय, मेरे ये बेवफा हाथ-पाँव अब भी नहीं हिलते जैसे इन्होंने मुझसे मुँह मोड़ लिया हो। यह खून अब भी गरम नहीं होता। आह, वह धमाके की आवाज हुई, खुदा की पनाह, जमीन काँप उठी, हाय असकरी, असकरी, रुखसत, मेरे प्यारे बेटे रुखसत, इस जालिम बेरहम बाप ने तुझे अपनी वफा पर कुर्बान कर दिया! मैं तेरा बाप न था, तेरा दुश्मन था! मैंने तेरे गले पर छुरी चलाई। अब धुआँ साफ हो गया। आह, वह फौज कहाँ है जो सैलाब की तरह बढ़ती आती थी और इन दीवारों से टकरा रही थी। खन्दकें लाशों से भरी हुई हैं और वह जिसका मैं दुश्मन था, जिसका कातिल, वह बेटा, वह मेरा दुलारा असकरी कहाँ है, कहीं नजर नहीं आत....आह....।'

–जमाना, नवम्बर, *1918*

मुबारक बीमारी

रात के नौ बज गए थे। एक युवती अंगीठी के सामने बैठी हुई आग फूँकती और उसके गाल आग के कुंदनी रंग में दहक रहे थे। उसकी बड़ी-बड़ी नरगिसी औंखें दरवाजे की तरफ लगी हुई थीं। कभी चौंककर गिन की तरफ ताकतीं कभी कमरे की तरफ। फिर आनेवालों की इस देरी से त्योरियों पर बल पड़ जाते और आँखों में हलका-सा गुस्सा नजर आता। कमल पानी में झकोले खाने लगता।

इसी बीच आनेवालों की आहट मिली। कहार बाहर पड़ा खर्राटे ले रहा था। बूढ़े लाला हरनामदास ने आते ही उसे एक ठोकर लगाकर कहा—कम्बख्त अभी शाम हुई है और अभी से लंबी तान दी!

नौजवान लाला हरिदास घर में दाखिल हुए—चेहरा बुझा हुआ, चिन्तित। देवकी ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और गुस्से व प्यार की मिली हुई आवाज से बोली—आज इतनी देर क्यों हुई?

दोनों नए खिले हुए फूल थे—एक पर ओस की ताजगी थी, दूसरा धूप से मुरझाया हुआ।

हरिदास—हाँ, आज देर हो गई, तुम यहाँ क्यों बैठी रहीं?

देवकी—क्या करती, आग बुझी जाती थी, खाना न ठण्डा हो जाता। हरिदास-तुम जरा से काम के लिए इतनी देर आग के सामने न बैठा करो। बाज आया गरम खाने से।

देवकी—अच्छा कपड़े तो उतारो, आज इतनी देर क्यों की?

हरिदास—क्या बताऊँ, पिताजी ने ऐसा नाक में दम कर दिया है कि कुछ कहते नहीं बनता। इस रोज-रोज की झंझट से तो यही अच्छा है कि मैं कहीं और नौकरी कर लूँ।

लाला हरनामदास एक आटे की चक्की के मालिक थे। उनकी जवानी के दिनों में आस-पास दूसरी चक्की न थी। उन्होंने खूब धन कमाया। मगर अब वह हालत न थी। चक्कियाँ कीड़े-मकोड़ों की तरह पैदा हो गई थीं नई मशीनों और ईजादों के साथ। उनके काम करनेवाले भी जोशीले नौजवान थे, मुस्तैदी से काम करते थे। इसलिए हरनामदास का कारखाना रोज गिरता जाता। बूढ़े आदमियों को नई चीजों से जो चिढ़ हो जाती है वह लाला हरनामदास को भी थी। वह अपनी पुरानी मशीन ही को चलाते थे, किसी किस्म की तरक्की या सुधार को पाप समझते थे, मगर अपनी इस मन्दी पर कुड़ा करते थे। हरिदास ने उनकी मर्जी के खिलाफ कॉलेजिएट शिक्षा प्राप्त की थी और उसका इरादा था कि अपने पिता के कारखाने को नए उसूलों पर चलाकर आगे बढ़ाए। लेकिन जब वह उनसे किसी परिवर्तन या सुधार का जिक्र करता तो लाला साहब जामे से बाहर हो जाते और बड़े गर्व से कहते—कॉलेज में पढ़ने से तजुर्बा नहीं आता। तुम अभी बच्चे हो, इस काम में मेरे बाल सफेद हो गए हैं तुम मुझे सलाह मत दो। जिस तरह मैं कहता हूँ काम किए जाओ।

कई बार ऐसे मौके आ चुके थे कि बहुत ही छोटे मामलों में अपने पिता की मर्जी के खिलाफ काम करने के जुर्म में हरिदास को सखा फटकारें सहनी पड़ी थीं। इसी वजह से अब वह इस काम से कुछ उदासीन हो गया था और किसी दूसरे कारखाने में किस्मत आजमाना चाहता था जहाँ उसे अपने विचारों को अमली सूरत देने की ज्यादा सहूलियतें हासिल हों।

देवकी ने सहानुभूतिपूर्वक कहा—तुम इस फिक्र में क्यों जान खपाते हो, जैसे वह कहें, वैसे ही करो, भला दूसरी जगह नौकरी कर लोगे तो वह क्या कहेंगे? और चाहे वे गुस्से के मारे कुछ न बोलें लेकिन दुनिया तो तुम्हीं को बुरा कहेगी।

देवकी नई शिक्षा के आभूषण से वंचित थी। उसने स्वार्थ का पाठ न पढ़ा था, मगर उसका पति अपने ' अलमामेटर ' का एक प्रतिष्ठित सदस्य था। उसे अपनी योग्यता पर पूरा भरोसा था। उस पर नाम कमाने का जोश। इसलिए वह अपने बूढ़े पिता के पुराने दरों को देखकर धीरज खो बैठता था। अगर अपनी योग्यताओं के लाभप्रद उपयोग की कोशिश के लिए दुनिया उसे बुरा कहे, तो उसको परवाह न थी। झुँझलाकर बोला—कुछ मैं अमरित की घरिया पीकर तो आया नहीं हूँ कि सारी उम्र उनके मरने का इन्तजार किया करूँ। मूर्खों की अनुचित टीका-टिप्पणियों के डर से क्या अपनी उम्र बरबाद कर दूँ। मैं अपने कुछ हमउम्रों को जानता हूँ जो हरगिज मेरी-सी योग्यता नहीं रखते। लेकिन वह मोटर पर हवा खाने निकलते हैं बंगले में रहते हैं और शान से जिंदगी बसर करते हैं तो मैं क्यों हाथ पर हाथ रखे जिन्दगी को अमर समझे बैठा रहूँ। सन्तोष और निस्पृहता का युग बीत गया। यह संघर्ष का युग है। यह मैं जानता हूँ कि पिता का आदर करना मेरा धर्म है। मगर सिद्धांतों के मामले में मैं उनसे क्या किसी से भी नहीं दब सकता।

इसी बीच कहार ने आकर कहा—लालाजी थाली माँगते हैं।

लाला हरनामदास हिन्दू रस्म-रिवाज के बड़े पाबंद थे। मगर बुढ़ापे के कारण चौके के चक्कर से मुक्ति पा चुके थे। पहले कुछ दिनों तक जाड़ों में रात को पूरियाँ खाते रहे अब कमजोरी के कारण पूरियाँ न हजम होती थीं इसलिए चपातियाँ ही अपनी बैठक में मँगा लिया करते थे। मजबूरी ने वह कराया था जो हुज्जत और दलील के काबू से बाहर था।

हरिदास के लिए भी देवकी ने खाना निकाला। पहले तो वह हजरत बहुत दुःखी नजर आते थे, लेकिन बघार की खुशबू ने खाने के लिए चाव पैदा कर दिया था। अक्सर हम अपनी आँख और नाक से हाजमे का काम लिया करते हैं।

:: 2 ::

लाला हरनामदास रात को भले चंगे सोए लेकिन अपने बेटे की गुजाखियों और कुछ अपने कारबार की सुस्ती और मन्दी उनकी आत्मा के लिए भयानक कष्ट का कारण हो गई और चाहे इसी उद्विग्नता का असर हो, चाहे बुढ़ापे का, सुबह होने से पहले उन पर लकवे का हमला हो गया। जबान बंद हो गई और चेहरा ऐंठ गया। हरिदास डाक्टर के पास दौड़ा। डाक्टर आए मरीज को देखा और बोले—डरने की कोई बात नहीं। सेहत होगी मगर तीन महीने से कम न लगेंगे। चिन्ताओं के कारण यह हमला हुआ है इसलिए कोशिश करनी चाहिए कि वह आराम से सोएँ परेशान न हों और जबान खुल जाने पर भी जहाँ तक मुमकिन हो, बोलने से बचें।

बेचारी देवकी बैठी रो रही थी। हरिदास ने आकर उसको साज्वना दी और फिर डाक्टर के यहाँ से दवा लाकर दी। थोड़ी देर में मरीज को होश आया, इधर-उधर कुछ खोजती हुई-सी निगाहों से देखा कि जैसे कुछ कहना चाहते हैं और फिर इशारे से लिखने के लिए कागज

माँगा। हरिदास ने कागज और पेंसिल रख दी, तो बूढ़े लाला साहब ने हाथों को खूब सँभालकर लिखा—इंतजाम दीनानाथ के हाथ में रहे।

ये शब्द हरिदास के हृदय में तीर की तरह लगे। अफसोस! अब भी मुझ पर भरोसा नहीं। यानी कि दीनानाथ मेरा मालिक होगा और मैं उसका गुलाम बनकर रहूँगा! यह नहीं होने का। कागज लिये हुए देवकी के पास आए और बोले—लालाजी ने दीनानाथ को मैनेजर बनाया है, उन्हें मुझ पर इतना एतबार भी नहीं है, लेकिन मैं इस मौके को हाथ से न जाने दूँगा। उनकी बीमारी का अफसोस तो जरूर है मगर शायद परमात्मा ने मुझे अपनी योग्यता दिखलाने का यह अवसर दिया है। और इससे मैं जरूर फायदा उठाऊँगा। कारखाने के कर्मचारियों ने इस दुर्घटना की खबर सुनी तो बहुत घबराए। उनमें कई निकम्मे, बेमसरफ आदमी भरे हुए थे, जो सिर्फ खुशामद और चिकनी-चुपड़ी बातों की रोटी खाते थे। मिस्त्री ने कई दूसरे कारखानों में मरम्मत का काम उठा लिया और रोज किसी-न-किसी बहाने से खिसक जाता था। फायरमैन और मशीनमैन दिन को तो झूठ-मूठ चक्की की सफाई में काटते थे और रात को काम करके ओवर टाइम की मजदूरी ले लिया करते थे। दीनानाथ जरूर होशियार और तजुर्बेकार आदमी था, मगर उसे भी काम करने के मुकाबले में ' जी हाँ ' रटते रहने में ज्यादा मजा आता था। लाला हरनामदास मजदूरी देने में बहुत हौले-हवाले किया करते थे और अक्सर काट-कपट के भी आदी थे। इसी को वह कारबार का अच्छा उसूल समझते थे।

हरिदास ने कारखाने में पहुँचते ही साफ शब्दों में कह दिया कि तुम लोगों को मेरे वक्त में जी लगाकर काम करना होगा। मैं इसी महीने में काम देखकर सबकी तरक्की करूँगा। मगर अब टालमटोल का गुजर नहीं, जिन्हें मंजूर न हो वह अपना बोरिया-बिस्तर सँभाले और फिर दीनानाथ को बुलाकर कहा—भाई साहब, मुझे खूब मालूम है कि आप होशियार और सूझबूझ रखनेवाले आदमी हैं। आपने अब तक यहाँ का जो रंग देखा, वही अख्तियार किया है। लेकिन अब मुझे आपके तजुर्बे और मेहनत की जरूरत है। पुराने हिसाबों की जाँच-पड़ताल कीजिए। बाहर से काम लाना मेरा जिम्मा है लेकिन यहाँ का इंतजाम आपके सुपुर्द है। जो कुछ नफा होगा उसमें आपका भी हिस्सा होगा। मैं चाहता हूँ कि दादा की अनुपस्थिति में कुछ अच्छा काम करके दिखाऊँ।

इस मुस्तैदी और चुस्ती का असर बहुत जल्द कारखाने में नजर आने लगा। हरिदास ने खूब इश्तहार बँटवाए। उसका असर यह हुआ कि काम आने लगा। दीनानाथ की मुसीदी की बदौलत गाहकों को नियत समय पर और किफायत से आटा मिलने लगा। पहला महीना भी खत्म न हुआ था कि हरिदास ने नई मशीन मँगवाई। थोड़े अनुभवी आदमी रख लिये, फिर क्या था सारे शहर में इस कारखाने की धूम मच गई। हरिदास गाहकों से इतनी अच्छी तरह पेश आता कि जो एक बार उससे मुआमला करता वह हमेशा के लिए उसका खरीदार बन जाता। कर्मचारियों के साथ उसका सिद्धान्त था—काम सख्त और मजदूरी ठीक। उसके ऊँचे व्यक्तित्व का भी स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ा। करीब-करीब सभी कारखानों का रंग फीका पड़ गया। उसने बहुत ही कम नफे पर कई ठेके ले लिये। मशीन को दम मारने की मोहलत न थी, रात और दिन काम होता था। तीसरा महीना खत्म होते-होते उस कारखाने की शक्ल ही बदल गई। हाते में घुसते ही ठेले और गाड़ियों की भीड़ नजर आती थी। कारखाने

में बड़ी चहल-पहल थी—हर आदमी अपने-अपने काम में लगा हुआ। इसके साथ ही प्रबन्ध-कौशल का यह वरदान था कि भद्दी हड़बड़ी और जल्दबाजी का कहीं निशान न था।

:: 3 ::

लाला हरनामदास धीरे-धीरे ठीक होने लगे। एक महीने के बाद वह रुक-रुककर कुछ बोलने लगे। डाक्टर की सख्त ताकीद थी कि उन्हें पूरी शांति की स्थिति में रखा जाए मगर जब से उनकी जबान खुली उन्हें एक दम को भी चैन न था। देवकी से कहा करते—सारा कारबार मिट्टी में मिला जाता है। यह लड़का नहीं मालूम क्या कर रहा है, सारा काम अपने हाथ में ले रखा है। मैंने ताकीद कर दी थी कि दीनानाथ को मैनेजर बनाना लेकिन उसने जरा भी परवाह न की। मेरी सारी उम्र की कमाई बरबाद हुई जाती है।

देवकी उनको सांत्वना देती कि आप इन बातों की आशंका न करें। कारबार बहुत खूबी से चल रहा है और खूब नफा हो रहा है। पर वह भी इस मामले को तूल देते हुए डरती थी कि कहीं लकवे का फिर हमला न हो जाए। हूँ-हाँ कहकर टालना चाहती थी। हरिदास ज्योंही घर में आता, लालाजी उस पर सवालों की बौछार कर देते और जब वह टालकर कोई दूसरा जिक्र छेड़ देता तो बिगड़ जाते और कहते—जालिम, तू जीते-जी मेरे गले में छुरी फेर रहा है। मेरी पूँजी उड़ा रहा है। तुझे क्या मालूम कि मैंने एक-एक कौड़ी किस मशक्कत से जमा की है। तूने दिल में ठान ली है कि इस बुढ़ापे में मुझे गली-गली ठोकर खिलाए मुझे कौड़ी-कौड़ी का मुहताज बनाए।

हरिदास फटकार का कोई जवाब न देता क्योंकि बात से बात बढ़ती है। उसकी चुप्पी से लाला साहब को यकीन हो जाता कि जरूर कारखाना तबाह हो गया।

एक रोज देवकी ने हरिदास से कहा—अभी कितने दिन और इन बातों को लालाजी से छिपाओगे

हरिदास ने जवाब दिया—मैं चाहता हूँ कि नई मशीन का रुपया अदा हो जाए तो उन्हें ले जाकर सब कुछ दिखा दूँ। तब तक डाक्टर साहब की हिदायत के अनुसार तीन महीने भी पूरे हो जाएँगे।

देवकी—लेकिन इस छिपाने से क्या फायदा, जब वे आठों पहर इसी की रट लगाए रहते हैं। इससे तो चिंता और बढ़ती ही है, कम नहीं होती। इससे तो यही अच्छा है कि उनसे सब कुछ कह दिया जाए।

हरिदास—मेरे कहने का तो उन्हें यकीन आ चुका! हाँ, दीनानाथ कहें तो शायद यकीन हो।

देवकी—अच्छा तो कल दीनानाथ को यहाँ भेज दो। लालाजी उसे देखते ही खुद बुला लेंगे, तुम्हें इस रोज-रोज की डाँट-फटकार से तो छुट्टी मिल जाएगी।

हरिदास—अब मुझे इन फटकारों का जरा भी दुःख नहीं होता। मेरी मेहनत और योग्यता का नतीजा आँखों के सामने मौजूद है। जब मैंने कारखाना अपने हाथ में लिया था, आमदनी और खर्च का मीजान मुश्किल से बैठता था। आज पाँच सौ नफा है। तीसरा महीना खत्म होनेवाला है और मैं मशीन की आधी कीमत अदा कर चुका। शायद अगले दो महीनों

में पूरी कीमत अदा हो जाएगी। उस वक्त से कारखाने का खर्च तिगुने से ज्यादा है लेकिन आमदनी पंचगुनी हो गई है। हजरत देखेंगे तो आँखें खुल जाएँगी। कहाँ हाते में उल्लू बोलते थे। एक मेज पर बैठे आप ऊँघा करते थे, एक पर दीनानाथ कान कुरेदा करता था। मिस्त्री और फायरमैन ताश खेलते थे। बस दिन में दो-चार घंटे चक्की चल जाती थी। अब दम मारने की फुरसत नहीं है। सारी जिंदगी में जो कुछ न कर सके वह मैंने तीन महीने में करके दिखा दिया। इसी तजुर्बे और कार्रवाई पर आपको इतना घमंड था। जितना काम वह एक महीने में करते थे उतना मैं रोज कर डालता हूँ।

देवकी ने भर्त्सनापूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—अपने मुँह मियाँ मिख बनना कोई तुमसे सीख ले! जिस तरह माँ अपने बेटे को हमेशा दुबला ही समझती है, उसी तरह बाप भी बेटे को हमेशा नादान समझा करता है। यह उनकी ममता है बुरा मानने की बात नहीं है।

हरिदास ने लज्जित होकर सर झुका लिया।

:: 4 ::

दूसरे रोज दीनानाथ उनको देखने के बहाने से लाला हरनामदास की सेवा में उपस्थित हुआ। लालाजी उसे देखते ही तकिये के सहारे उठ बैठे और पागलों की तरह बेचैन होकर पूछा—क्यों, कारबार सब तबाह हो गया कि अभी कुछ कसर बाकी है! तुम लोगों ने तो मुझे मुर्दा समझ लिया है। कभी बात तक न पूछी। कम से कम तुमसे मुझे ऐसी उम्मीद न थी। बहू ने मेरी तीमारदारी न की होती तो मर ही गया होता।

दीनानाथ—आपका कुशल-मंगल रोज बाबू साहब से पूछ लिया करता था। आपने मेरे साथ जो नेकियों की हैं उन्हें मैं भूल नहीं सकता। मेरा एक-एक रोआँ आपका एहसानमंद है। मगर इस बीच काम ही कुछ ऐसा था कि हाजिर होने की मोहलत न मिली।

हरनामदास—खैर, कारखाने का क्या हाल है? दीवाला होने में क्या कसर बाकी है?

दीनानाथ ने ताज्जुब के साथ कहा-यह आपसे किसने कह दिया कि दीवाला होने वाला है? इस अरसे में कारोबार में जो तरक्की हुई है वह आप खुद अपनी अस्त्रों से देख लेंगे।

हरनामदास व्यंग्यपूर्वक बोले—शायद तुम्हारे बाबू साहब ने तुम्हारी मनचाही तरक्की कर दी! अच्छा, अब स्वामिभक्ति छोडो और साफ बतलाओ। मैंने ताकीद कर दी थी कि कारखाने का इंतजाम तुम्हारे हाथ में रहेगा। मगर शायद हरिदास ने सब कुछ अपने ही हाथ में रखा।

दीनानाथ—जी हाँ, मगर मुझे इसका जरा भी दुःख नहीं। वही इस काम के लिए ठीक भी थे। जो कुछ उन्होंने कर दिखाया, वह मुझसे हरगिज न हो सकता।

हरनामदास—मुझे यह सुन-सुनकर हैरत होती है। बतलाओ, क्या तरक्की हुई?

दीनानाथ—तफसील तो बहुत ज्यादा होगी, मगर थोड़े में यह समझ लीजिए कि पहले हम लोग जितना काम एक महीने में करते थे उतना अब रोज होता है। नई मशीन आई थी, उसकी आधी कीमत अदा हो चुकी है। वह अक्सर रात को भी चलती है। ठाकुर कंपनी का पाँच हजार मन आटे का ठीका लिया था, वह पूरा होनेवाला है। जगतराम बनवारीलाल से कमसरियट का ठेका लिया है। उन्होंने हमको पाँच सौ बोरे माहवार का बयाना दिया है।

इसी तरह और फुटकर काम कई गुना बढ़ गया है। आमदनी के साथ खर्च भी बड़े हैं। कई आदमी नए रखे गए हैं मुलाजिमों को मजदूरी के साथ कमीशन भी मिलता है मगर खालिस नफा पहले के मुकाबले में चौगुने के करीब है।

हरनामदास ने बड़े ध्यान से यह बातें सुनीं। वह गौर से दीनानाथ के चेहरे की तरफ देख रहे थे। शायद उसके दिल में पैठकर सच्चाई की तह तक पहुँचना चाहते थे। संदेहपूर्ण स्वर में बोले—दीनानाथ, तुम कभी मुझसे झूठ नहीं बोलते थे लेकिन तो भी मुझे इन बातों पर यकीन नहीं आता और जब तक अपनी आँखों से देख न लूँगा, यकीन न आएगा।

दीनानाथ कुछ निराश होकर विदा हुआ। उसे आशा थी कि लाला साहब तरक्की और कारगुजारी की बात सुनते ही फूले न समाएँगे और मेरी मेहनत की दाद देंगे। उस बेचारे को न मालूम था कि कुछ दिलों में संदेह की जड़ इतनी मजबूत होती है कि सबूत और दलील के हमले उस पर कुछ असर नहीं कर सकते। यहाँ तक कि वह अपनी आँख से देखने को भी धोखा या तिलिस्म समझता है।

दीनानाथ के चले जाने के बाद लाला हरनामदास कुछ देर तक गहरे विचार में डूबे रहे और फिर यकायक कहार से बग्घी मँगवाई, लाठी के सहारे बग्घी में आ बैठे और उसे अपने चक्कीघर चलने का हुक्म दिया।

दोपहर का वक्त था। कारखानों के मजदूर खाना खाने के लिए गोल के गोल भागे चले आते थे। मगर हरिदास के कारखाने में काम जारी था। बग्घी हाते में दाखिल हुई। दोनों तरफ फूलों की कतारें नजर आईं, माली क्यारियों में पानी दे रहा था। ठेले और गाड़ियों के मारे बग्घी को निकलने की जगह न मिलती थी। जिधर निगाह जाती थी, सफाई और हरियाली नजर आती थी।

हरिदास अपने मुहर्रिर को कुछ खतों का मसौदा लिखा रहा था कि बूढ़े लाला जी लाठी टेकते हुए कारखाने में दाखिल हुए। हरिदास फौरन उठ खड़ा हुआ और उन्हें हाथों का सहारा देते हुए बोला—' आपने कहला क्यों न भेजा कि मैं आना चाहता हूँ पालकी मँगवा देता। आपको बहुत तकलीफ हुई। ' यह कहकर उसने एक आरामकुर्सी बैठने के लिए खिसका दी। कारखाने के कर्मचारी दौड़े और उनके चारों तरफ बहुत अदब के साथ खड़े हो गए। हरनामदास कुर्सी पर बैठ गए और बोरों के छत चूमनेवाले ढेर पर नजर दौड़कर बोले —मालूम होता है दीनानाथ सच कहता था। मुझे यहाँ कई नई सूरतें नजर आती हैं। भला कितना काम रोज होता है?

हरिदास—आजकल काम ज्यादा आ गया था इसलिए कोई पाँच सौ मन रोजाना तैयार हो जाता था लेकिन औसत ढाई सौ मन का रहेगा। मुझे नई मशीन की कीमत अदा करनी थी इसलिए अक्सर रात को भी काम होता है।

हरनामदास—कुछ कर्ज लेना पड़ा

हरिदास—एक कौड़ी नहीं। सिर्फ मशीन की आधी कीमत बाकी है।

हरनामदास के चेहरे पर इत्मीनान का रंग नजर आया। संदेह ने विश्वास को जगह दी। प्यारभरी अस्त्रों से लड़के की तरफ देखा और करुण स्वर में बोले—बेटा, मैंने तुम्हारे ऊपर बड़ा जुल्म किया, मुझे माफ करो। मुझे आदमियों की पहचान का बड़ा घमंड था, लेकिन मुझे बहुत धोखा हुआ। मुझे अब से बहुत पहले इस काम से हाथ खींच लेना चाहिए था। मैंने

तुम्हें बहुत नुकसान पहुँचाया। यह बीमारी बड़ी मुबारक है जिसने मुझे तुम्हारी परख का मौका दिया और तुम्हें अपनी लियाकत दिखाने का। काश, यह हमला पाँच साल पहले ही हुआ होता। ईश्वर तुम्हें खुश रखे और हमेशा उन्नति दे, यही तुम्हारे बूढ़े बाप का आशीर्वाद है।

–'प्रेम पचीसी' से

वासना की कड़ियाँ

बहादुर, भाग्यशाली कासिम मुलतान की लड़ाई जीतकर घमंड के नशे से चूर चला आता था। शाम हो गई थी, लश्कर के लोग आरामगाह की तलाश में नजरें दौड़ाते थे, लेकिन कासिम को अपने नामदार मालिक की खिदमत में पहुँचने का शौक उड़ाए लिये आता था। उन तैयारियों का खयाल करके जो उसके स्वागत के लिए दिल्ली में की गई होंगी उसका दिल उमंगों से भरपूर हो रहा था। सड़कें बन्दनवारों और झंडियों से सजी होंगी, चौराहों पर नौबतखाने अपना सुहाना राग अलापेंगे, ज्योंहिं मैं शहर के अंदर वासना दाखिल दूंगा सारे शहर में शोर मच जाएगा, तोपें अगवानी के लिए जोर-शोर से अपनी आवाजें बुलंद करेगी। हवेलियों के झरोखों पर शहर की चाँद जैसी सुंदर स्त्रियाँ आँखें गड़ाकर मुझे देखेंगी और मुझ पर फूलों की बारिश करेंगी। जड़ाऊ हौदों पर दरबार के लोग मेरी अगवानी को आएँगे। इस शान से दीवाने खास तक जाने के बाद जब मैं अपने हुजूर की खिदमत में पहुँचूँगा तो वह बाहें खोले हुए मुझे सीने से लगाने के लिए उठेंगे और मैं बड़े आदर से उनके पैरों को चूम लूँगा। आह, वह शुभ घड़ी कब आएगी? कासिम मतवाला हो गया, उसने अपने चाव की बेसुधी में घोड़े को एड लगाई।

कासिम लश्कर के पीछे था। घोड़ा एड पाते ही आगे बढ़ा, कैदियों का झुंड पीछे छूट गया। घायल सिपाहियों की डोलियाँ पीछे छूटीं, सवारों का दस्ता पीछे रहा। सवारों के आगे मुलतान के राजा की बेगमों और शहजादियों की पीनसे और सुखपाल थे। इन सवारियों के आगे-पीछे हथियारबंद ख्वाजासराओं की एक बड़ी जमात थी। कासिम अपने रौ में घोड़ा बढ़ाए चला आता था। यकायक उसे एक सजी हुई पालकी में से दो आँखें झाँकती हुई नजर आई। कासिम ठिठक गया, उसे मालूम हुआ कि मेरे हाथों के तोते उड़ गए उसे अपने दिल में एक कँपकँपी, एक कमजोरी और बुद्धि पर एक उन्माद-सा अनुभव हुआ। उसका आसन खुद-ब-खुद ढीला पड़ गया। तनी हुई गर्दन झुक गई। नजरें नीची हुई। वह दोनों आँखें दो चमकते और नाचते हुए सितारों की तरह, जिनमें जादू का-सा आकर्षण था, उसके दिल के गोशे में आ बैठतीं। वह जिधर ताकता था वहीं दोनों उमंग की रोशनी से चमकते हुए तारे नजर आते थे। उसे बच्ची नहीं लगी, कटार नहीं लगी, किसी ने उस पर जादू नहीं किया, मंतर नहीं किया, नहीं उसे अपने दिल में इस वक्त एक मजेदार बेसुधी, दर्द की एक लज्जत, मीठी-मीठी-सी एक कैफियत और एक सुहानी चुभन से भरी हुई रोने कीं-सी हालत महसूस हो रही थी। उसका रोने को जी चाहता था, किसी के दर्द की पुकार सुनकर शायद वह रो पड़ता, बेताब हो जाता। उसका दर्द का एहसास जाग उठा था जो इश्क की पहली मंजिल है।

क्षणभर बाद उसने हुक्म दिया—आज हमारा यहीं कयाम होगा।

:: 2 ::

आधी रात गुजर चुकी थी, लश्कर के आदमी मीठी नींद सो रहे थे। चारों तरफ मशालें

जलती थीं और तिलाए के जवान जगह-जगह बैठे जम्हाइयाँ लेते थे। लेकिन कासिम की आँखों में नींद न थी। वह अपने लंबे-चौड़े पुरलुत्फ खेमे में बैठा हुआ सोच रहा था—क्या इस जवान औरत को एक नजर देख लेना कोई बड़ा गुनाह है? माना कि वह मुलतान के राजा की शहजादी है और मेरे बादशाह अपने हरम को उससे रौशन करना चाहते हैं लेकिन मेरी आरजू तो सिर्फ इतनी है कि उसे एक निगाह देख लूँ और वह भी इस तरह कि किसी को खबर न हो। बस। और मान लो यह गुनाह भी हो तो मैं इस वक्त यह गुनाह करूँगा। अभी हजारों बेगुनाहों को इन्हीं हाथों से कत्ल कर आया हूँ। क्या खुदा के दरबार में इन गुनाहों की माफी सिर्फ इसलिए हो जाएगी कि वह बादशाह के हुक्म से किए गए? कुछ भी हो, किसी नाजनीन को एक नजर देख लेना किसी की जान लेने से बड़ा गुनाह नहीं। कम से कम मैं ऐसा नहीं समझत:।

कासिम दीनदार नौजवान था। वह देर तक इस काम के नैतिक पहलू पर गौर करता रहा। मुलतान को फतेह करनेवाला हीरो दूसरी बाधाओं को क्यों खयाल में लाता?

उसने अपने खेमे से बाहर निकलकर देखा, बेगमों के खेमे थोड़ी ही दूर पर गड़े हुए थे। कासिम ने जानबूझकर अपना खेमा उनके पास लगाया था। इन खेमों के चारों तरफ कई मशालें जल रही थीं और पाँच हब्शी ख्वाजासरा नंगी तलवारें लिये टहल रहे थे। कासिम आकर मसनद पर लेट गया और सोचने लगा—इन कम्बख्तों को क्या नींद न आएगी। और चारों तरफ इतनी मशालें क्यों जला रखी हैं? इनका गुल होना जरूरी है। इसलिए पुकारा-मसरूर!

—हुजूर, फरमाइए?

—मशालें बुझा दो, मुझे नींद नहीं आती।

—हुजूर, रात अँधेरी है।

—कोई डर नहीं। तिलाए के जवान होशियार हैं।

—सब की सब गुल कर दी जाएँ?

—हाँ।

—जैसी हुजूर की मर्जी।

ख्वाजासरा चला गया और एक पल में सब की सब मशालें गुल हो गई, अँधेरा छा गया। थोड़ी देर में एक औरत ने शहजादी के खेमे से निकलकर पूछा—मसरूर, सरकार पूछती हैं यह मशालें क्यों बुझा दी गईं?

मसरूर बोला—सिपहदार साहब की मर्जी। तुम लोग होशियार रहना, मुझे उनकी नीयत साफ नहीं मालूम होती।

:: 3 ::

कासिम उत्सुकता से व्यग्र होकर कभी लेटता था, कभी उठ बैठता था, कभी टहलने लगता था। बार-बार दरवाजे पर आकर देखता, लेकिन पाँचों ख्वाजासरा देवों की तरह खड़े नजर आते थे। कासिम को इस वक्त यही धुन थी कि शहजादी का दर्शन क्योंकर हो? अंजाम की फिक्र, बदनामी का डर और शाही गुस्से का खतरा उस पुरजोर ख्वाहिश के नीचे दब गया

था।

घड़ियाल ने एक बजाया। कासिम यों चौंक पड़ा गोया कोई अनहोनी बात हो गई। जैसे कचहरी में बैठा हुआ कोई फरियादी अपने नाम की पुकार सुनकर चौंक पड़ता है। ओं हो तीन ही घंटों में सुबह हो जाएगी। खेमे उखड़ जाएँगे। लश्कर कूच कर देगा। वक्त तंग है। अब देर करने की, हिचकिचाने की गुंजाइश नहीं। कल दिल्ली पहुँच जाएँगे। अरमान दिल में क्यों रह जाए किसी तरह इन हरामखोर ख्वाजासराओं को चकमा देना चाहिए। उसने बाहर निकल आवाज दो—मसरूर।

—हुजूर फरमाइए।

—होशियार हो न?

—हुजूर, पलक तक नहीं झपकी।

—नींद तो आती ही होगी, कैसी ठंडी हवा चल रही है।

—जब हुजूर ही ने अभी तक आराम नहीं फरमाया तो गुलामों को क्योंकर नींद आती।

—मैं तुम्हें कुछ तकलीफ देना चाहता हूँ।

—कहिए।

—तुम्हारे साथ पाँच आदमी हैं उन्हें लेकर जरा एक बार लश्कर का चक्कर लगा आओ। देखो, लोग क्या कर रहे हैं। अक्सर सिपाही रात को जुआ खेलते हैं। बाज आस-पास के इलाकों में जाकर खरमस्ती किया करते हैं। जरा होशियारी से काम करना।

मसरूर-मगर यहाँ मैदान खाली हो जाएगा।

कासिम—मैं तुम्हारे आने तक खबरदार रहूँगा।

—जो मर्जी हुजूर।

कासिम—मैंने तुम्हें मोतबर समझकर यह खिदमत सुपुर्द की है, इसका मुआवजा, इंशाअल्लाह तुम्हें सरकार से अता होगा।

मसरूर ने दबी जबान से कहा—बन्दा आपकी यह चालें सब समझता है। इंशाअल्लाह सरकार से आपको भी इसका इनाम मिलेगा। और तब जोर से बोला—आपकी बड़ी मेहरबानी है।

एक लमहे में पाँचों ख्वाजासरा लश्कर की तरफ चले। कासिम ने उन्हें जाते देखा। मैदान साफ हो गया। अब वह बेधड़क खेमे में जा सकता था। लेकिन अब कासिम को मालूम हुआ कि अंदर जाना इतना आसान नहीं है जितना वह समझा था। गुनाह का पहलू उसकी नजर से ओझल हो गया था। अब सिर्फ जाहिरी मुश्किलों पर निगाह थी।

:: 4 ::

कासिम दबे पाँव शहजादी के खेमे के पास आया, हालाकि दबे पाँव आने की जरूरत न थी। उस सन्नाटे में वह अगर दौड़ता हुआ चलता तो भी किसी को खबर न होती। उसने खेमे से कान लगाकर सुना, किसी की आहट न मिली। इत्मीनान हो गया। तब उसने कमर से चाकू निकाला और काँपते हुए हाथों से खेमे की दो-तीन रस्सियाँ काट डालीं। अंदर जाने का रास्ता निकल आया। उसने अंदर की तरफ झाँका। एक दीपक जल रहा था। दो बांदियाँ फर्श

पर लेटी हुई थीं और शहजादी एक मखमली गद्दे पर सो रही थी। कासिम की हिम्मत बड़ी। वह सरककर अंदर चला गया और दबे पाँव शहजादी के करीब जाकर उसके दिलफरेब हुस्न का अमृत पीने लगा। उसे अब वह भय न था जो खेमे में आते वक्त हुआ था। उसने जरूरत पड़ने पर अपनी भागने की राह सोच ली थी।

कासिम एक मिनट तक मूरत की तरह खड़ा शहजादी को देखता रहा। काली-काली लटें खुलकर उसके गालों को छिपाए हुए थीं। गोया काले-काले अक्षरों में एक चमकता हुआ शायराना खयाल छिपा हुआ था। मिट्टी की इस दुनिया में यह मजा, यह घुलावट, यह दीप्ति कहाँ? कासिम की आँखें इस दृश्य के नशे में चूर हो गईं। उसके दिल पर एक उमंग बढ़ानेवाला उन्माद-सा छा गया, जो नतीजों से नहीं डरता था। उत्कंठा ने इच्छा का रूप धारण किया। उत्कंठा में अधीरता थी और आवेश, इच्छा में एक उन्माद और पीड़ा का आनन्द। उसके दिल में इस सुन्दरी के पैरों पर सर मलने की, उसके सामने रोने की, उसके कदमों पर जान देने की, प्रेम का निवेदन करने की, अपने गम का बयान करने की एक लहर-सी उठने लगी। वासना के भँवर में पड़ गया।

:: 5 ::

कासिम आध घंटे तक उस रूप की रानी के पैरों के पास सिर झुकाए सोचता रहा कि उसे कैसे जगाऊँ। ज्योंही वह करवट बदलती, वह डर के मारे थरथरा जाता। वह बहादुरी जिसने मुलतान को जीता था, उसका साथ छोड़े देती थी।

यकायक कासिम की निगाह एक सुनहरे गुलाबपाश पर पड़ी जो करीब ही एक चौकी पर रखा हुआ था। उसने गुलाबपाश उठा लिया और एक मिनट खड़ा सोचता रहा कि शहजादी को जगाऊँ या न जगाऊँ? सोने की डली पड़ी हुई देखकर हमें उसके उठाने में जो आगा-पीछा होता है, वही इस वक्त उसे हो रहा था। आखिरकार उसने कलेजा मजबूत करके शहजादी के कांतिमान मुखमंडल पर गुलाब के कई छींटे दिए। दीपक मोतियों की लड़ी से सज उठा।

शहजादी ने चौंककर आँखें खोलीं और कासिम को सामने खड़ा देखकर फौरन मुँह पर नकाब खींच लिया और धीरे से बोली—मसरूर!

कासिम ने कहा—मसरूर तो यहाँ नहीं है लेकिन मुझे भी अपना एक अदना जांबाज खादिम समझिए। जो हुक्म होगा उसकी तामील में बाल बराबर उज्र न होगा।

शहजादी ने नकाब और खींच लिया और खेमे के एक कोने में जाकर खड़ी हो गई।

कासिम को अपनी वाक्-शक्ति का आज पहली बार अनुभव हुआ। वह बहुत कम बोलनेवाला और गंभीर आदमी था। अपने हृदय के भावों को प्रकट करने में उसे हमेशा झिझक होती थी लेकिन इस वक्त शब्द बारिश की बूँदों की तरह उसकी जबान पर आने लगे। गहरे पानी के बहाव में एक दर्द का स्वर पैदा हो जाता है। बोला—मैं जानता हूँ कि मेरी यह गुस्ताखी आपकी नाजुक तबीयत पर नागवार गुजरी है। हुजूर, इसकी जो सजा मुनासिब समझें उसके लिए यह सिर झुका हुआ है। आह, मैं ही वह बदनसीब, काले दिल का इंसान हूँ? जिसने आपके बुजुर्ग बाप और प्यारे भाइयों के खून से अपना दामन नापाक

किया है। मेरे ही हाथों मुलतान के हजारों जवान मारे गए सल्लनत तबाह हो गई, शाही खानदान पर मुसीबत आई और आपको यह स्याह दिन देखना पड़ा। लेकिन इस वक्त आपका यह मुजरिम आपके सामने हाथ बाँधे हाजिर है। आपके एक इशारे पर वह आपके कदमों पर न्योछावर हो जाएगा और उसकी नापाक जिंदगी से दुनिया पाक हो जाएगी। मुझे आज मालूम हुआ कि बहादुरी के परदे में वासना आदमी से कैसे-कैसे पाप करवाती है। यह महज लालच की आग है राख में छिपी हुई। सिर्फ एक कातिल जहर है, खुशनुमा शीशे में बंद! काश, मेरी आँखें पहले खुली होतीं तो एक नामवर शाही खानदान यों खाक में न मिल जाता। पर इस मुहब्बत की शमा ने, जो कल शाम को मेरे सीने में रोशन हुई, इस अँधेरे कोने को रोशनी से भर दिया। यह उन रूहानी जज्बात का फैज है जो कल मेरे दिल में जाग उठे जिन्होंने मुझे लालच की कैद से आजाद कर दिया।

इसके बाद कासिम ने अपनी बेकरारी और दर्दे-दिल और वियोग की पीड़ा का बहुत ही करुण शब्दों में वर्णन किया, यहाँ तक कि उसके शब्दों का भंडार खत्म हो गया। अपना हाल कह सुनाने की लालसा पूरी हो गई।

:: 6 ::

लेकिन वह वासना का बंदी वहाँ से हिला नहीं। उसकी आरजुओं ने एक कदम और आगे बढ़ाया। मेरी इस रामकहानी का हासिल क्या? अगर सिर्फ दर्दे-दिल ही सुनाना था, तो किसी तसवीर को सुना सकता था। वह तसवीर इससे ज्यादा हमान से और खामोशी से मेरे गम की दास्तान सुनती। काश, मैं भी इस रूप की रानी की मीठी आवाज सुनता, वह भी मुझसे कुछ अपने दिल का हाल कहती, मुझे मालूम होता कि मेरे इस दर्द के किस्से का उसके दिल पर क्या असर हुआ। काश, मुझे मालूम होता कि जिस आग में मैं फूंका जा रहा हूँ कुछ उसकी आँच उधर भी पहुँचती है या नहीं। कौन जाने यह सच हो कि मुहब्बत पहले माशूक के दिल में पैदा होती है। ऐसा न होता तो वह सबको तोड़नेवाली निगाह मुझ पर पड़ी ही क्यों? आह, इस हुस्न की देवी की बातों में कितना लुत्फ आएगा। बुलबुल का गाना सभी सुनते हैं पर फूल का गाना किसने सुना है। काश, मैं वह गाना सुन सकता, उसकी आवाज कितनी दिलकश होगी, कितनी पाकीजा, कितनी नूरानी, अमृत मेँ डूबी हुई और जो कहीं वह भी मुझसे प्यार करती हो तो फिर मुझसे ज्यादा खुशनसीब दुनिया में और कौन होगा?

इस खयाल से कासिम का दिल उछलने लगा। रगों में हरकत-सी महसूस हुई। इसके बावजूद कि बांदियों के जाग जाने और मसरूर की वापसी का धड़का लगा हुआ था, आपसी बातचीत की इच्छा ने उसे अधीर कर दिया, बोला—हुस्न की मलका, यह जख्मी दिल आपकी इनायत की नजर का मुस्तहक है। कुछ उसके हाल पर रहम न कीजिएगा?

शहजादी ने नकाब की ओट से उसकी तरफ ताका और बोली—जो खुद रहम का मुस्तहक हो, वह दूसरों के साथ क्या रहम कर सकता है? कैद में तड़पते हुए पंछी से, जिसके न बाल हैं न पर, गाने की उम्मीद रखना बेकार है। मैं जानती हूँ कि कल शाम को मैं दिल्ली के जालिम बादशाह के सामने बंदियों की तरह हाथ बाँधे खड़ी हूँगी। मेरी इज्जत, मेरे रुतबे

और मेरी शान का दारोमदार खानदानी इज्जत पर नहीं बल्कि मेरी सूरत पर होगा। नसीब का हक पूरा हो जाएगा। कौन ऐसा आदमी है जो इस जिंदगी की आरजू रक्खेगा? आह, मुलतान की शहजादी आज एक जालिम, चालबाज, पापी आदमी की वासना का शिकार बनने पर मजबूर है। जाइए मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए। मैं बदनसीब हूँ र ऐसा न हो कि मेरे साथ आपको भी शाही गुस्से का शिकार बनना पड़े। दिल में कितनी ही बातें हैं मगर क्यों कहूँ र क्या हासिल? इस भेद का भेद बना रहना ही अच्छा है। आपमें सच्ची बहादुरी और खुद्दारी का जौहर है। आप दुनिया में नाम पैदा करेंगे, बड़े बड़े काम करेंगे, खुदा आपके इरादों में बरकत दें " यही इस आफत की मारी हुई औरत की दुआ है। मैं सच्चे दिल से कहती हूँ कि मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है। आज मुझे मालूम हुआ कि मुहब्बत बैर से कितनी पाक होती है। वह उस दामन में मुँह छिपाने से भी परहेज नहीं करती जो उसके अजीजों के खून से लिथड़ा हुआ हो। आज यह कम्बख्त दिल उबला पड़ता है। अपने कान बंद कर लीजिए वह अपने आपे में नहीं है, उसकी बातें न सुनिए। सिर्फ आपसे यही विनती है कि इस गरीब को भूल न जाइएगा। मेरे दिल में उस मीठी सपने की याद हमेशा ताजा रहेगी, हरम की कैद में यही सपना दिल को तसकीन देता रहेगा, इस सपने को तोड़िए मत। अब खुदा के वास्ते यहाँ से जाइए ऐसा न हो कि मसरूर आ जाय, वह एक ही जालिम है। मुझे अंदेशा है कि उसने आपको धोखा दिया, अजब नहीं कि कहीं छुपा बैठा हो, उससे होशियार रहिएगा। खुदा हाफिज!

:: 7 ::

कासिम पर एक बेसुधी कीं-सी हालत छा गई। जैसे आत्मा का गीत सुनने के बाद किसी योगी की होती है। उसे सपने में भी जो उम्मीद न हो सकती थी, वह पूरी हो गई थी। गर्व से उसकी गर्दन की से तन गई, उसे मालूम हुआ कि दुनिया में मुझसे ज्यादा भाग्यशाली दूसरा नहीं है। मैं चाहें तो इस रूप की वाटिका की बहार लूट सकता हूँ इस प्याले से मस्त हो सकता हूँ। आह, वह कितनी नशीली, कितनी मुबारक जिंदगी होगी! अब तक कासिम की मुहब्बत ग्वाले का दूध थी, पानी से मिली हुई; शहजादी के दिल की तड़प ने पानी को जलाकर सच्चाई का रंग पैदा कर दिया। उसके दिल ने कहा—मैं इस रूप की रानी के लिए क्या कुछ नहीं कर सकता? कोई ऐसी मुसीबत नहीं है जो झेल न सकूँ, कोई देसी आग नहीं, जिसमें कूद न सकूँ, मुझे किसका डर है! बादशाह का! बादशाह का गुलाम नहीं, उसके सामने हाथ फैलानेवाला नहीं उसका मुहताज नहीं। मेरे जौहर की हर एक दरबार में कद्र हो सकती है। मैं आज इस गुलामी की जंजीर को तोड़ डालूंगा और उस देश में जा बसूँगा, जहाँ बादशाह के फरिश्ते भी पर नहीं मार सकते। हुस्न की नेमत पाकर अब मुझे और किसी चीज की इच्छा नहीं। अब अपनी आरजुओं का गला क्यों घोटूँ कामनाओं को क्यों निराशा का ग्रास बनने दूँ? उसने उन्माद कीं-सी स्थिति में कमर से तलवार निकाली और जोश के साथ बोला—जब तक मेरे बाजुओं में दम है कोई आपकी तरफ आँख उठाकर भी देख नहीं सकता। चाहे वह दिल्ली का बादशाह ही क्यों न हो! मैं दिल्ली के कूचे और बाजार में खून की नदी बहा दूँगा, सल्लनत की जड़ें हिला दूँगा, शाही तख्त को उलट-पलटकर रख दूँगा।

और कुछ न कर सकूँगा तो मर मिलूंगा। पर अपनी आँखों से आपकी यह जिल्लत न देखूँगा।

शहजादी आहिस्ता-आहिस्ता उसके करीब आई और बोली-मुझे आप पर पूरा भरोसा है लेकिन आपको मेरी खातिर से जब्ल और सब करना होगा। आपके लिए मैं महलसरा की तकलीफें और जुल्म सब सह लूंगी। आपकी मुहब्बत ही मेरी जिंदगी का सहारा होगी। यह यकीन कि आप मुझे अपनी लौंडी समझते हैं, मुझे हमेशा सँ भालता रहेगा। कौन जाने तकदीर हमें फिर मिलाए।

कासिम ने अकड़कर कहा—आप दिल्ली जाएँ ही क्यों? हम सुबह होते-होते भरतपुर पहुँच सकते हैं।

शहजादी—मगर हिन्दोस्तान के बाहर तो नहीं जा सकते। दिल्ली की आँख का काँटा बनकर मुमकिन है हम जंगलों और वीरानों में जिंदगी के दिन काटे पर चैन नसीब न होगा। असलियत की तरफ से आँखें न बंद कीजिए खुदा ने आपको बहादुरी दी है पर गौ इस्फहानी भी तो पहाड़ से टकराकर टूट ही जाएगी।

कासिम का जोश कुछ धीमा हुआ। भ्रम का परदा नजर से हट गया। कल्पना की दुनिया में बढ़-बढ्कर बातें करना आदमी का गुण है। कासिम को अपनी बेबसी साफ दिखाई पड़ने लगी, बेशक मेरी यह लनतरानियाँ मजाक की चीज हैं। दिल्ली के शाह के मुकाबले में मेरी क्या हस्ती है? उनका एक इशारा मेरी हस्ती को मिटा सकता है। हसरत-भरे लहजे में बोला—मान लीजिए हमको जंगलों और वीरानों ही में जिंदगी के दिन काटने पड़े तो क्या? मुहब्बत करनेवाले अँ धेरे कोने में भी चमन की सैर का लुल्क उठाते हैं। मुहब्बत में वह फकीरों और दरवेशों जैसा अलगाव है जो, दुनिया की नेमतों की तरफ खि उठाकर भी नहीं देखता।

शहजादी—मगर मुझसे यह कब मुमकिन है कि अपनी भलाई के लिए आपको इन खतरों में डालूँ मैं शाहे दिल्ली के जुल्मों की कहानियाँ सुन चुकी हूँ उन्हें याद करके रोंगटे खडे हो जाते हैं। खुदा वह दिन न लाए कि मेरी वजह से आपका बाल भी बाँका हो। आपकी लड़ाइयों के चर्चे आपकी खैरियत की खबरें उस कैद में मुझको तसकीन और ताकत देंगी। मैं मुसीबतें झेलूँगी और हँस-हँसकर आग में जलूँगी और माथे पर बल न आने दूँगी। हाँ मैं शाहे दिल्ली के दिल को अपना बनाऊँगी, सिर्फ आपकी खातिर से ताकि आपके लिए मौका पड़ने पर दो-चार अच्छी बातें कह सकूँ।

:: 8 ::

लेकिन कासिम अब भी वहाँ से न हिला। उसकी आरजुएँ उम्मीद से बढ्कर पूरी होती जाती थीं फिर हवस भी उसी अंदाज से बढ़ती जाती थी। उसने सोचा अगर हमारी मुहब्बत की बहार सिर्फ कुछ लमहों की मेहमान है तो फिर उन मुबारक लमहों को आगे की चिंता से क्यों बेमजा करें। अगर तकदीर में इस हुस्न की नेमत को पाना नहीं लिखा है तो इस मौके को हाथ से क्यों जाने दूँ? कौन जाने फिर मुलाकात हो या न हो? यह मुहब्बत रहे या न रहे? बोला—शहजादी, अगर आपका यही आखिरी फैसला है तो मेरे लिए सिवाय हसरत और मायूसी के और क्या चारा है? दुःख होगा, कुढ़ूँगा, पर सब करूँगा। अब एक दम के

लिए यहाँ आकर मेरे पहलू में बैठ जाइए ताकि इस बेकरार दिल को तसकीन हो। आइए एक लमहे के लिए भूल जाएँ कि जुदाई की घड़ी हमारे सर पर खड़ी है। कौन जाने वह दिन कब आए? शान-शौकत गरीबों की याद भुला देती है आइए एक घड़ी मिलकर बैठे,। अपनी जुल्मों की अम्बरी खुशबू से इस जलती हुई रूह को तरावट पहुँचाइए। यह बाहें गलों की जंजीरें बन जाएँ। अपने बिल्लौर जैसे हाथों से प्रेम के प्याले भर-भरकर पिलाइए। सागर के ऐसे दौर चलें कि हम छक जाएँ। दिलों पर सुरूर का ऐसा गाढ़ा रंग चढ़े जिस पर जुदाई की तुर्शियों का असर न हो। वह रंगीन शराब पिलाइए जो इस झुलसी हुई आरजुओं की खेती को सींच दे और यह रूह की प्यास हमेशा के लिए बुझ जाए।

मए अर्गवानी के दौर चलने लगे। शहजादी की बिल्लौरी हथेली में सुर्ख शराब का प्याला ऐसा मालूम होता था जैसे पानी की बिल्लौरी सतह पर कमल का फूल खिला हो। कासिम दोनों दुनिया से बेखबर प्याले पर प्याले चढ़ाता जाता था जैसे कोई डाकू लूट के माल पर टूटा हुआ हो। यहाँ तक कि उसकी आँखें लाल हो गईं, गर्दन झुक गई, पी-पीकर मदहोश हो गया। शहजादी की तरफ वासनाभरी आँखों से ताकता हुआ बाहें खोले बढ़ा कि घड़ियाल ने चार बजाए और कूच के डंडेके की दिल छेद देनेवाली आवाजें कान में आई। बाहें खुली की खुली रह गई। लौंडियाँ उठ बैठी, शहजादी उठ खड़ी हुई और बदनसीब कासिम दिल की आरजुएँ लिये खेमे से बाहर निकला, जैसे तकदीर के फौलादी पंजे ने उसे ढकेलकर बाहर निकाल दिया हो। जब अपने खेमे में आया तो दिल आरजुओं से भरा हुआ था। कुछ देर के बाद आरजुओं ने हवस का रूप भरा और अब बाहर निकला तो दिल हसरतों से पामाल था, हवस का मकड़ी-जाल उसकी रूह के लिए लोहे की जंजीर बना हुआ था।

:: 9 ::

शाम का वक्त था। सुबह की ठंडी-ठंडी हवा के सागर में धीरे-धीरे लहरें उठ रही थीं। बहादुर, किस्मत का धनी कासिम मुलतान के मोर्चे को सर करके गर्व की मदिरा पिए उसके नशे में चूर चला आता था। दिल्ली की सड़कें बन्दनवारों और झंडियों से सजी हुई थीं। गुलाब और केवड़े की खुशबू चारों तरफ उड़ रही थी। जगह-जगह नौबतखाने अपना सुहाना राग अलाप रहे थे। शहरपनाह के अंदर दाखिल होते ही सारे शहर में एक शोर मच गया। तोपों ने अगवानी की घन गरज सदाएं बुलन्द कीं। ऊपर झरोखों में नगर की सुंदरियाँ सितारों की तरह चमकने लगीं। कासिम पर फूलों की बरखा होने लगी। वह शाही महल के करीब पहुँचा तो बड़े-बड़े अमीर-उमरा उसकी अगवानी के लिए कतार बाँधे खड़े थे। इस शान से वह दीवाने खास तक पहुँचा। उसका दिमाग सातवें आसमान पर था। चाव-भरी आँखों से ताकता हुआ बादशाह के पास पहुँचा और शाही तख्त को चूम लिया। बादशाह मुस्कराकर तख्त से उतरे और बाहें खोले हुए कासिम को सीने से लगाने के लिए बड़े। कासिम आदर से उनके पैरों को चूमने के लिए झुका कि यकायक उसके सिर पर एक बिजली-सी गिरी। बादशाह का तेज खंजर उसकी गर्दन पर पड़ा और सर तन से जुदा होकर अलग जा गिरा। खून के फौव्वारे बादशाह के कदमों की तरफ, तख्त की तरफ और तख्त के पीछे खड़े होनेवाले मसरूर की तरफ लपके, गोया कोई झल्लाया हुआ आग का साँप है।

घायल शरीर एक पल में ठंडा हो गया। मगर दोनों आँखें हसरत की मारी हुई दो मूरतों की तरफ देर तक दीवारों की तरफ ताकती रहीं। आखिर वह भी बंद हो गई। हवस ने अपना काम पूरा कर दिया। अब सिर्फ हसरत बाकी थी जो बरसों तक दीवाने खास के दरोदीवार पर छाई रही और जिसकी झलक अभी तक कासिम के मजार पर घास-फूस की सूरत में नजर आती है।

– 'प्रेम बतीसी' से

इज्जत का खून

मैंने कहानियों और इतिहासों में तकदीर के उलट-फेर की अजीबोगरीब दास्तानें पढ़ी हैं। शाह को भिखमंगा और भिखमंगे को शाह बनते देखा है। तकदीर एक छुपा हुआ भेद है। गलियों में टुकड़े चुनती हुई औरतें सोने के सिंहासन पर बैठ गई हैं और वह ऐश्वर्य के मतवाले जिनके इशारे पर तकदीर भी सर झुकाती थी, आन की आन में चील-कौओं का शिकार बन गए हैं। पर मेरे सर पर जो कुछ बीती उसकी नजीर कहीं नहीं मिलती। आह, उन घटनाओं को आज याद करती हूँ तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं और हैरत होती है कि का अब तक मैं क्यों और क्योंकर जिंदा हूँ। सौंदर्य लालसाओं का स्रोत है। मेरे दिल में क्या-क्या लालसाएं न थीं पर आह, निखुर भाग्य के हाथों मर मिटीं। मैं क्या जानती थी कि वही आदमी जो मेरी एक-एक अदा पर कुर्बान होता था, एक दिन मुझे इस तरह जलील और बर्बाद करेगा।

आज तीन साल हुए जब मैंने इस घर में कदम रखा, उस वक्त यह एक हरा-भरा चमन था। मैं इस चमन की बुलबुल थी, हवा में उड़ती थी, डालियों पर चहकती थी, फूलों पर सोती थी। सईद मेरा था, मैं सईद की थी। इस संगमरमर के हौज के किनारे हम मुहब्बत के पांसे खेलते थे। इन्हीं क्यारियों में उल्फत के तराने गाते थे। इसी चमन में हमारी मुहब्बत की गुपचुप बातें होती थीं मस्तियों के दौर चलते थे। वह मुझसे कहते थे—तुम मेरी जान हो। मैं उनसे कहती थी—तुम मेरे दिलदार हो। हमारी जायदाद लंबी-चौड़ी थी। जमाने की कोई फिक्र, जिंदगी का कोई गम न था। हमारे लिए जिंदगी सशरीर आनन्द, एक अनन्त चाह और बहार का तिलिस्म थी, जिसमें मुरादें खिलती थीं और खुशियाँ हँसती थीं। जमाना हमारी इच्छाओं पर चलनेवाला था। आसमान हमारी भलाई चाहता था और तकदीर हमारी साथी थी।

एक दिन सईद ने आकर कहा—मेरी जान, मैं तुमसे एक विनती करने आया हूँ। देखना इन मुस्कराते हुए होंठों पर इनकार का हर्फ न आए। मैं चाहता हूँ कि अपनी सारी मिलकियत, सारी जायदाद तुम्हारे नाम चढ़वा दूँ। मेरे लिए तुम्हारी मुहब्बत काफी है। यही मेरे लिए सबसे बड़ी नेमत है। मैं अपनी हकीकत को मिटा देना चाहता हूँ। चाहता हूँ कि तुम्हारे दरवाजे का फकीर बनकर रहूँ। तुम मेरी नूरजहां बन जाओ, मैं तुम्हारा सलीम बनूँगा, और तुम्हारी मूँगे जैसी हथेली के प्यालों-पर उम्र बसर करूँगा।

मेरी आँखें भर आई। खुशियाँ अपनी चोटी पर पहुँचकर आँसू की बूँद बन गई।

:: 2 ::

पर अभी पूरा साल भी न गुजरा था कि मुझे सईद के मिजाज में कुछ तबदीली नजर आने लगी। हमारे दरमियान कोई लड़ाई-झगड़ा या बदमजगी न हुई थी। मगर अब वह सईद न था जिसे एक लमहे के लिए भी मेरी जुदाई दूभर थी। वह अब रात की रात गायब रहता। उसकी आँखों में प्रेम की वह उमंग न थी, न अंदाजों में वह प्यास, न मिजाज में वह गर्मी।

कुछ दिनों तक इस रूखेपन ने मुझे खूब रुलाया। मुहब्बत के मजे याद आ-आकर तड़पा देते। मैंने पड़ा था कि प्रेम अमर होता है क्या वह स्रोत इतनी जल्दी सूख गया? आह, नहीं वह अब भी लहरें मार रहा था। पर अब उसका बहाव किसी दूसरी ओर था। वह अब किसी दूसरे चमन को शादाब करता था। आखिर मैं भी सईद से आँखे चुराने लगी। बेदिली से नहीं, सिर्फ इसलिए कि अब मुझे उससे आँखें मिलाने की ताब न थी। उसे देखते ही मुहब्बत के हजारों करिश्मे नजरों के सामने आ जाते और आँखें भर आतीं। मेरा दिल अब भी उसकी तरफ खिंचता था, कभी-कभी बेअख्तियार जी चाहता कि उसके पैरों पर गिर और कहूँ—मेरे दिलदार, यह बेरहमी क्यों? क्यों तुमने मुझसे मुँह फेर लिया है, मुझसे क्या खता हुई है? लेकिन इस स्वाभिमान का बुरा हो जो दीवार बनकर रास्ते में खड़ा हो जाता।

यहाँ तक कि धीरे-धीरे मेरे दिल में भी मुहब्बत की जगह हसरत ने ले ली। निराशा के धैर्य ने दिल को तसकीन दी। मेरे लिए सईद अब बीते हुए वसन्त का एक भूला हुआ गीत था। दिल की गर्मी ठंडी हो गई। प्रेम का दीपक बुझ गया। यही नहीं, उसकी इज्जत भी मेरे दिल से रुखसत हो गई। जो आदमी प्रेम के पवित्र मंदिर में मैल से भरा हुआ हो वह हरगिज इस योग्य नहीं कि मैं उसके लिए पुलूँ और मरूँ।

एक रोज शाम के वक्त मैं अपने कमरे में पलंग पर पड़ी एक किस्सा पढ़ रही थी, तभी अचानक एक सुंदर स्त्री मेरे कमरे में आई। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कमरा जगमगा उठा। रूप की ज्योति ने दरी-दीवार को रौशन कर दिया, गोया अभी सफेदी हुई है। उसकी अलंकृत शोभा, उसका खिला हुआ फूल-जैसा लु भावना चेहरा, उसकी नशीली मिठास, किसकी तारीफ करूँ! मुझ पर एक रोब-सा छा गया। मेरा रूप का घमंड भूल में मिल गया। मैं आश्चर्य में थी कि यह कौन रमणी है और यहाँ क्योंकर आई? बेअख्तियार उठी कि उससे मिलूँ और पूछूँ कि सईद भी मुस्कराता हुआ कमरे में आया। मैं समझ गई कि यह रमणी उसकी प्रेमिका है। मेरा गर्व जाग उठा। मैं उठी जरूर पर शान से गर्दन उठाए हुए। आँखों में हुस्न के रोब की जगह मृणा का भाव आ बैठा। मेरी आँखों में अब वह रमणी रूप की देवी नहीं डसनेवाली नागिन थी। मैं फिर चारपाई पर बैठ गई और किताब खोलकर सामने रख ली। वह रमणी एक क्षण तक खड़ी मेरी तसवीरों को देखती रही, तब कमरे से निकली, चलते वक्त उसने एक बार मेरी तरफ देखा, उसकी आँखों से अंगारे निकल रहे थे जिनकी किरणों में हिंस प्रतिशोध की लाली झलक रही थी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ—सईद इसे यहाँ क्यों लाया? क्या मेरा घमंड तोड़ने के लिए?

:: 3 ::

जायदाद पर मेरा नाम था पर यह केवल एक भ्रम था, उस पर अधिकार पूरी तरह सईद का था। नौकर भी उसी को अपना मालिक समझते थे और अक्सर मेरे साथ ढिठाई से पेश आते। मैं सब के साथ जिंदगी के दिन काट रही थी। जब दिल में उमंगें न रहीं तो पीड़ा क्यों होती?

सावन का महीना था, काली घटा छाई हुई थी और रिमझिम बूँदें पड़ रही थीं। बगीचे पर हसरत का अँधेरा और सियाह दरखों पर जुगनुओं की चमक ऐसी मालूम होती थी कि

जैसे उनके मुँह से चिनगारियों जैसी आहे निकल रही हैं। मैं देर तक हसरत का यह तमाशा देखती रही। कीड़े एक साथ चमकते थे और एक साथ बुझ जाते थे, गोया रोशनी की बाड़े छूट रही हैं। मुझे भी झूला झूलने और गाने का शौक हुआ। मौसम की हालतें हसरत के मारे हुए दिलों पर भी अपना जादू कर जाती हैं। बगीचे में एक गोल बंगला था। मैं उसमें आई और बरामदे की एक कड़ी में झूला डलवाकर झूलने लगी। मुझे आज मालूम हुआ कि निराशा में भी एक आध्यत्मिक आनन्द होता है जिसका हाल उनको नहीं मालूम जिनकी इच्छाएँ पूर्ण हैं। मैं चाव से एक मल्हार गाने लगी। सावन विरह और शोक का महीना है। गीत में एक वियोगी हृदय की कथा ऐसे दर्दभरे शब्दों में बयान की गई थी कि बरबस आँखों से आँसू टपकने लगे। इतने में बाहर से एक लालटेन की रोशनी नजर आई। सईद का नौकर पिछले दरवाजे से दाखिल हुआ। उसके पीछे वही हसीना और सईद दोनों चले आ रहे थे। हसीना ने मेरे पास आकर कहा-आज यहाँ नाच-रंग की महफिल सजेगी और शराब के दौर चलेंगे।

मैंने घृणा से कहा—मुबारक हो।

हसीना—बारहमासे और मल्हार की तानें उड़ेगी साजिन्दे आ रहे हैं।

मैं—शौक से।

हसीना—तुम्हारा सीना हसद से चाक हो जाएगा।

सईद ने मुझसे कहा—जुबैदा, तुम अपने कमरे में चली जाओ. यह इस वक्त आपे में नहीं हैं।

हसीना ने फिर मेरी तरफ लाल-लाल आँखें निकालकर कहा—मैं तुम्हें अपने पैरों की धूल के बराबर भी नहीं समझती।

मुझे फिर जब्ल न रहा, अकड़कर बोली—और मैं तुझे क्या समझती हूँ एक कुतिया, दूसरों की उगली हुई हड्डियों चिचोड़ती फिरती है!

अब सईद के भी तेवर बदले मेरी तरफ भयानक आँखों से देखकर बोले—जुबैदा, तुम्हारे सर पर शैतान तो नहीं सवार है?

सईद का यह जुमला मेरे जिगर में चुभ गया, तड़प उठी, जिन होंठों से हमेशा मुहब्बत और प्यार की बातें सुनी हों उन्हीं से यह जहर निकले और बिलकुल बेकसूर! क्या मैं ऐसी नाचीज और हकीर हो गई हूँ कि एक बाजारू औरत भी मुझे छेड़कर गालियाँ दे सकती है और मेरा जबान खोलना मना! मेरे दिल में सालभर से जो बुखार जमा हो रहा था, वह उबल पड़ा। मैं झूले से उतर पड़ी और सईद की तरफ शिकायतभरो निगाहों से देखकर बोली—शैतान मेरे सर पर सवार है या तुम्हारे सर पर, इसका फैसला तुम खुद कर सकते हो। सईद, मैं तुमको अब तक शरीफ और गैरतवाला समझती थी, तुमने मेरे साथ बेवफाई की इसका मलाल मुझे जरूर था मगर मैंने सपने में भी यह न सोचा था कि तुम गैरत से इतने खालो हो कि एक हया-फरोश औरत के पीछे मुझे इस तरह जलील करोंगे। इसका बदला तुम्हें खुदा से मिलेगा।

हसीना ने तेज होकर कहा—तू मुझे हया-फरोश कहतीं है?

मैं—बेशक कहती हूँ।

सईद—और मैं बेगैरत हूँ?

मैं—बेशक। बेगैरत ही नहीं शोबदेबाज मक्कार, पापी, सब कुछ। यह अल्फाज बहुत घिनावने हैं लेकिन मेरे गुस्से के इजहार के लिए काफी नहीं।

मैं यह बातें कह ही रही थी कि यकायक सईद के लम्बे तगड़े हट्टे-कट्टे नौकर ने मेरी दोनों बाहें पकड़ लीं और पलक मारते भर में हसीना ने झूले की रस्सियाँ उतारकर मुझे बरामदे के एक लोहे के खं भे से बाँध दिया।

इस वक्त मेरे दिल में क्या खयाल आ रहे थे, यह याद नहीं, पर मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया था, ऐसा मालूम होता था कि यह तीनों इन्सान नहीं, यमदूत हैं। गुस्से की जगह दिल में एक डर समा गया था। इस वक्त अगर कोई गैबी ताकत मेरे बंधनों को काट देती, मेरे हाथों में आबदार खंजर दे देती तो भी मैं जमीन पर बैठकर अपनी जिल्लत और बेकसी पर तू! बहाने के सिवा और कुछ न कर सकती। मुझे खयाल आता था कि शायद खुदा की तरफ से मुझ पर यह कहर नाजिल हुआ है। शायद मेरी बेनमाजी और बेदीनी की यह सजा मिल रही है। मैं अपनी पिछली जिंदगी पर निगाह डाल रही थी कि मुझसे कौन-सी गलती हुई है जिसकी यह सजा है। मुझे इसी हालत में छोड़कर तीनों सूरतें कमरे में चली गई। मैंने समझा मेरी सजा खत्म हुई। लेकिन क्या यह सब मुझे यों ही बँधा रखेंगे? लौडियाँ मुझे इस हालत में देख लें तो क्या कहें? नहीं, अब मैं इस घर में रहने के काबिल ही नहीं। मैं सोच रही थी कि रस्सियाँ क्योंकर खो! मगर अफसोस, मुझे न मालूम था कि अभी तक मेरी जो गति हुई है वह आनेवाली बेरहमियों का सिर्फ बयाना है। मैं अब तक न जानती थी कि यह छोटा आदमी कितना बेरहम, कितना कातिल है। मैं अपने दिल से बहस कर रही थी कि अपनी इस जिल्लत का इलजाम मुझ पर कहाँ तक है। अगर मैं हसीना की उन दिल जलाने वाली बातों का जवाब न देती तो क्या यह नौबत न आती? आती और जरूर आती। वह काली नागिन मुझे डसने का इरादा करके चली थी। इसीलिए उसने ऐसे दिल दुखानेवाले लहजे में बात ही शुरू की थी कि मैं गुस्से में आकर उसको लान-तान करूँ और उसे मुझे जलील करने का बहाना मिल जाए।

पानी जोर से बरसने लगा था, बौछारों से मेरा सारा शरीर तर हो गया था। सामने गहरा अँधेरा था। मैं कान लगाए सुन रही थी कि अंदर क्या मिसकौट हो रही है मगर मेह की सनसनाहट के कारण आवाजें साफ न सुनाई देती थीं। इतने में लालटेन फिर कमरे से बरामदे में आई और तीनों डरावनी सूरतें फिर सामने आकर खड़ी हो गई। अब की उस खूनी परी के हाथों में एक पतली-सी कमची थी। उसके तेवर देखकर मेरा खून सर्द हो गया। उसकी आँखों में एक खून पीनेवाली वहशत, एक कातिल, पागलपन दिखाई दे रहा था। मेरी तरफ शरारत-भरी नजरों से देखकर बोली—बेगम साहबा, मैं तुम्हारी बदजबानियों का ऐसा सबक देना चाहती हूँ जो तुम्हें सारी उम्र याद रहे। और मेरे गुरु ने बतलाया है कि कमची से ज्यादा देर तक ठहरनेवाला और कोई सबक नहीं होता।

यह कहकर उस जालिम ने मेरी पीठ पर एक कमची जोर से मारी। मैं तिलमिला गई, मालूम हुआ कि किसी ने पीठ पर आग की चिनगारी रख दी। मुझसे जष्ट न हो सका। माँ-बाप ने कभी फूल की छड़ी से भी न मारा था। जोर से चीखें मार-मारकर रोने लगी। स्वाभिमान, लज्जा, सब लुपा हो गई। कमची की डरावनी और रौशन असलियत के सामने और सब भावनाएँ गायब हो गई। उन हिंदू देवियों के दिल शायद लोहे के होते होंगे जो

अपनी आन पर आग में कूद पड़ती थीं। मेरे दिल पर तो इस वक्त यही खयाल छाया हुआ था कि इस मुसीबत से क्योंकर छुटकारा हो। सईद तसवीर की तरह खामोश खड़ा था। मैं उसकी तरफ फरियाद की अस्त्रों से देखकर बड़े विनती के स्वर में बोली—सईद, खुदा के लिए मुझे इस जालिम से बचाओ, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ तुम मुझे जहर दे दो, खंजर से गर्दन काट लो लेकिन यह मुसीबत सहने की मुझमें ताब नहीं। उन दिलजोइयों को याद करो, मेरी मुहब्बत को याद करो, उसी के सदके इस वक्त मुझे इस अजाब से बचाओ, खुदा तुम्हें इसका इनाम देगा।

सईद इन बातों से कुछ पिघला। हसीना की तरफ डरी हुई आँखों से देखकर बोला—जरीना, मेरे कहने से अब जाने दो। मेरी खातिर से इन पर रहम करो।

जरीना तेवर बदलकर बोली—तुम्हारी खातिर से सब कुछ कर सकती हूँ? गालियाँ नहीं बर्दाश्त कर सकती।

सईद—क्या अभी तुम्हारे खयाल में गालियों की काफी सजा नहीं हुई?

जरीना—तब तो आपने मेरी इज्जत की खूब कद्र की! मैंने रानियों से चिलमचियाँ उठवाई हैं यह बेगम साहबा हैं किस खयाल में? मैं इसे अगर कुन्द छुरी से काई तब भी इसकी बदजबानियों की काफी सजा न होगी।

सईद—मुझसे अब यह जुल्म नहीं देखा जाता।

जरीना—आँखें बन्द कर लो।

सईद—जरीना, गुस्सा न दिलाओ, मैं कहता हूँ र अब इन्हें माफ करो।

जरीना ने सईद को ऐसी हिकारत भरी आँखों से देखा गोया वह उसका गुलाम है। खुदा जाने उस पर उसने क्या मन्तर मार दिया था कि उसमें खानदानी गैरत और बड़ाई और इन्सानियत का जरा भी एहसास बाकी न रहा था। वह शायद उसे गुस्से जैसे मर्दाना जज्बे के काबिल ही न समझती थी। हुलिया पहचाननेवाले कितनी गलती करते हैं क्योंकि दिखाई कुछ पड़ता है अन्दर कुछ और होता है! बाहर के ऐसे सुन्दर रूप के परदे में इतनी बेरहमी, इतनी निष्ठुरता! कोई शक नहीं, रूप हुलिया पहचानने की विद्या का दुश्मन है। बोली—अच्छा, तो अब आपको मुझ पर गुस्सा आने लगा। क्यों न हो, आखिर निकाह तो आपने बेगम ही से किया है। मैं तो हया-करोश कुतिया ही ठहरी!

सईद—तुम ताने देती हो और मुझसे यह खून नहीं देखा जाता।

जरीना—तो यह कमची हाथ में लो और इसे गिनकर सौ लगाओ। गुस्सा उतर जाएगा, इसका यही इलाज है।

सईद—फिर वही मजाक !

जरीना—नहीं, मैं मजाक नहीं करती।

सईद ने कमची लेने को हाथ बढ़ाया मगर मालूम नहीं जरीना को क्या शुबहा पैदा हुआ, उसने समझा शायद यह कमची को तोड़कर फेंक देंगे। कमची हटा ली और बोली—अच्छा, मुझसे यह दगा तो लो, अब मैं ही हाथों की सफाई दिखाती हूँ। यह कहकर उस बेदर्द ने मुझे बेतहाशा कमचियाँ मारना शुरू कीं। मैं दर्द से ऐंठ-. ऐंठकर चीख रही थी। उसके पैरों पड़ती थी, मिन्नतें करती थी, अपने किए पर शर्मिन्दा थी, दुआएं देती थी, पीर और पैगम्बर का वास्ता देती थी, पर उस कातिल को जरा भी रहम न आता था। सईद काठ के पुतले की

तरह दर्दोसितम का यह नजारा आँखों से देख रहा था और उसको जोश न आता था। शायद मेरा बड़े से बड़ा दुश्मन भी मेरे रोने-धोने पर तरस खाता। मेरी पीठ छिलकर लहूलुहान हो गई, जख्म पड़ते थे, हरेक चोट आग के शोले की तरह बदन पर लगती थी। मालूम नहीं उसने मुझे कितने दुर्रे लगाए यहाँ तक कि कमची को मुझ पर रहम आ गया, वह फट कर टूट गई। लकड़ी का कलेजा फट गया मगर इन्सान का दिल न पिघला।

:: 4 ::

मुझे इस तरह जलील और तबाह करके तीनों खबीस रूहें वहाँ से रुखसत हो गई। सईद के नौकर ने चलते वक्त मेरी रस्सियाँ खोल दीं। मैं कहाँ जाती? उस घर में क्योंकर कदम रखती?

मेरा सारा जिस्म नासूर हो रहा था लेकिन दिल के फफोले उससे कहीं ज्यादा जानलेवा थे। सारा दिल फफोलों से भर उठा था। अच्छी भावनाओं के लिए जगह भी बाकी न रही थी। उस वक्त मैं किसी अंधे को कुएँ में गिरते देखती तो मुझे हँसी आती, किसी यतीम का दर्दनाक रोना सुनती तो उसको मुँह चिढ़ाती। दिल की हालत में एक जबर्दस्त इन्क्लाब हो गया था। मुझे गुस्सा न था, गम न था, मौत की आरजू न थी, यहाँ तक कि बदला लेने की भावना भी न थी। उस इनाहाई जिल्लत ने बदला लेने की इच्छा को भी खत्म कर दिया था। हालश्र्क मैं चाहती तो कानूनन सईद को शिकंजे में ला सकती थी, उसे दाने-दाने के लिए तरसा सकती थी लेकिन यह बेइज्जती, यह बेआबरूई, यह पामाली बदले के खयाल के दायरे से बाहर थी। बस, सिर्फ एक चेतना बाकी थी और वह अपमान की चेतना थी। मैं हमेशा के लिए जलील हो गई। क्या यह दाग किसी तरह मिट सकता था? हरगिज नहीं। हाँ, वह छिपाया जा सकता था और उसकी एक ही सूरत थी कि जिल्लत के काले गड्ढे में गिर पड़ूँ ताकि सारे कपडों की सियाही इस सियाह दाग को छिपा दे। क्या इस घर से बियाबान अच्छा नहीं जिसकी दीवारें टूटकर ढेर हो गई हों? इस किश्ती से क्या पानी की सतह अच्छी नहीं जिसके पेंदे में एक बड़ा छेद हो गया हो? इस हालत में यही दलील मुझ पर छा गई। मैंने अपनी तबाही को और भी मुकम्मल, अपनी जिल्लत को और भी गहरा, अपने काले चेहरे को और भी काला करने का पक्का इरादा कर लिया। मैं अनजाने में ही सईद से नैतिक रूप से बदला लेने पर आमादा हो गई। रातभर मैं वहीं पड़ी कभी दर्द से कराहती और कभी इन्हीं खयालात में उलझती रही। यह घातक इरादा हर क्षण मजबूत से और भी मजबूत होता जाता था। घर में किसी ने मेरी खबर न ली। पी फटते ही मैं बगीचे से बाहर निकल आई, मालूम नहीं मेरी लाज-शर्म कहाँ गायब हो गई थी। जो शख्स समुन्दर में गोते खा चुका हो उसे ताल-तलैयों का क्या डर? मैं जो दरीदीवार से शर्माती थी, इस वक्त शहर की गलियों में बेधड़क चली जा रही थी-और कहाँ? वहीं जहाँ जिल्लत की कद्र है जहाँ किसी पर कोई हँसनेवाला नहीं, जहाँ बदनामी का बाजार सजा हुआ है जहाँ हया बिकती है और शर्म लुटती है!

इसके तीसरे दिन रूप की मण्डी के एक अच्छे हिस्से में एक ऊँचे कोठे पर बैठी हुई मैं उस मण्डी की सैर कर रही थी। शाम का वक्त था, नीचे सड़क पर आदमियों की ऐसी भीड़ थी

कि कंधे से कंधा छिलता था। आज सावन का मेला था, लोग साफ-सुथरे कपड़े पहने कतार की कतार दरिया की तरफ जा रहे थे। हमारे बाजार की बेशकीमती जिन्स भी आज नदी के किनारे सजी हुई थी। कहीं हसीनों के झूले थे कहीं सावन के गीत, लेकिन मुझे इस बाजार की सैर दरिया के किनारे से ज्यादा पुरलुत्फ मालूम होती थी। ऐसा मालूम होता था कि शहर की और सब सड़कें बंद हो गई हैं सिर्फ यही तंग गली खुली हुई है और सबकी निगाहें कोठों ही की तरफ लगी थीं, गोया वह जमीन पर नहीं चल रहे हैं हवा में उड़ना चाहते हैं। हाँ, पड़े-लिखे लोगों को मैंने इतना बेधड़क नहीं पाया। वह भी घूरते थे मगर कनखियों से। अधेड़ उम्र के लोग सबसे ज्यादा बेधड़क मालूम होते थे। शायद उनकी मंशा जवानी के जोश को जाहिर करना था। बाजार क्या था एक लंबा-चौड़ा थियेटर था, लोग हँसी-दिल्लगी करते थे, लुत्फ उठाने के लिए नहीं, हसीनों को सुनाने के लिए। मुँह दूसरी तरफ था, निगाह किसी दूसरी तरफ। बस भांडों और नक्कालों की मजलिस थी।

यकायक सईद की फिटन नजर आई। मैं उस पर कई बार सैर कर चुकी थी। सईद अच्छे कपड़े पहने अकड़ा हुआ बैठा था। ऐसा सजीला, बाँका जवान सारे शहर में न था, चेहरे-मोहरे से मर्दानापन बरसता था। उसकी आँख एक बार मेरे कोठे की तरफ उठी और नीचे झुक गई। उसके चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गई जैसे किसी जहरीले साँप ने काट खाया हो। उसने कोचवान से कुछ कहा, दम के दम में फिटन हवा हो गई। इस वक्त उसे देखकर मुझे जो द्वेषपूर्ण प्रसन्नता हुई, उसके सामने उस जानलेवा दर्द की कोई हकीकत न थी। मैंने जलील होकर उसे जलील कर दिया। यह कटार कमचियों से कहीं ज्यादा तेज थी। उसकी हिम्मत न थी कि अब मुझसे आँख मिला सके। नहीं, मैंने उसे हरा दिया, उसे उम्र-भर के लिए कैद में डाल दिया। इस कालकोठरी से अब उसका निकलना गैर-मुमकिन था क्योंकि उसे अपने खानदान के बड़प्पन का घमंड था।

दूसरे दिन भोर में खबर मिली कि किसी कातिल ने मिर्जा सईद का काम तमाम कर दिया। उसकी लाश उसी बगीचे के गोल कमरे में मिली। सीने में गोली लग गई थी। नौ बजे दूसरी खबर सुनाई दी, जरीना को भी किसी ने रात के वक्त कल्ल कर डाला था। उसका सर तन से जुदा कर दिया गया था। बाद को जाँच-पड़ताल से मालूम हुआ कि यह दोनों वारदातें सईद के ही हाथों हुई। उसने पहले जरीना को उसके मकान पर कल्ल किया और तब अपने घर आकर अपने सीने में गोली मारी। इस मर्दाना गैरतमंदी ने सईद की मुहब्बत मेरे दिल में ताजा कर दी।

शाम के वक्त मैं अपने मकान पर पहुँच गई। अभी मुझे यहाँ से गए हुए सिर्फ चार दिन गुजरे थे मगर ऐसा मालूम होता था कि वर्षों के बाद आई हूँ। दरोदीवार पर हसरत छाई हुई थी। मैंने घर में पाँव रखा तो बरबस सईद की मुस्कराती हुई सूरत औंखों के सामने आकर खड़ी हो गई—वही मर्दाना हुस्न, वही बाँकपन, वही मनुहार आँखें। बेअख्तियार मेरी आँखें भर आईं और दिल से एक ठंडी आह निकल आई। गम इसका न कि सईद ने क्यों जान दे दी। नहीं, उसकी वह मुजरिमाना बेहिसी और रूप के पीछे भागना इन दोनों बातों को मैं मरते दम तक माफ न करूँगी। गम यह था कि यह पागलपन उसके सर में क्यों समाया? इस वक्त दिल की जो कैफियत है उससे मैं समझती हूँ कि कुछ दिनों में सईद की बेवफाई और बेरहमी का घाव भर जाएगा, अपनी जिल्लत की याद भी शायद मिट जाए मगर

उसकी चंदरोजा मुहब्बत का नन्द्रा बाकी रहेगा और अब यह मेरी जिंदगी का सहारा है।

- उर्दू 'प्रेम पचीसी' से